सात-आठ

भारत के महान योगी

विश्वनाथ मुखर्जी

भारत के महान् योगी

55-15

खण्ड : सात-आठ

विश्वनाथ मुखर्जी

अप

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी

BHĀRATA KE MAHĀNA YOGĪ

(Part 7-8)

by

Vishwanath Mukherjee

ISBN : 978-81-89498-16-0

तृतीय संस्करण : 2008 ई०

मूल्य : एक सौ रुपये (Rs. 100.00)

प्रकाशक

अनुराग प्रकाशन

चौक, वाराणसी-221 001

फोन व फैक्स : (0542) 2421472

E-mail : vvp@vsnl.com • sales@vvpbooks.com

Shop at : www.vvpbooks.com

मुद्रक

वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०

चौक, वाराणसी-221 001

श्रद्धेय श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

तथा

आदरणीय चिरंजीलाल सराफ

को

सादर

पुरोवाक

भारत के महान् योगी का यह खण्ड पिछले खण्डों से अलग ढंग का है। इस खण्ड में जिन संतों का विवरण है, वे सभी अलग-अलग ढंग के साधक थे।

प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी के मानसपुत्र श्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी थे। आपने अपने गुरुदेव की जीवनी पाँच खण्डों में लिखी है। गुरुदेव की जीवनी के साथ-साथ अपनी कठोर तपस्या के बारे में उल्लेख किया है। केवल यही नहीं, अपनी तमाम कमजोरियों का भी उल्लेख किया है जिसे प्रायः लोग छिपा जाते हैं। विजयकृष्ण गोस्वामी के अनेक शिष्य हैं, पर कुलदानन्दजी की साधना विस्मयजनक है।

गोस्वामीजी के अप्रतिम शिष्य किरणचन्द्र दरवेश थे। सीढ़ी दर सीढ़ी साधक कैसे साधना-पथ पर बढ़ते गये और अन्त में योगिराज के पद पर प्रतिष्ठित हो गये, ध्यान देने योग्य बात है।

लाटू महाराज सामान्य घरेलू नौकर थे, पर प्रथम दर्शन में ही वे परमहंस के अनुगत हो गये। रामकृष्ण जी की निगाहों ने अपने भक्त को पहचान लिया। लाटू महाराज के विचार, कार्य सभी अद्‌भुत होते थे; इसलिए संन्यास लेने के बाद वे स्वामी अद्‌भुतानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए।

कापालिकों और अघोरियों के कुकृत्य से क्षुब्ध होकर बाबा गोरखनाथ ने नाथ-संप्रदाय की स्थापना की। आज भी वही नाथ-संप्रदाय के अधिष्ठाता माने जाते हैं। इस संप्रदाय में निवृत्तिनाथ, संत ज्ञानेश्वर, बाबा गंभीरनाथ जैसे संत हुए हैं। महाराष्ट्र में संत ज्ञानेश्वर का व्यापक प्रभाव है। इसी प्रकार बंगाल में गंभीरनाथ का था। आज भी वहाँ उनके अनेक भक्त और शिष्य-प्रशिष्य हैं।

कलियुग में लोग तंत्र-मंत्र और तपस्या से बचना चाहते हैं। ऐसे साधकों के लिए कुछ संतों ने हरिनाम जपने का निर्देश दिया है, क्योंकि योग-साधना सरल नहीं है।

हरिनाम की साधना का निर्देश सर्वश्री बाबा सीताराम ओंकारनाथ, ठाकुर अनुकूलचन्द्र, जगद्बन्धु, ए०सी० भक्तिवेदान्त स्वामी, मोहनानन्द आदि संतों ने दिया है, केवल भारत में ही नहीं, इसका प्रसार सुदूर पश्चिम तक फैला है। संसार के अनेक देशों में मठ और मंदिर स्थापित हो गये हैं। हरे कृष्ण आन्दोलन इस युग की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। भारतीय संतों की इस देन को लोग भुला नहीं सकेंगे।

लेखक तथा प्रकाशक के पास अक्सर इस आशय के पत्र आते हैं कि वर्तमान काल में ऐसे जीवित संत कहाँ हैं ?

जिज्ञासु पाठकों के लिए यह बताना उचित होगा कि ऐसे अनेक संत भारत में हैं जो अपने को छिपाकर रखते हैं। इस संग्रह के अध्ययन से स्पष्ट हो जायगा।

कलकत्ता के श्री प्रमोदकुमार चट्टोपाध्याय बचपन से प्रौढ़ावस्था तक स्वयं यायावर संत के रूप में, संतों की तलाश करते रहे। उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत के अनेक अंचलों में वे अनेक कापालिकों, अघोरियों और संतों से मिल चुके हैं। उनके योगैश्वर्य से प्रभावित हुए हैं। संभवतः वे इस दिशा में सहायक हो सकते हैं। वे ७७ रसा रोड दक्षिण, टालीगंज, कलकत्ता में रहते हैं। यह उनकी इच्छा पर निर्भर है कि आपकी सहायता करें या नहीं।

—लेखक

अनुक्रमणिका

भारत
के
महान् योगी

●

खण्ड ७-८

किरणचन्द्र दरवेश

किरणचन्द्र दरवेश

बंगाल के पुरुलिया जिले में रामचन्द्रपुर नामक एक गाँव है। यहाँ के कुछ लोगों ने यह निश्चय किया कि पूज्य दरवेशजी से दीक्षा ली जाय। इसके पूर्व इस गाँव के अन्नदा चक्रवर्ती उनसे दीक्षा ले चुके थे जो आगे चलकर संन्यास लेकर असीमानन्द बन गये। रामचन्द्रपुर के पास बेरो नामक एक स्थान है जहाँ दक्षिण भारत से आये आचार्य और गोस्वामी उपाधिधारी कुछ वैष्णव परिवार के लोग रहते हैं। ये लोग पूजा-पाठ के अलावा स्थानीय लोगों को दीक्षा देते हैं। दीक्षा देते समय किसी धातु का बना ठप्पा आग में काफी गरम करके दीक्षा लेने-वालों के बदन में दाग देते थे। यह दाग शिष्य के शरीर पर बना रहता था। इसे स्थानीय भाषा में 'छाप देना' कहा जाता है। इधर अन्नदा चक्रवर्ती के प्रयत्नों से कुछ लोग दरवेशजी से दीक्षा लेने आये। इनमें निवारण नामक एक भोलाभाला निरीह किसान भी था। उसने यह सोच रखा था कि दरवेशजी दीक्षा देते समय उसके शरीर पर गरम लोहे का कोई ठप्पा जरूर लगायेंगे।

एक बहुत बड़े कमरे में दीक्षा का आयोजन किया गया है जिसमें स्त्री-पुरुष मिलाकर चालीस आदमी हैं। दरवेशजी नियमानुसार रुद्राक्ष की माला आदि पहनकर गुरु के आसन पर विराजमान हैं। इधर निवारण के मन में दीक्षा लेने की भावना की जगह ठप्पे का आतंक प्रवेश कर गया। कार्यक्रम प्रारंभ होने के पहले कमरे के दोनों दरवाजे बन्द कर दिये गये। वह धीरे-धीरे खिसककर दरवाजे के पास आ गया ताकि ज्योंही गरम ठप्पा दागने की बारी आये त्योंही वह भाग जाय। दरवेशजी ने उपदेश देना शुरू किया, पर जिसके मन में आतंक प्रवेश कर गया है, वह इन बातों पर ध्यान कैसे देता। कुछ देर बाद आदेश हुआ कि सभी लोग अपनी-अपनी आँखें बन्द कर लें और यह मंत्र मन ही मन जपें। इतना कहकर दरवेशजी ने मंत्र पढ़ा। आँखें बन्द कर लेने की आज्ञा सुनते ही वह समझ गया कि अब ठप्पा लगाया जायगा। वह दरवाजे के और करीब आ गया। रह-रहकर आँखें खोलकर देख लेता था कि आगे क्या हो रहा है। कमरे के मध्य में कपड़े का एक पर्दा लगाया गया था। इधर पुरुष थे और उधर आड़ में महिलाएँ। अब दरवेशजी ने प्राणायाम की एक मुद्रा दिखाकर लोगों से करने को कहा। तभी महिलाओं की ओर से रोने की आवाज आयी। निवारण समझ गया कि अब ठप्पे लगाये जा रहे हैं। वह घबराकर उठ खड़ा हुआ। तभी दरवेशजी अपने आसन से उठकर आये और उससे बोले—"शान्त होकर बैठ जाओ। यहाँ ठप्पा नहीं लगाया जाता। तुम्हारी बेचैनी के कारण मुझे दो बार आसन बदलना पड़ा।"

दरवेशजी दीक्षा देते समय कभी आसन से नहीं उठते थे। गुरुदेव ने सिर पर हाथ क्या फेरा, सारा भय दूर हो गया।

धनबाद के क्षितीश चटर्जी और श्रीपति मुखर्जी आपस में गहरे मित्र थे। दोनों ही दरवेशजी के भक्त-शिष्य थे। श्रीपति की मृत्यु सन् १९४६ ई० में हुई थी। अपने निधन के पूर्व वे इस तरह बीमार हुए कि खाट पर से उठना दूभर हो गया।

मित्र की बीमारी का समाचार पाते ही क्षितीश बाबू उन्हें देखने गये। अन्तरंग मित्र और गुरुभाई को पाकर श्रीपति ने बड़े कातर भाव से कहा कि मुझे एक बार दरवेशजी का दर्शन करा दो। इस धराधाम से जाने के पूर्व मैं उन्हें एक बार देखना चाहता हूँ।

मित्र की दशा देखकर क्षितीश बाबू समझ गये कि इस हालत में इन्हें बनारस ले जाना संभव नहीं है। श्रीपति को आश्वासन देते हुए उन्होंने कहा कि आपको बनारस जरूर ले चलूँगा। जरा उठने-बैठने लायक हो जाओ। अगर डॉक्टर इस हालत में ले जाने का आदेश देगा तो कोई व्यवस्था जरूर करूँगा।

क्षितीश बाबू ने रोगी को आश्वासन तो दे दिया, पर उन्हें समझते देर नहीं लगी कि डॉक्टर इन्हें ले जाने की अनुमति नहीं देगा। इस बातचीत के बाद श्रीपति ने क्षितीश बाबू को बुलवाया। युद्ध के दिन थे, दफ्तर में काम अधिक था, इसलिए क्षितीश नहीं जा सके। पुनः दूसरी बार समाचार आया। जब तीसरी बार सूचना आयी कि केवल पाँच मिनट के लिए आ जाइये तब वे गये।

इनके जाते ही श्रीपति ने कहा— "अब तुम्हें कष्ट नहीं देना है। मैं काशी नहीं जाऊँगा। मैं बड़ा सौभाग्यशाली हूँ कि महागुरु, काका गुरु के साथ गुरुदेव मुझे दर्शन देने आये। मेरा जीवन पापमुक्त हो गया, मैं पवित्र हो गया। मुझे अपने सौभाग्य पर गर्व है।"

क्षितीश बाबू अवाक् होकर सुनते रहे। महागुरु यानी पूज्यपाद श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामी, काका गुरु यानी श्रद्धेय कुलदानन्द ब्रह्मचारी और गुरु दरवेश, इन तीनों का दर्शन हुआ। जीवन का अंतिम समय है, इसका मतिभ्रम हो गया है। गुरुदेव तो काशी में हैं और महागुरु का निर्वाण हो गया है।

इस घटना के कई दिनों बाद श्रीपति का निधन हो गया। क्षितीश बाबू के मन में श्रीपति की बातें गूँजती रहीं। शंका निवारण के लिए उन्होंने गुरुदेव के पास पत्र लिखा। दरवेशजी ने उत्तर दिया—श्रीपति ने जो कुछ कहा है, वह सब सत्य है। मैं परमगुरु और गुरुभाई के साथ श्रीपति के यहाँ गया था।

गुरु केवल मंत्र ही नहीं देते बल्कि अच्छे शिष्यों का काफी ख्याल रखते हैं। कदम-कदम पर सहायता करते हैं। द्वितीय महायुद्ध के समय कलकत्ते में जापानियों ने बम गिराया। लोग शहर छोड़कर भागने लगे। कलकत्ता तेजी से खाली होने लगा। रेल, जहाज, बस, कार, यहाँ तक कि लोग पैदल भागने लगे। स्थायी निवासियों की हालत काफी खराब हो गयी।

डॉक्टर मन्मथनाथ गुप्त के दवाखाने में मरीजों का आना बन्द हो गया। भूखों मरने की नौबत आ गयी। इन्हीं दिनों गुरुदेव का पत्र आया कि तुम इलाहाबाद चले जाओ। वहाँ कुंभमेला लगा है। वहाँ प्रैक्टिस करो, जम जाओगे। इस पत्र को पाते ही मन्मथ इलाहाबाद के लिए चल पड़ा।

स्टेशन आने पर टिकट बाबू ने कहा— "कुंभ में भीड़ न हो, इसलिए इलाहाबाद का टिकट देना बन्द कर दिया गया है।"

इस वक्तव्य को सुनकर उदास भाव से मन्मथ वापस लौटने लगे। तभी टिकट बाबू ने कहा— "आप डॉक्टर तो नहीं हैं ?"

"जी हाँ, मैं डॉक्टर हूँ।"

टिकट बाबू ने कहा— "डॉक्टरों के लिए रोक नहीं है। शायद वहाँ डॉक्टरों की सख्त जरूरत है।"

टिकट मिलने पर वे इलाहाबाद आये। यहाँ कई गुरु भाइयों से मुलाकात हुई। इनकी शोचनीय हालत सुनकर शांतिपुर निवासी धनंजय ने कहा— "आप हमारे यहाँ आकर प्रैक्टिस करिये। मैं वहाँ सारी सुविधाएँ दूँगा।"

धनंजय के इस निमंत्रण को स्वीकार कर मन्मथ शान्तिपुर चले आये। यहाँ भी कई डॉक्टर थे। अपरिचित वातावरण, नवागत डॉक्टर, कौन आता। धीरे-धीरे यहाँ भी उन्हें निराशा हाथ लगी। इसी बीच गाँव में हैजे का प्रकोप बढ़ा, फिर भी मन्मथ के पास कोई नहीं आया।

एक दिन दोपहर को एक मुसलमान आया। बाहर से 'डॉक्टर बाबू, डॉक्टर बाबू' आवांज देने लगा। दरवाजे के बाहर आने पर उसने पूछा— "क्या आप कलकत्ता के खिदिरपुर-वाले डॉक्टर हैं ?"

मन्मथ ने कहा— "हाँ।"

"ठीक है।" कहकर वह आदमी चला गया। दो दिन तक नहीं आया। तीसरे दिन मन्मथ मुसलमानी मुहल्ले से घर वापस आ रहे थे। अचानक वही मुसलमान दिखाई दिया। उससे पूछा— "क्यों बड़े मियाँ, फिर आप आये नहीं।"

बड़े मियाँ ने कहा— "क्या बताऊँ डॉक्टर साहब। जिस लड़की के इलाज के लिए आपके पास गया था, उसका बाप आपसे इलाज कराने को तैयार नहीं हुआ। लड़की मर गयी। मेरा विश्वास है कि अगर वह आपको बुलाता तो लड़की जरूर बच जाती।"

मन्मथ ने कहा— "यह तो अल्लाह की मर्जी होती तभी बचती। मैं तो इलाज ही करता।"

मुसलमान ने कहा— "नहीं, जरूर बच जाती। बात यह है कि जिस दिन मैं आपको बुलाने गया था, उसके एक रोज पहले शाम के वक्त लड़की की मौसी फरागत से लौट रही थी। बाँसों के झुरमुट के पास उसे एक फकीर मिले। उन्होंने मौसी से कहा—'कलकत्ते के खिदिरपुर में रहनेवाले एक डॉक्टर गाँव में आये हैं। तुम अमीना को उनके पास ले जाकर इलाज करवाओ, वह ठीक हो जायगी।' मौसी से यह खबर मुझे मिली। दूसरे दिन तलाश करते हुए मैं आपके पास गया, वर्ना मुझे क्या मालूम कि आप खिदिरपुर के डॉक्टर हैं। अगर रहमत भाई मेरी बात मान लेते तो अमीना बच जाती।"

इस लम्बी बातचीत के दौरान आसपास के लोग इकट्ठे होकर मियाँजी की बातें सुन रहे थे। उन पर इन बातों का प्रभाव पड़ा। दूसरे दिन से मुसलमानी मुहल्ले से इनकी बुलाहट आने लगी। मन्मथ का लड़का कम्पाउण्डर बना। वह बिलकुल अनाड़ी था, पर यहाँ ट्रेण्ड कम्पाउण्डर कहाँ से लाते। मजे की बात यह रही कि प्रत्येक रोगी स्वस्थ होने लगा। न केवल

मुसलमानी मुहल्ले में, बल्कि पूरे इलाके में मन्मथ की ख्याति फैल गयी। एक भी मरीज की मौत उनके इलाज से नहीं हुई।

कहने की आवश्यकता नहीं कि फकीर के रूप में स्वयं दरवेशजी ने यह समाचार उक्त मुसलमान को दिया था। इस प्रकार भुखमरी के शिकार होनेवाले डॉक्टर शिष्य की सहायता दरवेशजी ने की।

आज के युग में कौन सन्त है और कौन ठग, यह पहचानना कठिन है। कुछ लोग संत का जामा पहनकर चमत्कार दिखाते हैं। इस प्रकार भोलीभाली जनता को भ्रमित कर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। आश्चर्य की बात है कि लोग ऐसे संतों के चक्कर में फँस जाते हैं तथा उन्हें गुरुवत् श्रद्धा करते हैं।

कान्तोड़ गाँव में दरवेशजी आश्रम की स्थापना के सिलसिले में गये। आपके साथ प्रभात भौमिक, प्यारी पोद्दार, मदन तिवारी आदि शिष्य-भक्त गये थे। किसी भी गाँव में जब कोई संन्यासी पहुँच जाता है तब लोग उसका दर्शन करने या उत्सुकतावश देखने के लिए आ जाते हैं। दरवेशजी को देखने के लिए दूर-दूर से लोग आये। इस गाँव में एक साधु कुछ दिनों से अपना आसन लगाये था। गाँव के लोगों के साथ वह भी अपने प्रतिद्वन्द्वी को देखने आया। बातचीत के सिलसिले में साधु ने कहा कि वह प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी का प्रशिष्य है।

इस परिचय को सुनते ही दरवेशजी उखड़ गये। वे स्वयं गोस्वामीजी के प्रिय शिष्य हैं। उन्होंने कहा— "गोस्वामीजी ने अपने किसी शिष्य को गैरिक वस्त्र पहनने की आज्ञा दी है, ऐसी जानकारी मुझे नहीं है। आप अनधिकारी हैं। आपने गैरिक वस्त्र पहनकर अपराध किया है, अतः तुरत यहाँ से चले जाइये।"

साधु का प्रभाव गाँव के लोगों में पिछले कुछ दिनों के भीतर व्यापक रूप से पड़ा था। दरवेशजी की इस फटकार पर कुछ लोग नाराज हो गये। यह देखकर दरवेशजी ने पुनः उक्त साधु से कहा— "मैं आपके पैरों पर पड़ता हूँ। आप अपना गैरिक वस्त्र छोड़ दीजिए।"

साधु चुप रहा। इतने दिनों से वे गाँव के लोगों से श्रद्धा-आदर पाते आये हैं और आज दरवेशजी के इस अपमान से दुःखी होकर आश्रम से चल पड़े। कुछ देर बाद अपना सामान लेकर वे आश्रम के सामने से गाँव के बाहर चले गये।

साधु के जाने के कई घण्टे बाद आसमान में काले-काले बादल छा गये। तूफान आने के लक्षण दिखाई देने लगे। आश्रम में दरवेशजी के आसन के लिए मिट्टी की एक वेदी बनायी गयी थी। वहीं वे चादर ओढ़कर सो गये। असमय में उनका सोना सभी भक्तों के लिए चिन्ता का विषय बन गया। इधर दरवेशजी सोये और उधर भयंकर तूफान आ गया। आश्रम काँपने लगा। बादल गरजने लगे। नदी किनारे स्थित ताड़ के वृक्ष पर बिजली गिरी और वह जलकर भस्म हो गया। आँधी और वज्रपात का वेग कम होने पर भी वर्षा में कमी नहीं हुई। मौसम का यह हाल देखकर लोग सोचने लगे कि अष्ट प्रहर का कीर्त्तन होगा या नहीं।

बार-बार भक्त लोग दरवेशजी से पूछने लगे कि इस हालत में कीर्त्तन प्रारंभ किया जाय या नहीं ? दरवेशजी ने कहा—"जब संकल्प किया गया है तब कीर्त्तन प्रारंभ करना उचित है। अगर यह संभव न हुआ तो देखा जायगा।"

इस आदेश के बाद कीर्त्तन प्रारंभ हुआ। पानी बरसता रहा। सबेरे दरवेशजी ने कहा—

"प्यारी पकड़ ।" इस आदेश को पाकर प्यारी पोद्दार यह समझ नहीं पाये कि क्या पकड़ना है । उन्होंने कीर्त्तन स्थल में लगाये तिरपाल के खंभे को पकड़ लिया । उसी से काम हो गया । आंधी-वर्षा के रुक जाने के बाद प्रभात भौमिक ने दरवेशजी से पूछा— "आपके असमय सो जाने का प्राकृतिक दुर्योग उक्त साधु से कोई मतलब रखता है या नहीं ?"

दरवेशजी ने कहा— "उक्त साधु तांत्रिक थे । अपने क्रिया-कलाप में पारदर्शी भी थे । मेरे फटकारने पर वे नाराज हो गये और श्मशान में जाकर अभिचार करने लगे जिसके कारण यह आफत आयी । वज्रपात से ताड़ का पेड़ जल गया । यही उनका आखिरी अभिचार था । अब उनकी पूँजी समाप्त हो गयी ।"

लोगों को दरवेशजी के इस कथन पर संशय बना रहा । इस घटना के कुछ दिनों बाद कलकत्ते में डॉक्टर प्रभात भौमिक के दवाखाने में वह साधु आया । बिलकुल निर्जीव तथा निस्तेज रहा । डॉ० भौमिक ने बाजार से जलपान मँगवाकर उसे बिदा किया । उस दिन उन्हें यह ज्ञात हुआ कि दरवेशजी ने जो कहा था, वह सत्य निकला ।

इसी प्रकार अपने एक शिष्य को उन्होंने एक तांत्रिक के आक्रमण से बचाया था । घटना सन् १९३२ ई० की है । मजे की बात यह है कि यह घटना डॉ० प्रभात भौमिक के साथ घटी है । वे अपनी ससुराल कमलापुर गाँव में आये हुए थे । वहाँ पर एक प्रतिष्ठासम्पन्न साधु पहले से रहते थे । जिस दिन प्रभात बाबू ससुराल आये, उसी दिन वह साधु इनके ससुराल आया । प्रभात से बातचीत करने के बाद उसने इन्हें अपने जाल में फँसाने का निश्चय किया । साधु महाराज कठिन पीड़ा से मुक्ति, बीमारी दूर करना, मुकदमा में विजयी बनाना आदि कार्य करते थे ।

ससुराल से वापस आने के बाद एक दिन प्रभात बाबू ने अजीब सपना देखा— एक मंडप में केवल कौपीन पहने वह साधु काली मूर्ति के सामने बैठा है । काली मूर्ति जिस वेदी पर स्थापित है, उस वेदी पर एक लाल रंग की हँड़िया है । उस हँड़िया के ऊपर आम का पल्लव और एक नारियल रखा है । ध्यान भंग होते ही साधु ने दण्डवत किया और फिर सड़क पर नाचते-नाचते आगे आने लगा । प्रभात और साधु के बीच एक चौड़ा मार्ग है । साधु के गले तथा बाँह में रुद्राक्ष की मालाएँ हैं । नृत्य के ताल पर प्रत्येक रुद्राक्ष से टार्च की रोशनी की तरह प्रकाश निकलकर प्रभात के शरीर को स्पर्श कर रहा है । इस दृश्य को वे रातभर देखते रहे ।

सुबह जब वे बाथरूम जाने लगे तब उनकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया । सिर चकराने लगा । पाखाने में आने पर लगा जैसे वे सिर के बल उसमें प्रवेश कर रहे हैं । अजीब स्थिति थी । डॉक्टर को बुलाया गया । दवा दी गयी, पर कोई असर नहीं हुआ । क्रमशः उनके मन में यह विचार जन्म लेता रहा कि साधु के पास जाने पर यह रोग दूर हो जायगा । दवा काम नहीं कर रही है । अचानक उन्हें संदेह हुआ कि कहीं उस साधु ने कुछ किया तो नहीं है । आखिर उसके बारे में बार-बार मेरे मन में विचार क्यों आ रहा है ? क्यों उसके पास जाने की इच्छा हो रही है ।

तुरत सारी बातें लिखकर उन्होंने दरवेशजी के पास भेजा । वहाँ से उत्तर आया— "तुम्हारे स्वप्न के बाबत जानकारी मिली । तुम्हारा संदेह ठीक है । उस साधु ने तुम पर बाण

चलाया है। तुम कितने बड़े खतरनाक नाग हो, इसे अब वह साधु जान जायगा। उसने अब तक अनेक लोगों को परेशान किया है। तुम उसके आखिरी शिकार रहे। अब वे शिकार नहीं कर सकेंगे। मैं उनकी सारी शक्ति अपहरण कर ले रहा हूँ। तुम भगवान् की सन्तान हो। तुम्हारे ऊपर कोई तंत्र-मंत्र काम नहीं देगा। तुम्हें चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं। मैंने प्रतिकार कर दिया है।''

कभी-कभी दरवेशजी सामान्य चमत्कार से लोगों को अपना लेते थे। पुरी में आयोजित जटिया बाबा के तिरोधान उत्सव से दरवेशजी अपने अनेक शिष्यों के साथ कलकत्ता वापस आ रहे थे। युद्ध के दिन थे। कलकत्ता के बाजारों में उन दिनों धोती-साड़ी कपड़ों का भयंकर अभाव था। पैसे देने पर भी नहीं मिलते थे। दूसरी ओर पुरी में इसका बिलकुल अभाव नहीं था। लेकिन उड़ीसा सरकार की ओर से राज्य के बाहर कपड़े ले जाने पर सख्त पाबन्दी लगायी गयी थी। रेल, बस तथा मार्ग में तलाशी के साथ-साथ धर-पकड़ जारी थी। खुरदा स्टेशन पर गाड़ी के रुकते ही राज्य के कर्मचारियों ने तलाशी लेना शुरू किया।

इधर दरवेशजी के सभी शिष्य पुरी में नये कपड़े खरीद चुके थे। इस आकस्मिक तलाशी से लोग घबरा गये। कपड़े जब्त होने के अलावा गिरफ्तारी भी हो सकती है। इन लोगों को अफरा-तफरी करते देख दरवेशजी ने कारण का पता लगाया। बाद में उन लोगों से कहा— ''सभी लोग अपने कपड़े यहाँ लायें और मेरे आसन के नीचे रख दें।''

कपड़ों की वेदी बन गयी। उस पर दरवेशजी का कम्बल बिछा दिया गया। थोड़ी ही देर बाद उस कमरे में तलाशी लेनेवाले आये और पूछा— ''क्यों साधुजी, आपके पास नये कपड़े हैं ?''

प्रश्न अंग्रेजी में किया गया और उत्तर भी दिया दरवेशजी ने अंग्रेजी में— ''नहीं, आप देख लें।''

कहीं कुछ संदेहजनक सामग्री उन्हें दिखाई नहीं दी। शिष्यों को समझते देर नहीं लगी कि गुरु के प्रताप के कारण सारे वस्त्र गायब हो गये थे।

इसी प्रकार एक बार परमहंस विशुद्धानन्दजी के आश्रम में उनका दर्शन करने के लिए दरवेशजी गये। बातचीत करने के थोड़ी देर बाद उन्होंने पीने के लिए पानी माँगा। परमहंसजी के आदेश पर एक शिष्य ने उन्हें गिलास में पानी दिया। गिलास हाथ में लेते ही उसमें से फिनायल की महक आने लगी।

दरवेशजी ने कहा— ''मैंने पानी माँगा था और मुझे दूध दिया गया ?''

इतना कहकर उन्होंने गिलास को फर्श पर फेंक दिया। लोगों ने आश्चर्य से देखा— चारों ओर दूध बिखर गया है। दरअसल यह दो साधुओं का आपसी विनोद रहा। स्वामी विशुद्धानन्द ने कहा— ''शेर का बच्चा है।''

सद्‌गुरु अपने शिष्यों के मन की बात अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति के जरिये ज्ञात कर लेते हैं।

काशी में उन दिनों सर्वत्र चोरियाँ हो रही थीं। पुलिस को बराबर असफलता मिलती रही। लोग चोरों के कारण चारों ओर खिड़की-दरवाजा बन्द करके घर में सोते थे।

सोनारपुर स्थित विजयकृष्ण मठ के दरवाजे बराबर खुले रहते थे। अब चोरों के डर से रात को बन्द कर दिया जाता था। इसके अलावा भक्तों में कुछ लोग पारी लगाकर पहरा देते थे। एक दिन शैलेन राय जागते हुए पहरा दे रहे थे। उनकी आँखें ढपी जा रही थीं। अचानक उन्हें लगा कि सिरहाने किसीने सलाई जलाई है। चौंककर उसने देखा—देवीचरण दरवेशजी के तंबाकू की सामग्री के पास बैठा चिलम तैयार कर रहा है। उसे संदेह हुआ कि आखिर इस वक्त तंबाकू कौन पियेगा ? दरवेशजी भोजन के बाद एक बार हुक्का पीते हैं।

शैलेन ने पूछा— "यह क्या हो रहा है ?"

देवीचरण ने कहा— "ठाकुर ने चिलम चढ़ाने को कहा है।"

शैलेन ने आश्चर्य से देखा कि इतनी रात को दरवेशजी हुक्का पीने लगे। उसके लिए इससे अधिक विस्मय की बात यह रही कि कमरे के दोनों दरवाजे भीतर से बन्द करके वह लेटा था। आखिर देवीचरण भीतर कैसे आया ? दरवेशजी ने खोला नहीं और उसके बारे में प्रश्न नहीं उठता।

दूसरे देवीचरण से पूछने पर उसने कहा— "तुम तो यह जानते ही हो कि गुरुदेव मुझे कितना चाहते हैं। मुझे मठ की शोभा कहते हैं। मेरे सभी गुरुभाई उनकी सेवा करते हैं, पर मैं नहीं कर पाता। कभी हुक्का तैयार करके भी नहीं दे सका। कल रात को छत पर इसी चिन्ता में परेशान था। नींद नहीं आ रही थी। रात बढ़ रही थी और मेरे मन की पीड़ा भी। पता नहीं क्यों मन में उत्कट इच्छा हुई कि एक बार ठाकुर के कमरे के पास जाऊँ। तभी याद आया कि जाने से क्या फायदा। भीतर से बन्द होगा। भीतर जाने के लिए आवाज देनी पड़ेगी। ठाकुर की नींद में खलल पड़ेगा। लेकिन इधर मेरा मन बार-बार यही कह रहा था कि तुझे दरवेशजी बुला रहे हैं। काफी ऊहापोह करने के बाद मैं हल्के कदमों से दरवेशजी के कमरे के पास आकर खड़ा हो गया। सोचा, धीरे से आवाज दूँ। दरवाजे पर हाथ रखते ही वह अपने आप खुल गया। भीतर प्रवेश करते ही दरवेशजी ने कहा—'कौन ? देवी, जरा चिलम चढ़ा तो।' दरवेशजी ऐरे-गैरे के हाथ का बनाया चिलम नहीं पीते थे। मैं तो बिलकुल अनाड़ी हूँ। असल में मेरी मनोकामना पूर्ण करने के लिए उतनी रात गये मुझे अपने पास बुलाया था और मेरी सेवा को उन्होंने ग्रहण किया।"

देवीचरण की कहानी सुनकर शैलेन बाबू चकित रह गये। गुरुदेव कब किस समय भक्तों की इच्छापूर्ति करते हैं, इसे समझना कठिन है।

कलकत्ता के एक उद्योगपति अनाथ दरवेशजी का दर्शन करने आये। यहाँ आकर वे दरवेशजी के लिए चिलम तैयार करने के बाद टिकिया सुलगाने लगे। इसके बाद चिलम पर आग को ताव देने के लिए हवा करने लगे। आग लहलहा उठी। अनाथ का चेहरा आग की रोशनी में चमकने लगा। यह दृश्य देखकर दरवेशजी ने कहा—"टिकिया की आँच में अनाथ का चेहरा कितना सुन्दर दिखाई दे रहा है।"

हुक्के पर चिलम रखते हुए अनाथ ने कहा— "चेहरा सुन्दर कैसे लगेगा ठाकुर। मेरी खोपड़ी का घाव ठीक नहीं हो रहा है।"

दरवेशजी ने कहा— "कैसा घाव है, देखूँ जरा।"

अनाथ ने उनके आगे सिर झुकाया। दरवेशजी ने घाव पर हाथ फेरते हुए कहा—"दूर, यह कुछ भी नहीं है।"

इसके बाद कोई बातचीत नहीं हुई। स्नान करने के पश्चात् कंघी करते समय अनाथ ने अनुभव किया कि खोपड़ी का घाव गायब है। बार-बार हाथ फेरने पर भी घाव का पता नहीं चला। आँखों का भ्रम समझकर वह अपनी माँ के पास जाकर बोला— "माँ, मेरे सिर पर घाव था, क्या हुआ देखो तो।"

माँ ने कहा— "यह ठाकुर की कृपा है। अब तुम यह बात किसीसे मत कहना। यहाँ तक कि अपनी पत्नी को भी मत बताना।"

× × ×

पूर्वी बंगाल (बंगला देश) के फरीदपुर जिले में खालिया ग्राम का चटर्जी घराना प्राचीन घराना है। दुर्गाचरण चटर्जी साधारण क्लर्क से डिप्टी कलक्टर हुए थे। अपने जीवनकाल में उन्होंने काफी उपार्जन किया। गाँव में जमीन खरीदी, कलकत्ता, पुरी, बनारस आदि शहरों में मकान बनवाया। दुर्गाचरण के सबसे छोटे पुत्र कुलचन्द्र आगे चलकर इन सभी जायदादों के एकमात्र वारिस हुए।

कुलचन्द्र तंत्र-उपासक थे। तंत्र-प्रणाली के अनुसार साधना करते थे। इनके पुत्र किरणचन्द्र ने अपने पिता को शिवा-भोग देते देखा था। विभिन्न प्रकार के खाद्य बनाकर छत पर रख दिया जाता था। पता नहीं, कहाँ से एक सियार घर में आता और सीढ़ी से ऊपर जाकर चुपचाप सारा भोजन खाकर चल देता था। कुलचन्द्र तरह-तरह के तंत्र-मंत्र भी जानते थे।

कुलचन्द्र जमींदार, कुलीन ब्राह्मण होने के अलावा ऊँचे दर्जे के तांत्रिक भी थे। मात्र ५६ वर्ष की उम्र में कुलचन्द्र का देहान्त हो गया। उन दिनों किरणचन्द्र की उम्र ११ साल थी। कुलीन प्रथा के अनुसार कुलचन्द्र ने तीन विवाह किये थे। उनकी दूसरी पत्नी अन्य सौतों से उम्र में बड़ी होने तथा ज्येष्ठ पुत्र की जननी होने के कारण घर की मालकिन समझी जाती थी। ज्येष्ठ पुत्र जब तेईस वर्ष का किशोर था तब रसमयी को एक लड़की हुई। इस लड़की के जन्म के दो वर्ष बाद कनिष्ठ पुत्र किरणचन्द्र का जन्म हुआ। बड़ी बहू प्रसन्नमयी निस्संतान थीं, इसलिए मझली बहू रसमयी ने उन्हें इस पुत्र को दे दिया था। किरणचन्द्र अपनी बड़ी माँ को माँ समझते रहे। किरणचन्द्र ने जब जन्म लिया, उस वक्त इनके भतीजे की उम्र आठ साल थी, इसलिए रसमयी जरा लज्जा अनुभव करती थीं। यहाँ तक कि किरणचन्द्र अपनी भाभी प्रसन्नकाली के स्तनपान से बड़े हुए थे।

सहसा किरण के बड़े भाई का असामयिक निधन हो गया। रसमयी उन दिनों बनारस में थीं। पुत्र-शोक से वे बीमार पड़ गयीं। यह समाचार पाते ही किरण काशी आये। यहीं उन्हें रसमयी से अपनी जन्म-कहानी ज्ञात हुई। रसमयी ने कहा—"जब तू पैदा हुआ तब मेरी उम्र बच्चा जनने की नहीं थी। मासिक-धर्म बन्द हो चुका था। तेरे जन्म पर मुझे प्रसन्नता नहीं हुई थी। लेकिन जब श्रीश की मौत हो गयी तो सोचा कि अगर किरण न पैदा होता तो पिण्डदान लोप हो जाता।"

किरण के बारे में रसमयी ने कई विचित्र घटनाओं का भी जिक्र किया। उन्होंने बताया कि किरण की छठी के दिन रात को माँ ने एक अद्‌भुत स्वप्न देखा था। लाल साड़ी, माँग में

सिन्दूर लगाये घुटनों के बल एक महिला सौरी में आयी। सिरहाने की ओर से बच्चे को माँ के पास से उठाने का प्रयत्न करने लगी। तभी एक जटाधारी महापुरुष जो गले में तरह-तरह की मालाएँ तथा तन पर गेरुआ वस्त्र पहने हुए थे, प्रकट हुए। उन्होंने अपने दण्ड से उस महिला को मारते हुए कहा— "दूर हो जाओ। यहाँ नहीं।"

मार खाकर महिला डरकर भाग गयी। इसके बाद उस महापुरुष ने हँसते हुए रसमयी से कहा— "क्या तुम यह बच्चा मुझे दोगी ?" रसमयी बेहिचक महापुरुष की गोद में बच्चे को डालती हुई बोली— "पिताजी, यह बालक आपका है। आप जो चाहें, करें।"

महापुरुष ने बच्चे को माँ के हाथ वापस करते हुए कहा— "अभी तुम्हारे पास रहेगा। मैं जा रहा हूँ।" इसके बाद रसमयी की नींद खुल गयी।

दूसरे दिन इस स्वप्न का विवरण सुनकर किरण के पिताजी ने कहा—"स्वयं महादेव आये थे। किरण की माँ उन्हें महादेव समझकर निश्चिन्त हो गयी। मगर सन् १८६६ ई० में किरण जब प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी से दीक्षा लेकर लौटा तब अपने साथ उनका एक चित्र ले आया था। उस चित्र को देखते ही रसमयी ने कहा— "यही साधु थे जिन्हें मैंने सौरी में देखा था। आज मैं तेरी ओर से निश्चिन्त हो गयी।"

सन् १८६६ में गोस्वामीजी ने पुरी में किरण से कहा था—"छठी के दिन ही तुम्हें भगवान् ने ग्रहण किया था। तुम महादेव के दास हो। वे स्वयं आकर तुम्हें पूजा दे गये थे।"

किरणचन्द्र चट्टोपाध्याय श्री कुलचन्द्र चट्टोपाध्याय के कनिष्ठ पुत्र और श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामी के शिष्य थे। जब आपकी उम्र केवल १७ साल की थी तब आपकी दीक्षा हुई थी।

सन् १६०२ में जब आप अपने गुरुभाइयों के साथ दक्षिण भारत की यात्रा पर गये थे तब विजयवाड़ा नगर में पहुँचते ही आपको अपने पूर्वजन्म की स्मृतियाँ याद आ गयीं। आपको याद आया कि इस पहाड़ी पर एक गुफा है। उसके भीतर एक आसन है। उसी आसन पर बैठकर आप साधना किया करते थे। आपके कथन की सत्यता जाँचने के लिए अमृतलाल तथा अन्य कई व्यक्ति पहाड़ के दूसरी ओर गये। उन्हें यह देखकर चकित रह जाना पड़ा कि किरण की सारी बातें सही हैं।

किरण की उम्र जिन दिनों तीन साल की थी, उन्हीं दिनों पिता-माता के साथ वे काशी आये थे। माता-पिता के साथ वे तैलंग स्वामी का दर्शन करने गये थे। तैलंग स्वामी उस वक्त लेटे हुए थे। माँ की गोद में बच्चे को देखते ही उसे उन्होंने अपनी गोद में ले लिया। महापुरुष के शरीर से बच्चे का पैर स्पर्श हो रहा है देखकर माँ व्यस्त हो उठी। तैलंग स्वामी ने बच्चे के भाल पर विभूति लगाकर बच्चे को माँ की गोद में वापस कर दिया।

वहाँ जो लोग मौजूद थे, उन लोगों ने कहा कि आगे चलकर जरूर प्रतिभाशाली साधु होगा, क्योंकि बाबा किसी भी बच्चे को लेकर इस तरह न तो प्यार करते हैं और न विभूति लगाते हैं। जीवन्त विश्वनाथ के प्रतीक स्वामीजी ने बालक के भविष्य को पहचानकर अपना आशीर्वाद दिया है।

सन् १८६२ ई० में यानी पिता के निधन के १८ माह बाद बालक किरणचन्द्र का उपनयन हुआ। इस घटना के बाद किरण को ढाका के जुबली स्कूल में पढ़ने के लिए भेजा गया। वहाँ छात्रावास में रहते हुए वे 'ब्राह्म-समाज' से प्रभावित हुए। छात्रावास के अधिकांश

छात्र आवारा और शोहदे थे, पर 'ब्राह्म-समाज' के कारण किरण अधिक पतित नहीं हुए। निरन्तर 'ब्राह्म-समाज' में भाग लेने के कारण उन्होंने प्रथम बार विजयकृष्ण गोस्वामी का नाम सुना। गोस्वामीजी इस समाज के प्रमुख कर्णधार थे।

एक बार ढाका से स्टीमर से घर लौट रहे थे। डेक पर खड़े होकर सामने का दृश्य देख रहे थे। बगल में पर्दे से घिरे भाग में एक महिला अपने दो साल के बच्चे को लेकर बैठी थी। अचानक रेलिंग की दरार से वह नदी में गिर पड़ा। महिला के पति कुछ दूर बैठे थे। बच्चे को नदी में गिरते तथा उसकी माँ को आर्तनाद करते किरण ने देखा। इसके साथ ही वह एक छलाँग में मेघना की उत्ताल तरंगों पर कूद पड़ा। कूदते ही संयोग से बच्चा पकड़ में आ गया। जहाज के पास नदी अधिक हिलोरें ले रही थी। किरण के लिए बच्चे को पकड़कर देर तक तैरना या पानी में उतराये रहना संभव नहीं था। लेकिन साहस के साथ वह उतराया रहा। इसी बीच जूता और धोती को उसने उतार डाला। कमीज उतारना संभव नहीं हुआ। अब तक स्टीमर काफी दूर निकल गया था। वापस लौटकर बोट की सहायता आने में बीस मिनट लगा। जब दोनों को जहाज पर लाया गया तब बच्चा बेहोश था और किरण भी अर्द्ध-मूर्च्छित था।

थोड़ी ही देर में दोनों होश में आ गये। बच्चे की माँ किरण को कंठ से लगाकर "मेरे भइया" कहती हुई रो पड़ी। आसपास खड़े लोग उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखते रहे। आगे चलकर गुरुदेव गोस्वामीजी ने इस कार्य के लिए किरण की प्रशंसा की थी।

सन् १८६३ ई० में इन्हें अध्ययन के लिए कलकत्ता भेजा गया। यहाँ का जीवन बहुत ही निकृष्ट रहा। किरण आवारा लड़कों की सोहबत में आकर शोहदा बन गये। थियेटर, अड्डेबाजी, लड़कियों का पीछा करना आदि अपकर्म करने लगे। उम्र में बड़े अपने भतीजे की उन्हें फिक्र नहीं थी। फलस्वरूप बड़े भाई ने इन्हें गाँव वापस बुला लिया। इन दिनों इनकी उम्र सोलह साल थी।

बड़े भाई ने बरिशाल स्थित ब्रजमोहन इंस्टीट्यूट के प्रधानाध्यापक श्री अश्विनीकुमार को पत्र लिखा औेर किरण को वहाँ अध्ययन के लिए रवाना किया। यहीं माखनलाल गंगोपाध्याय से परिचय हुआ। माखन से उनका पारिवारिक संबंध था। माखन की बुआ किरण की सौतेली माँ थीं। दूसरी ओर किरण की सौतेली बहन मनमोहिनी माखन की सौतेली माँ थीं। आगे चलकर इन दोनों में गहरी मित्रता हुई थी।

इन्हीं दिनों प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी से माखन को 'साधन' मिला। किरण ने निश्चय किया कि गोस्वामीजी अवश्य महापुरुष हैं। उनके प्रति श्रद्धा रखता हूँ, मन में पूजा करता हूँ, पर उनसे मंत्र नहीं लूँगा। क्या बिना मंत्र लिये किसीके प्रति भक्ति नहीं होती। इसी बीच दुर्गापूजा की छुट्टियों में किरण माखन के साथ अड़ियल आया। इसके पूर्व भी वह माखन के घर आ चुका था और उसकी बहन सरोजबाला को देख चुका था।

इस बार वह बाहर बरामदे में अकेला बैठा था तभी सरोजबाला ने आकर सीधा प्रश्न किया—"अभी तक आपको साधन नहीं मिला ?"

"कैसा साधन ?" किरण ने चौंककर पूछा।

किरण का प्रश्न सुनकर वह लड़की अवाक् रह गयी। बोली—"आश्चर्य की बात है,

आप साधन के बारे में कुछ नहीं जानते ?" इसके बाद बिना कुछ बोले वह अन्दर महल में चली गयी।

इधर किरण के अन्तर में हलचल मच गयी। नाना प्रकार के प्रश्न उभड़ने लगे। अगर मैं साधन न भी लूँ या ले लूँ तो इस लड़की का उससे क्या वास्ता है ? उसने निश्चय किया कि अगर अब मुलाकात होगी तो इस बारे में उससे प्रश्न करेगा।

इस घटना के कई दिनों बाद की बात है। एक रात को एक ही बिस्तर पर माखन और उसकी माँ के साथ किरण सो रहा था। स्वप्न में उसने श्री राधाकृष्ण की युगल मूर्ति का दर्शन किया। एक वेगवती नदी के इस किनारे वह खड़ा था और दूसरी ओर वह युगल मूर्ति थी। उस युगल मूर्ति के पास जाने के लिए उसका मन व्याकुल हो उठा। धोती-कुर्ता उतारकर फेंकने के बाद उसने 'ब्रह्म कृपा हि केवलम्' कहते हुए ज्योंही पानी में कूदना चाहा तभी पीछे से किसीने कंधे पर हाथ रखते हुए ममताभरे शब्दों में कहा—"ठहरो, स्वयं तैरकर नदी पार नहीं हो सकते।"

किरण ने पलटकर ज्योंही पीछे की ओर देखा त्योंही उसकी नींद गायब हो गयी। दूसरे दिन बिस्तर पर बैठा रात को देखे स्वप्न पर विचार कर रहा था। ठीक इसी समय सरोजबाला कमरे में आयी। उसे देखते ही किरण ने पूछा— "उस दिन तुम नाराज होकर चली गयीं। गोस्वामीजी से साधन माँगने पर क्या मिल जाता है ? मैंने सुना है कि न जाने कितने लोगों को उन्होंने साधन बिना दिये बार-बार लौटा दिया है। मुझे भी वापस नहीं करेंगे, इसका क्या प्रमाण है ?"

सरोजबाला ने कहा— "साधन पाना मनुष्य के वश की बात नहीं है, यह तो जिसका साधन है, वह समझ सकते हैं। मगर साधन-प्रार्थी होना सौभाग्य की बात है। आपमें है, मेरी ऐसी धारणा थी, इसीलिए उस दिन मैंने कहा था। इसके लिए मुझे क्षमा करें। साधन बिना पाये केवल प्रार्थी बनकर जो व्यक्ति मर सकता है, उसके लिए सौभाग्य की बात है। आप बेकार समय नष्ट कर रहे हैं।"

सरोजबाला की बातें सुनकर किरण स्तंभित रह गया। साधन न पाकर केवल प्रार्थी बनकर रहना भी सौभाग्य की बात है। ऐसी बात उसने कभी नहीं सुनी। गोस्वामीजी पर इन लोगों की निष्ठा देखकर वह चकित रह गया। पिछली रात को देखे गये स्वप्न की बात माखन से कहने पर उसने कहा—"किरण, तुम व्यर्थ में समय नष्ट कर रहे हो। जल्द-से-जल्द गोस्वामीजी के चरणों का आश्रय लो। उन्होंने तुम्हें बुलाया भी है। उम्र बढ़ती जा रही है।"

यह बात सुनकर किरण का सारा अन्तर रो पड़ा। उसने गोस्वामीजी के नाम एक पत्र लिखा। प्रेरणा देने के लिए सरोजबाला के प्रति उसने कृतज्ञता प्रकट की। यही सरोजबाला आगे चलकर किरण की प्रेरणादात्री, सहधर्मिणी, सहकर्मिणी बन गयी।

किरण के पत्र का उत्तर नहीं मिला। पुनः पत्र लिखा गया, पर गोस्वामीजी ने उत्तर नहीं दिया। वे बरिशाल लौट आये और यहाँ सत्संग करने लगे। कुछ दिनों के बाद समाचार मिला कि गोस्वामीजी वृन्दावन जा रहे हैं। इस समाचार को सुनकर वे विचलित हो उठे। वृन्दावन जाने के पूर्व अगर साधन नहीं मिला तो फिर मिलने की उम्मीद नहीं रहेगी। इसी

चिन्ता में परेशान होकर उन्होंने गोस्वामीजी के पुत्र योगजीवन गोस्वामी के नाम पत्र लिखा। वहाँ से जवाब आया— "पछाँह की यात्रा से लौटने के बाद साधन मिलेगा।"

इस जवाब को पढ़कर किरण बेचैन हो उठा। पता नहीं, वहाँ से कब लौटेंगे और कब मुझे साधन देंगे। गोस्वामीजी की वृन्दावन-यात्रा प्रारंभ हो, उसके पहले एक बार उनसे मिलना चाहिए। उनके दर्शन के लिए उसका हृदय व्याकुल हो उठा। तुरत वह अपने मित्रों के साथ कलकत्ता आया। गोस्वामीजी यहाँ अपने एक शिष्य के घर ठहरे हुए थे।

गोस्वामीजी का दर्शन करने के बाद किरण का चित्त शांत हो गया। बातचीत के सिलसिले में साधन की चर्चा चलने पर गोस्वामीजी ने कहा—"इसके पहले कोई पत्र भेजा था ?"

"जी हाँ। जवाब मिला था कि वृन्दावन से वापस आने पर दीक्षा दी जायगी।"

गोस्वामीजी ने कहा— "तब तो तुम्हें उत्तर मिल ही गया।"

पाँच दिनों तक गोस्वामीजी के साथ रहने के बाद किरण बरिशाल लौट आये। कुछ दिनों बाद किरण की मानसिक स्थिति खराब होने लगी। भोजन-नीद में उच्चाटन हो गया। किसी अदृश्य शक्ति के आकर्षण से वे कलकत्ता चले आये। यहाँ आने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि गोस्वामीजी कई रोज हुए वृन्दावन चले गये हैं। इस समाचार से उन्हें जबर्दस्त आघात लगा। गोस्वामीजी के बिना यह जीवन व्यर्थ है। उनके बिना मैं जीवित नहीं रह सकता।

इसी चिन्तन में एक दिन डेरे से चलकर वे गंगा किनारे जगन्नाथ घाट पर आये। आत्महत्या करने के पूर्व वे सोचने लगे— क्या इस अकिंचन को वे अपने पास बुला नहीं सकते ?

तभी उस घने अँधेरे में गोस्वामीजी की ज्योतिर्मयी मूर्ति प्रकट हुई। उन्होंने ऊपर आने के लिए हाथ से इशारा किया। वे कैसे गंगा पार हुए, यह याद नहीं। होश आने पर उन्होंने देखा कि भीगे वस्त्र पहने वे रेलवे के किनारे-किनारे पैदल चल रहे हैं। उनकी आँखों के सामने गोस्वामीजी की मनोमुग्धकारी मूर्ति विराजमान है और वे आँसुओं से उनके चरणों को धो रहे हैं। किरण को लगा जैसे वे युगों से पैदल वृन्दावन की ओर बढ़ते जा रहे हैं। उस वृन्दावन की ओर जा रहे हैं जहाँ उनके आराध्यदेव विराजमान हैं। यमुना किनारे श्रीकृष्ण की बाँसुरी की तान सुन रहे हैं। गोस्वामीजी की मूर्ति के साथ-साथ दूसरे दिन दोपहर को किरण बाली (कलकत्ते का एक उपनगर) पहुँचते ही थककर रेल की पटरी के पास बैठ गये।

तभी एक स्थानीय व्यक्ति वहाँ आया और उसे साथ लेकर अपने घर गया। यहाँ स्नान, भोजन करने के बाद जब खब्तीपन दूर हुआ तब किरण को लगा कि यह व्यक्ति तो परिचित है। उन्होंने किरण को हर तरह से समझाया। उनके भतीजे के पास समाचार भेजने को कहा, पर वे किसी बात पर राजी नहीं हुए। लाचारी में परिचित व्यक्ति ने उनके लिए विंध्याचल तक का टिकट बनवाकर गाड़ी पर चढ़ा दिया।

आखिर विंध्याचल तक का टिकट उसने क्यों लिया। यह बात उसकी समझ में नहीं आयी। दूसरे दिन विंध्याचल स्टेशन पर उतरते ही एक व्यक्ति ने आकर कहा— "मुझे आपको यहाँ से योगमाया मंदिर में ले जाने का आदेश दिया गया है।"

अब किरण की समझ में आया कि उसके लिए विंध्याचल का टिकट क्यों खरीदा गया।

योगमाया मंदिर तक पहुँचाकर वह व्यक्ति अदृश्य हो गया। किरण भीतर जाकर माता योगमाया का दर्शन करने लगे। किरण को लगा जैसे योगमाया देवी कह रही हैं—"डरने की क्या बात है ? अन्तर और बाहर मैं तुम्हारी शान्तिरूपा जननी हूँ। तुम्हें मार्ग दिखाती रहूँगी।" इतना सुनते ही किरण मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

माता योगमाया का उन्हें दर्शन हुआ। अगर यह दर्शन उन्हें न होता तो गोस्वामीजी की कृपा भी प्राप्त न होती। जब किरण होश में आये तो देखा कि माता अन्तर्धान हो गयी हैं। पगडंडियों के सहारे किरण पहाड़ी पर स्थित सिद्धेश्वरी मंदिर आये। वहाँ पहुँचने पर पुजारी ने कहा— "आपके बारे में एक जटाधारी बाबा अभी-अभी कह गये हैं कि आज आप यहीं प्रसाद ग्रहण करेंगे।"

एकाएक किरण ने देखा— सिद्धेश्वरी मंदिर के सामने सुनहला प्रकाश फैल गया। मंदिर के भीतर विजयकृष्ण गोस्वामी और उनकी पत्नी योगमाया देवी युगल मूर्ति के रूप में उपस्थित हैं। उसे लगा जैसे हाथ के इशारे से उसे बुला रहे हैं। किरण बिलकुल आत्मविस्मृत हो गये। भूख-प्यास गायब हो गयी। उच्च स्वर में हरि-ध्वनि करते हुए वे पागलों की तरह दौड़ने लगे। इस आनन्द के कारण वे मार्ग भूल गये।

मार्ग भूलकर जब वे इधर-उधर भटक रहे थे तभी स्वामी कुमारानन्द के शिष्य स्वामी हरिहरानन्द भारती के साथ मुलाकात हो गयी। उन्हें भूखा समझकर स्वामी हरिहरानन्द एक गुफा में ले गये। नमक-मसाला विहीन उबला हुआ साग उन्हें खाने को दिया। स्वामीजी अपने गुरु के आदेशानुसार पिछले ग्यारह वर्ष से उबला हुआ साग खाते आ रहे हैं। उबला हुआ साग किरण को अच्छा लगा।

दो दिन यहाँ रहने के बाद किरण पुनः विंध्याचल स्टेशन आये। टिकट खरीदने लायक पैसे नहीं थे। सोचा पास में पैदल ही चलूँ। ठीक इसी समय एक सज्जन उपयाचक बनकर उन्हें अपने साथ इलाहाबाद ले आये। गाड़ी पर इस अपरिचित व्यक्ति की जबानी प्रयाग के रंगीन बाबा की कहानी सुनकर स्टेशन से सीधे बाबा के आश्रम पर आये। जोरों से प्यास लगी थी। आश्रम में आते ही बाबा ने घर के कोने में रखा मट्ठा पीने को कहा। मट्ठा पी लेने के बाद बाबा ने कहा—"अब देर मत करो। तुरत स्टेशन चले जाओ। गाड़ी आ रही होगी।"

किरण बिना कुछ बोले चलने लगा तब रंगीन बाबा ने कहा—"बाबा को मेरा प्रणाम कहना।" यहाँ रंगीन बाबा ने जिस बाबा को प्रणाम करने को कहा, वे थे—गोस्वामीजी। किरण को समझते देर नहीं लगी कि मैं यहाँ आऊँगा, इसकी जानकारी बाबा को पहले से थी।

स्टेशन आने पर उन्होंने देखा कि मथुरा जानेवाली गाड़ी बस छूटने ही वाली है। बिना टिकट गाड़ी पर सवार होने की इच्छा नहीं हुई। वे चुपचाप प्लेटफार्म पर खड़े रहे। गाड़ी चल पड़ी। चलती गाड़ी पर सवार एक टिकट चेकर ने इन्हें पकड़कर डिब्बे के भीतर खींच लिया।

किरण ने कहा कि न तो मेरे पास टिकट है और न पैसे। मैं रेलवे को धोखा नहीं देना

चाहता। कृपया मुझे अगले स्टेशन पर उतार दीजिएगा। वृद्ध रेल कर्मचारी किरण की सरलता पर मुग्ध हो गया। वे अपनी जिम्मेदारी पर उसे मथुरा ले आये।

स्टेशन पर उतरते ही पंडों ने किरण को घेर लिया। सहसा एक पंडे ने कहा कि मेरा नाम पुड़ी-कचौड़ी पंडा है। मैं गोस्वामीजी का खास पंडा हूँ। आप मुझ पर भरोसा कर सकते हैं।

गोस्वामीजी का नाम सुनकर किरण प्रसन्न हो गया। उसने पूछा—"मैं गोस्वामीजी के पास ही जाऊँगा, यह बात आपको कैसे मालूम हुई ?"

पंडे ने कहा— "आपकी तरह अनेक बाबू वहाँ हैं। चलिये, मथुरा-दर्शन कर लीजिए, फिर वहाँ जाइयेगा।"

पास में रकम न रहने की वजह से किरण मथुरा-दर्शन के लिए राजी नहीं हुआ। पुड़ी-कचौड़ी पंडा ने बाजार से जलपान खरीदकर किरण को खिलाया। इसके बाद एक गाड़ी में बैठाकर इन्हें वृन्दावन की ओर रवाना कर दिया। गाड़ीवान से कहा—"आपको गोस्वामीजी के आश्रम में पहुँचा देना।"

गाड़ी पर सवार कुछ दूर आने के बाद किरण ने देखा कि एक यात्री भूमि पर साष्टांग प्रणाम करते हुए यात्रा कर रहा है। इस दृश्य को देखकर उनकी इच्छा हुई कि ब्रजभूमि की रज शरीर पर लगाते हुए वे भी स्वयं इसी तरह यात्रा करें। बस, फिर क्या था, वे गाड़ी से कूद पड़े। इधर गाड़ीवान ने सोचा— यह लड़का पागल है। शायद भाग जाना चाहता है। किरण को पकड़ने के लिए छीना-झपटी करने लगा। काफी देर बाद किरण यह समझाने में सफल हुआ कि वह वाकई पागल नहीं है। वह यहाँ से पैदल ही वृन्दावन जाना चाहता है।

बात जम गयी। गाड़ीवान ने इसके बाद न कोई आग्रह किया और न कुछ कहा। किरण को यह बात मालूम नहीं थी कि गोस्वामीजी का आश्रम वृन्दावन में कहाँ है। पैदल चलकर वह दोपहर को वृन्दावन पहुँचा। धाम पर पहुँचते ही उसने देखा कि एक साधु "जय जय राधे गोविन्द" गाते हुए चल रहे हैं। उन्हें प्रणाम करने पर उन्होंने किरण को गले से लगा लिया और साथ लेकर चलने लगे। मार्ग में कोई बातचीत नहीं की।

उन दिनों गोस्वामीजी तीर्थमणि कुंज में निवास कर रहे थे। कुंज के सामने पहुँचकर साधु ने कहा— "वे इसी मकान में हैं। बाबा को मेरा प्रणाम कहना।"

किरण इस बात को समझ गये कि कलकत्ता से यहाँ आने तक जितनी अलौकिक घटनाएँ हो रही हैं, यह सब गोस्वामीजी की लीला है। बाली, विंध्याचल, प्रयाग, इलाहाबाद तथा मथुरा स्टेशन से लेकर इस साधु के आविर्भाव तक सभी कुछ उनके लिए एक स्वप्न जैसा था। दो दिन बाद ज्ञात हुआ कि उक्त साधु का नाम कमलदास बाबाजी है।

गोस्वामीजी के पास पहुँचते ही किरण फफककर रो पड़े। उन्हें अपनी गोद में खींचकर उनके सिर पर हाथ फेरते हुए गोस्वामीजी ने कहा— "कई दिनों से लड़के को भात खाने को नहीं मिला है। इसे भोजन कराओ।"

यमुना में स्नान करने के बाद किरण ने आश्रम में आकर भोजन किया। भोजन के बाद वे हुक्का पी रहे थे कि इसी समय कुंज गुहठाकुरता ने आकर कहा—"गोस्वामीजी का आदेश है कि आज रात को आपका साधन होगा।"

इस समाचार को सुनते ही किरण खुशी से नाचने लगे। आज उन्हें बहु प्रतीक्षित राज्य मिलेगा। फलस्वरूप हाथ से हुक्का गिर गया। मसहरी में आग लग गयी। एक अजीब हादसा हो गया। सारी घटना सुनने के बाद गोस्वामीजी ने कहा— "लड़के का दिमाग जरा क्रेक है।"

रविवार, आषाढ़ शुक्ल नवमी, सन् १८९६ ई० के दिन रात एक बजे वृन्दावन में, तीर्थमणि कुंज में श्री श्री गोस्वामी ने किरण को दीक्षा दी। किरण का जीवन धन्य हो गया।

आगे चलकर किरणचन्द्र ने गुरु की महिमा का उल्लेख करते हुए कहा है— "श्री गुरु भगवान्स्वरूप त्रिगुणातीत, निष्क्रिय ब्रह्म हैं। त्रिगुण प्रारंभ होने के पूर्व जो आदिगुण रहता है, श्री गुरु उसी आदिगुण अर्थात् तमस् में श्वेतवर्ण के रूप में विराजते हैं। यही तमस् जब त्रिगुण में परिणत होने के लिए स्पन्दन अनुभव करता है तब वही सत्त्व और रजरूप में पृथक् हो जाता है। यह रज ही रक्तवर्ण शक्ति के रूप में श्री गुरु को कर्म अर्थात् जीवों के उद्धार में लगाता है। इसीलिए सद्‌गुरु-शक्ति निष्क्रिय ब्रह्म सद्‌गुरु से उद्‌भूत है, सद्‌गुरु हीं दूसरे रूप में प्रकाशित हैं। दूसरी बात है— इस शक्ति के बिना जिस प्रकार सद्‌गुरु भगवान् केवल निष्क्रिय ब्रह्ममात्र हैं, उसी प्रकार स्पन्दनशील और सक्रिय सद्‌गुरु के आश्रय के बिना यह शक्ति भी निष्क्रिय रहती है। सद्‌गुरु और उनकी शक्ति दोनों ही एक-दूसरे के अवलंबन हैं।

सद्‌गुरु का कार्य अपने जीवन के ५०-६० वर्ष व्यतीत हो जाने पर समाप्त नहीं हो जाता। इतने कम समय के लिए भगवान् अवतीर्ण नहीं होते। सद्‌गुरु की कार्यधारा और शक्ति लगभग ५०० वर्ष तक बनी रहती है। उनसे अनुमतिप्राप्त शिष्य-प्रशिष्य के माध्यम से वे काम करते रहते हैं। साधन एक शक्ति है। इस शक्ति को प्राप्त कर लेने पर गुरु की अनुमति के बिना दूसरों में संचार करने की क्षमता उत्पन्न नहीं होती।"

किरणचन्द्र के गुरु ने भी प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ श्री विपिनचन्द्र पाल को कहा था— "सद्‌गुरु की कृपा प्राप्त होने पर सत्संग की आवश्यकता नहीं होती। महाजन के उपदेशों में कहा गया है— 'आद्यो श्रद्धा ततः साधुसंगोऽथं भजनक्रिया' की सूचना प्राप्त होते ही साधु-संग का पर्याय समाप्त हो जाता है।"

गोस्वामीजी से साधन प्राप्त करने के बाद किरण साधना में लिप्त हो गये। इस छोटे-से बाग में निर्जन स्थान कहाँ मिलता जब कि गोस्वामीजी के यहाँ भक्तों की भीड़ बराबर बनी रहती थी। गोस्वामीजी की सास मुक्तकेशी देवी ने अपने संरक्षण में रखने के लिए भंडारघर को छोड़ दिया। कहीं ऐरे-गैरे लोग भंडारघर की सामग्री को नष्ट न कर दें, इसलिए कमरे के भीतर किरण को भेजकर वे बाहर से ताला लगा देती थीं। लगभग तीन सप्ताह तक दिनभर किरण कमरे में बन्द रहे। इन दिनों वह बाहरी मामले में तनिक भी ध्यान नहीं दे सके थे।

इसी बीच एक दिन मजेदार घटना हो गयी। एक दिन वे कुंज के बाहर गोविन्द चौक में साधना करने में इतने मशगूल हो गये कि उनकी धोती खुल गयी है, इस ओर ध्यान नहीं रहा। गोविन्द चौक से जब वे कुंज में आये तब लोग उन्हें दिगम्बर देखकर हँस पड़े। प्रकृतिस्थ होते ही जब अपने-आपको उन्होंने उलंग पाया तब वह अपनी धोती लेने के लिए गोविन्द चौक रवाना हो गये। अगर वह चाहते तो माँगने पर कुंज में धोती मिल जाती।

गोस्वामीजी के साथ यहाँ किरण विपिनचन्द्र पाल तथा अन्य लोगों से मिलते रहे। एक

बार रामदास काठिया बाबा का दर्शन किया। यहीं मयूर मुकुट बाबा से परिचय हुआ जो किरण के गुरुभाई थे। इसके बाद वृन्दावन से वापस आकर तीर्थ-भ्रमण करने लगे।

ठीक इन्हीं दिनों किरण को ज्ञात हुआ कि गोस्वामीजी नीलाचल-यात्रा पर जा रहे हैं। इन दिनों किरण नवद्वीप की परिक्रमा कर रहे थे। यह समाचार पाते ही वे तुरत कलकत्ता आये। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि गुरुदेव के साथ वे पुरी-दर्शन करने जायँगे। लेकिन गोस्वामीजी उन्हें अपने साथ ले जाने को राजी नहीं हुए।

क्षुण्ण होकर किरण ने कहा—"मैं बालक हूँ, शायद मेरी आयु अधिक है। आप बूढ़े हैं और मेरे आगे ही आप शरीर-त्याग करेंगे। मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप जब तक इस जगत् में सशरीर रहें तब तक आपके साथ रहूँ।"

गोसाईंजी ने हँसकर कहा— "पागल-सम न होने पर भला कहीं साथ होता है ? जब दोनों का चित्त एक अवस्था में आ जाता है तभी साथ होता है। एक ही मकान में रहने का अर्थ साथ नहीं होता।"

किरण ने हाथ जोड़ते हुए कहा— "गुरुदेव, आपके साथ सम-प्राण होकर संग करना किसी जन्म में संभव नहीं होगा। मैं इस जन्म में, एक मकान में रहने जैसा संग करना चाहता हूँ। मेरे जैसे अभागे के लिए यही काफी है।"

गोस्वामीजी ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। यह सही है कि इस यात्रा में वे किरण को अपने साथ नहीं ले गये।

प्रत्येक नवीन साधक में यह ललक होती है कि वह गुरु के सान्निध्य में रहकर साधना की संपूर्ण क्रियाएँ अपना ले। लम्बे अर्से तक प्रतीक्षा न करनी पड़े। लेकिन तपस्या या साधना का मार्ग इतना सरल नहीं होता जो पेड़ में पके फलों की तरह आसानी से तोड़कर खा लिया जाय। अधिकांश साधक नाम लेने का उपदेश देते हैं। नाम का सामान्य अर्थ है 'हरे कृष्ण हरे राम' आदि भजना। इस तरह का भजन करोड़ों भक्त भजते हैं, पर वे साधक नहीं बन पाते। उसकी प्रक्रिया अलग है। इसी प्रकार प्राणायाम और योग की विधियाँ हैं।

जिस प्रकार प्राणायाम साधन नहीं है, उसी प्रकार नित्यपाठ भी साधन नहीं है—यह तो साधन के सहायक और पूरकमात्र हैं। साधन के विकल्प की दृष्टि से सद्ग्रंथों का पाठ ग्राह्य नहीं है अर्थात् पाठ के खातिर नाम-साधन की कोई हानि होने की संभावना रहती है तो नित्यपाठ साधक के लिए एक उपद्रव बन सकता है। कहने का मतलब नित्यपाठ भी श्री गुरु द्वारा निर्दिष्ट होना चाहिए। हर प्रकार के ग्रंथ सभी साधकों के लिए कल्याणकारी नहीं होते।

गोस्वामीजी के एक शिष्य सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय थे। वे अपनी लगन तथा शक्ति के जरिये इस तेजी से आगे बढ़ने लगे कि गोस्वामीजी की पकड़ के बाहर होने लगे। फलस्वरूप गोस्वामीजी ने उन्हें बुलाकर कहा— "अपनी जप संख्या आधी कर दो।" फिर भी वे अपनी ऐशी शक्ति के जरिये बढ़ते जा रहे थे। लाचारी में उन्हें निर्देश देना पड़ा—"तुम जप बिलकुल बन्द कर दो। तुम्हारे लिए जितनी आवश्यकता है, उसे मैं पूरा करूँगा। अभी कुछ दिन तुम देश-सेवा करो।"

गुरु द्वारा प्रदत्त मंत्र का जाप करने की अपनी विधि होती है। सिद्ध मंत्र प्रति श्वास-प्रश्वास के जप द्वारा आयत्त कर लेने पर प्रति मिनट ५ से १० बार मात्र श्वास-प्रश्वास प्रवाहित

होता है। इसका अर्थ यह है कि एक मिनट में पाँच बार से भी कम श्वास-प्रश्वास प्रवाहित होना इस साधन के साधकों के लिए अस्वाभाविक नहीं है। सबसे पहले प्राणायाम के रेचक का कुंभक अभ्यस्त हो जाने पर तथा कुंभक की स्थिति में ५-६ बार नाम करते रहने पर, एक मिनट में लगभग दो से अधिक श्वास-प्रश्वास नहीं होता। कुंभक में १२ बार नाम-जप होने पर एक मिनट में एक बार श्वास-प्रश्वास होता है और पूरक के कुंभक में अनवरत नाम-जप करते रहने पर एक श्वास लेने पर ३२, यहाँ तक कि ६४ बार नाम होना संभव है। कुंभक-रीति के अनुसार न करने पर भी श्वास-प्रश्वास के साथ करते रहने पर कुंभक की क्रिया स्वतः होती है और श्वास-प्रश्वास की संख्या घटती जाती है।

गोस्वामीजी ने कुलदानन्द ब्रह्मचारी से कहा था—"स्वाभाविक कुंभक करते हुए सर्वदा नाम-जप करते रहना। धीरे-धीरे प्रति श्वास में कुंभक के साथ नाम जपते रहने पर इस ओर से पर्याप्त लाभ उठा सकोगे।"

"सभी गुरु साधक से कुंभक के बारे में विस्तार से ज्ञान-चर्चा नहीं करते। चर्चा न करने का कारण चाहे जो हो, पर इतना स्पष्ट है कि नियमानुसार कुंभक की प्रक्रिया करने के अलावा एक स्वाभाविक क्रिया भी है जिसमें स्वाभाविक रूप से श्वास-प्रश्वास की गति रुद्ध हो जाती है और श्वास-प्रश्वास की संख्या घटती जाती है।

अजपा साधकों के लिए जिस प्रकार जप-संख्या रखने की जरूरत नहीं है, उसी प्रकार श्वास-प्रश्वास की संख्या, जो कि शरीर-विज्ञान की दृष्टि से है, उस संख्या के अनुसार नाम-संख्या की गणना करना निरर्थक है। श्वास-प्रश्वास के आधार पर नाम करते-करते साधक की श्वास-प्रश्वास संख्या घटती जाती है, शरीर-विज्ञान की दृष्टि से एक अस्वाभाविक शारीरिक विवर्तन होता है।"

श्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी ने भी कहा है— श्वास-प्रश्वास की ओर ध्यान धर नाम जपने पर ध्यान की चरम अवस्था में श्वास-प्रश्वास ही नाम हो जाता है और नाम ही श्वास-प्रश्वास है, ऐसी अनुभूति होती है। उस वक्त नाम का कोई अर्थबोध उत्पन्न नहीं होता, किसी रूप का संस्कार नहीं पैदा होता। एक प्रकार से नाम अपने-आप होता जाता है। मैं निश्चेष्ट दर्शक की भाँति इसे अनुभव करता हूँ। इस अवस्था का वर्णन भाषा या वाक्यों के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। आर्य ऋषियों ने इसे 'अवाङ्मनसगोचर' कहा है।★

वृन्दावन से जब गोस्वामीजी बंगाल की ओर रवाना हुए तब उनके साथ किरणचन्द्र थे। कुल ५८ दिनों तक गुरुदेव के साथ वे जुड़े रहे। इन दिनों के संग करते रहने के कारण किरण का विकास हुआ। अन्तर से साथ करने के कारण वे अन्तरंग हो गये। दिन-प्रतिदिन वे गोस्वामीजी के विभिन्न रूपों का अवलोकन करते रहे। आपात निस्तरंग, निष्कम्प भागवती तनु के सहारे महाभाव के विचित्र तरंगों को जी भरकर देखते रहे। कभी उन्हें ज्योतिर्मय

★यहाँ सद्गुरु तथा नाम के बारे में संक्षिप्त रूप से चर्चा इसलिए की गयी है कि इसके पूर्व प्रकाशित पुस्तकें पढ़कर अनेक पाठकों ने इस सम्बन्ध में प्रश्न पूछा था। नाम जपना सामान्य भी है और कठिन भी। सद्गुरु ही आधार देखकर साधक को क्रिया बताते हैं। हर कोई इसे नहीं बता सकता। पुस्तकीय अध्ययन से इसका ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता।

मूर्ति में तो कभी शिवरूप में देखते रहे। उनका बाहरी रूप वज्र की तरह कठोर था तो कभी कुसुम से भी कोमल। गोस्वामीजी किरण के लिए एक प्रकार से देवता बन गये।

वृन्दावन-निवास-काल में किरण ने एक बार पूछा कि क्या मुझे भी वृन्दावन-लीला का दर्शन हो सकता है ? वृन्दावन-लीला क्या है, इसकी कोई जानकारी किरण को नहीं थी। लिहाजा वृन्दावन-लीला देखने की उत्कंठा उनके लिए अस्वाभाविक नहीं थी।

गोस्वामीजी ने आश्वासन देते हुए उपदेश दिया था—"लीला-दर्शन क्यों नहीं होगा ? मैं तो हर क्षण दर्शन कर रहा हूँ। यहाँ आज भी श्रीकृष्ण की नित्य-लीला जारी है, जरा भी विराम नहीं है। तुम लोग नहीं देखोगे तो कौन देखेगा। जो लोग साधन प्राप्त करेंगे, वे एक न एक दिन इस लीला का दर्शन अवश्य करेंगे। जिन लोगों को साधन प्राप्त हो गया है, उनके लिए भय की कोई बात नहीं है। कैसे, क्या हो जायगा, इसे वे ज़रूर समझ नहीं पायेंगे, पर होगा अवश्य। घर के मालिक जब यह समझ लेंगे कि अब दरवाजा खोल देना चाहिए तब क्षणभर में दरवाजा खुल जायगा और चारों ओर प्रकाश हो जायगा। उस वक्त घर हँस उठेगा और घर का मालिक प्रसन्नतापूर्वक ताली बजायेगा। साधन करते जाओ। हिसाब-किताब करने की जरूरत नहीं। अगर नहीं होता तो सब मेरे ऊपर छोड़ दो।"

किरण ने दूसरा प्रश्न किया— "आपने कहा था कि मैं न जाने कितने युगों से आपका सेवक था, मगर इस जीवन में मुझमें क्रोधादि रिपु इतने प्रबल क्यों हैं ?"

गोस्वामीजी ने कहा— "रिपु की प्रबलता संसर्गज है। खाद्य और पारिपार्श्विक अवस्था ने बचपन में, तुम्हारे शरीर में रिपु का प्रभाव फैला दिया था, फिर भी तुम्हारा अपनत्व मेरे निकट बँधा था। जब भी खींचा है, दौड़कर आना पड़ा है। रिपु में इतना साहस कहाँ है जो इस साधन के अधिकारी को अपने कब्जे में रख सके। सब अपने-आप दूर हो जायँगे। इसमें न डरने की कोई बात है और न चिन्ता करने की।"

यहाँ से किरण आड़ियल चला आया और अपने गुरुभाई माखन के यहाँ आया। साधन पाने के बाद यहाँ प्रथम बार आया और आदत के अनुसार माखन और उसकी माँ के साथ एक बिस्तर पर सोया। घर के लोगों को, खासकर सरोजबाला को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि किरण को गोस्वामीजी से साधन मिल गया है।

अधिक रात को तीनों व्यक्तियों ने महसूस किया कि कमरे में किसी प्रेतात्मा ने प्रवेश किया है। तीनों भयभीत हो उठे। तभी माखन ने कहा—"किरण, आओ। इसे भगाना है।"

किरण ने मसहरी से निकल बत्ती जलायी। माखन की माँ ने धूपबत्ती जलायी और माखन जप करने बैठ गया। थोड़ी ही देर में तीनों ने महसूस किया कि कमरे से कोई बाहर निकल गया।

सन् १८९६ ई० में गोस्वामीजी ने धुलट उत्सव किया। इस आयोजन में भाग लेने के लिए किरण भी आये। गोस्वामीजी राधाभाव में नृत्य करते रहे। कार्यक्रम समाप्त होने के बाद किरण प्रसाद माँगने गये तो गोस्वामीजी के पुत्र ने कहा— "गोस्वामीजी ने प्रसाद देने को मना किया है। किसीको नहीं मिलेगा।"

इस आदेश को सुनकर किरण ने उत्तेजित होकर गोस्वामीजी के पास जाकर कारण पूछा। गोस्वामीजी ने कहा— "हाँ, प्रसाद अगर दे सकते हो तो ले भी सकते हो।"

इस उत्तर को सुनकर किरण का चेहरा लटक गया। यह देखकर गोस्वामीजी ने कहा— "प्रसाद का अर्थ है—प्रसन्नता। पत्तल का जूठन नहीं। नित्य मेरे पत्तल जूठन खाने से क्या होगा ? मैं यह देखता हूँ कि चाय पीने के बाद जो अवशिष्ट रहता है, उसे प्रसाद समझकर लोग पी जाते हैं। इसके बाद जब मैं मर जाऊँगा तब मेरे फोटो के पास चाय की प्याली रखकर लोग प्रसाद ग्रहण करेंगे। यह सब कुसंस्कार है।"

यह बात सुनकर किरण मन ही मन रो पड़े। उन्होंने निश्चय किया कि जब तक मुझे प्रसाद प्राप्त नहीं होगा तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा। उसी रात को किरण ने स्वप्न में देखा कि गोस्वामीजी कह रहे हैं— "प्रसाद के लिए तुम इतने परेशान क्यों हो रहे हो ? प्रसाद का अर्थ है— प्रसन्नता प्राप्त करना। मैं तो तुम पर सदा प्रसन्न रहता हूँ तब प्रसाद की क्या आवश्यकता है ?"

स्वप्न में ही किरण ने कहा— "नहीं, मुझे आपका प्रसाद चाहिए।"

गोस्वामीजी ने कहा— "जब तुम्हारा इतना आग्रह है तब तुम प्रसाद ग्रहण करना।"

आश्चर्य की बात यह हुई कि दूसरे दिन किरण को प्रसाद प्राप्त हुआ। किरण जब प्रसाद माँगने गये तब किसीने आपत्ति नहीं की।

इन्हीं दिनों किरण के प्रश्न करने पर गोस्वामीजी ने किरण को आदेश दिया कि वह सरोजबाला से विवाह कर ले। किरण को साथ लेकर गोस्वामीजी आड़ियल आये और यहाँ भी उन्होंने सरोजबाला से कहा कि तुम किरण से विवाह कर लो। इस प्रकार दोनों का सम्बन्ध हो गया।

गोस्वामीजी ने कहा था कि तुम्हें बारह साल तक गृहस्थ-धर्म पालन करना पड़ेगा। तुम्हारी साधना में सरोजबाला बाधक नहीं बनेगी, बल्कि सहायक होगी। निस्सन्देह किरण के जीवन में गुरुदेव के आशीर्वाद के अनुसार सरोजबाला सहायक हुई।

विवाह के पश्चात् ही गोस्वामीजी की पुरी-यात्रा हुई थी। किरण यह नहीं जान सका कि गुरुदेव उसे पुरी क्यों नहीं ले गये। घर वापस आने पर इस रहस्य की जानकारी हुई। घर आकर जब उसने माँ को प्रणाम किया तब वे प्रसन्नता प्रकट करने लगीं, पर उनके चेहरे पर संकोच की रेखाएँ खिंची हुई थीं। जैसे वे कुछ कहना चाहती थीं, पर संकोचवश उसे व्यक्त करने में हिचक रही थीं।

माँ का रंग-ढंग देखकर किरण ने पूछा—"क्या बात है माँ ? तुम इतना संकोच क्यों कर रही हो ?"

माँ ने कहा—"बेटा, मुझसे एक गलती हो गयी। तुम गोस्वामीजी के साथ पुरी जा रहे हो, सुनकर मैं डर गयी। मैं पुरी हो आयी हूँ। अत्यन्त कष्टकर मार्ग है। तेरे पिताजी सभी तीर्थों का दर्शन करके आने के बाद तेरे बड़े भाई को गृहस्थी की जिम्मेदारी देकर पुरी गये थे। उन्हें शंका थी कि शायद वे जीवित न लौट सकें। ऐसे कठिन मार्ग की यात्रा में अपने मासूम बच्चे को भेजने की इच्छा नहीं थी, इसीलिए मैंने गोस्वामीजी को पत्र लिखा था कि वे तुझे अपने साथ पुरी न ले जायँ। शायद इसीलिए वे तुझे अपने साथ नहीं ले गये। मेरे कारण तू पुरी नहीं जा सका।"

पास ही किरण के घर का गुमाश्ता खड़ा था। उसने कहा—"नहीं माँ। आपका ख्याल

गलत है। पत्र पाकर खोका बाबू को वापस नहीं किया गया। पत्र तो परसों डाक में छोड़ा है। परसों रात में छोड़ा गया पत्र शायद आज मिलेगा। इधर खोका बाबू तो यहाँ आज आये हैं।"

गुमाश्ता की बातें सुनकर किरण अवाक् रह गये। किरण के लिए पत्र लिखा जा रहा है, यह बात कलकत्ते में बैठे गोस्वामीजी अन्तर्दृष्टि से जान गये थे। सारी बातें समझने के बाद माँ ने कहा— "गोस्वामीजी सर्वज्ञ हैं। मेरा दुःख समझकर उन्होंने तुझे वापस भेज दिया है। ऐसे महापुरुष की जब तुझ पर कृपा है तब तू उन्हींके पास चला जा।"

माँ की बातें सुनकर किरण को संतोष हो गया। अब सवाल यह उत्पन्न हुआ कि जब तक गोस्वामीजी न बुलायें तब तक जाना उचित नहीं है। इसी घुटन में उसके दिन गुजरते जा रहे थे। इस बीच वह ससुराल हो आया, पर पुरी से कोई समाचार नहीं आया। उसने सोचा—शायद गुरुदेव को मेरी याद नहीं आ रही है। बात ठीक भी है। जिनके हजारों शिष्य हैं, उन्हें मेरे जैसे नगण्य की याद कैसे आयेगी। धीरे-धीरे उसकी मानसिक स्थिति खराब हो गयी। अन्त में उसने निश्चय किया कि वह आत्महत्या करेगा।

बाजार से एक रुपये की अफीम खरीद लाया। दूसरे दिन भोर में स्नान करने के बाद गोस्वामीजी के चित्र को माला-फूल से सजाकर पूजा की। दण्डवत करते समय उसने देखा कि चित्र के भीतर से वे मन्द-मन्द मुस्करा रहे हैं। इस दृश्य को देखकर वह पूजा-घर से हट गया। माँ के पास आकर उन्हें प्रणाम करते हुए कहा— "माँ, मैंने जीवन में अनेक अपराध किये हैं। आज मुझे क्षमा कर दो।"

बेटा आज क्यों क्षमा माँग रहा है, इसके पीछे क्या रहस्य है, वह बेचारी कैसे समझ पाती। अगर वह बेटे की आत्महत्या का उद्देश्य जान पातीं तो हँस नहीं सकती थीं। उसने हँसकर कहा— "तुमने मेरे निकट कोई अपराध नहीं किया है। आखिर आज क्यों क्षमा माँग रहा है ? क्या तू अभी पुरी जा रहा है ? जा, मुझे कोई एतराज नहीं है। तू तो उन्हींकी वस्तु है। मेरे पास केवल सुरक्षित है। तेरे लिए मुझे कोई चिन्ता नहीं है।"

इस आश्वासन को सुनकर किरण को आत्मसंतोष हो गया। माँ के कमरे से निकलकर वह बाहर आकर ज्योंही खड़ा हुआ त्योंही पोस्टमैन ने एक तार दिया। तार खोलकर देखा—तार पुरी से आया है। योगजीवन ने लिखा है— "गोस्वामीजी का आदेश है, आप पुरी तत्काल चले आइये।"

इस तार को पढ़ते ही आनन्द से किरण का अन्तर रो पड़ा। अन्तर्यामी गुरुदेव ने शिष्य की व्यथा को जान लिया। मैं उनके चरणों के निकट उपेक्षित नहीं हूँ। उसी दिन वह पुरी रवाना हो गया। यहाँ आने पर बातचीत के सिलसिले में योगजीवन ने कहा कि पुरी आने के कई दिनों बाद पिताजी ने आपको यहाँ आने के लिए, पत्र लिखने को कहा था। मैं यह बात भूल गया। जिस दिन किरण ने आत्महत्या करने का निश्चय किया, उस दिन रात को मुझसे पत्र लिखा या नहीं, यह पूछा गया। मैं भूल गया हूँ कहते ही उन्होंने कहा—"जाओ, अभी अर्जेण्ट तार कर दो।' सबेरे जो तार मिला, वह उसके आगे रात को ही भेजा गया था।"

पुरी-निवासकाल में एक दुर्घटना हो गयी। रात को उन्हें स्वप्नदोष हो गया। वे अत्यन्त

अनुतप्त हो उठे। दूसरे दिन अपने जीवन के सभी दुष्कर्मों का उल्लेख गोस्वामीजी के निकट किया।

गोस्वामीजी ने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—"तुम्हारा जीवन विफल नहीं है, क्योंकि छठी के दिन तुम्हें स्वयं महादेव ने ग्रहण किया है। तुम महादेव के चिह्नित दास हो। तुम चिन्तित मत हो। तुममें काम-भावना नहीं रहेगी। नित्य त्रिसंध्या करो, समुद्र में स्नान करो और लोकनाथ-जगन्नाथ का दर्शन करो।"

काम-भावना दूर करने का उपाय तथा एक मंत्र गोस्वामीजी ने बता दिया। इस उपाय को 'लता-साधन' कहा जाता है। तंत्र-साहित्य में लता-साधन का उल्लेख है। कहा जाता है कि इस साधन-प्रणाली का विस्तार से उल्लेख है, पर तांत्रिकगण इसका गलत प्रयोग करते हैं। गोस्वामीजी ने कहा—"शास्त्रों में साधन-प्रणाली का उल्लेख नहीं रहता। इसे गुरु-परम्परा से सीखना पड़ता है। तुम तीन साल तक इसकी साधना करो। सब ठीक हो जायगा।"

किरण लगातार तीन साल तक लता-साधन करते रहे। इस अवधि में वे स्त्री से दूर रहते थे। फिर भी उन्हें काम सताता रहा। एक दिन उन्होंने गुरुदेव से रोते हुए कहा—"काम के कारण चित्त अस्थिर हो रहा है, पर किसी भी स्त्री को देखते ही मन में घृणा उत्पन्न होती है। जी चाहता है कि उसका गला दबाकर मार डालूँ।"

उत्तर में गोस्वामीजी ने कहा— "मैं तो कह चुका हूँ कि तुममें आगे चलकर यह भावना नहीं रहेगी। तुमसे मुझे काफी काम लेना है। तुम्हें मैं अपनी इच्छा के अनुसार तैयार कर लूँगा। तुम अपने को मुझ पर छोड़ दो। जाओ, साधना करते रहो, तीन साल बाद तुम एकदम नये आदमी बन जाओगे।"

लता-साधन के पीछे एक गूढ़ कारण था जिसके बारे में गोस्वामीजी जानते थे, इसीलिए उन्होंने इस साधना को तीन साल तक करने की आज्ञा दी थी। इस साधना के जरिये उन्होंने किरण के साधना-पथ को सरल और सुगम बना दिया था। किरण के साधना-जीवन के एक दुर्गम और नीरस अध्याय को उसे बिना जाने वे पार कराते गये थे।

इस साधना के बारे में गोस्वामीजी ने कहा है— "श्वास-प्रश्वास में जब नाम होने लगता है तब भयंकर जलन पैदा होने लगती है। नाम के साथ-साथ यह ज्वाला इतनी तेजी से बढ़ती है कि शरीर के अणु-परमाणु जलने लगते हैं। विंध्याचल में साधना करते समय मेरी भी यही स्थिति हुई थी। बाद में गुरु के आदेश से मुझे ज्वालामुखी जाना पड़ा था तब यह ज्वाला शान्त हुई थी। साधना-जीवन में एक ऐसा अवसर आता है जब इस ज्वाला को भोगना पड़ता है। साधक-भेद के अनुसार इसका बहिःप्रकाश भिन्न-भिन्न हो सकता है। साधना करने के लिए इस यंत्रणा को भोगना ही पड़ेगा। यह यंत्रणा ही अग्नि-परीक्षा है। इसमें जितना जलोगे, उतना ही लाभ है। यह यंत्रणा साधक के हृदय को जला डालती है। प्रकृति तथा संस्कार के अनुसार यह अधिकार करती है।"

आगे आपने कहा—"जब कोई रिपु नष्ट होने लगता है तब वह एकाएक प्रबल हो उठता है, निर्वाण के पूर्व प्रदीप की तरह। उस वक्त रिपु की उत्तेजना में इतनी वृद्धि होती है कि कुछ लोगों में साधन-भजन पर अविश्वास उत्पन्न हो जाता है। यह बहुत ही विषम परिस्थिति होती है। हर वक्त उन्मत्त भाव जाग्रत रहता है। अगर ऐसी स्थिति में गुरुप्रदत्त

नाम बिलकुल त्याग न करे तो साधक सामान्य ढंग से उत्तीर्ण होकर चरम पद प्राप्त कर लेता है।"

किरण के विद्रोही मन को वशीभूत करने के लिए गोस्वामीजी अक्सर ऐसी घटनाएँ करते थे जिसका अर्थ वह समझ नहीं पाते थे। कभी गोस्वामीजी का प्रसाद पाने के लिए उन्होंने विद्रोह किया था और आगे चलकर उसका निराकरण उन्होंने किया। एक बार अधिक रात गये गोस्वामीजी को ब्राह्मण-भोजन कराने की झक सवार हुई।

इतनी रात को भक्त ब्राह्मण कहाँ से लाते। इस समस्या का समाधान उन्होंने स्वयं ही किया— "नित्य समुद्र-स्नान, दर्शन और त्रिसंध्या करने के कारण किरण का चेहरा दिव्य हो गया है। वह सत्ब्राह्मण है। उसे बुलाकर भोजन कराओ।"

उसे बुलाया गया तो उसने गोस्वामीजी से कहा— "प्रसाद दीजिए।"

गोस्वामीजी ने कहा— "ऐसा कैसे हो सकता है ? ब्राह्मण को अपना जूठन कैसे दे सकता हूँ ?"

भोजन के बाद किरण जब अपना जूठन साफ करने को तैयार हुआ तब गोस्वामीजी ने कहा— "तुम ब्राह्मण हो, तुम्हें भोजन कराया है। तुमसे जूठन साफ नहीं करा सकता।" इसके बाद वहाँ खड़े एक शिष्य से जूठन साफ कराया गया।

दरअसल गुरु इन्हीं प्रक्रियाओं से शनैः-शनैः योग्य शिष्य को वशीभूत करके तैयार करते हैं। आधार समझकर उसे साधन देते हैं। जो जितने के योग्य होता है, उसे उतना ही दिया जाता है। बहुत कम लोग सब कुछ प्राप्त कर पाते हैं। किरण की साधना और घटनाओं से स्पष्ट है कि गोस्वामीजी उसके जीवन को किस प्रकार उन्नतिशील बनाते जा रहे हैं। कुछ शिष्य ऐसे भी होते हैं जो दस-बारह वर्ष तक सेवा करते रहने पर भी कुछ नहीं पाते। कुछ इतनी तेजी से तरक्की करते हैं जिनके लिए गुरु को लगाम कसना पड़ता है। किरण ऐसे ही शिष्यों में था।

सन् १८९६ ई० के आषाढ़ मास में किरण को स्वप्न में जगन्नाथ भगवान् के दर्शन हुए। गोस्वामीजी से चर्चा करने पर उन्होंने कहा— "दर्शन दो प्रकार के होते हैं। मुक्तावस्था का दर्शन तथा मुक्तिमार्ग की ओर ले जानेवाला दर्शन। इससे साधक का उत्साह बढ़ता है। राह चलते समय भगवान् कृपा करके जो दर्शन देते हैं, उसे दर्शन कहते हैं। मुक्तावस्था का जो दर्शन होता है, वह आमतौर पर साधक की इच्छा से होता है, इसलिए इसे प्राप्ति कहा जाता है। साधक-जीवन में दर्शन साधन-मार्ग में चलने के लिए सुगम बनाता है। हम ठीक मार्ग पर बढ़ रहे हैं या नहीं, इसकी जानकारी इसीसे मिलती है।"

किरण का जन्म सन् १८७६ ई० १६ श्रावण झूलन पूर्णिमा के दिन हुआ था। सन् १८९६ की पूर्णिमा के दिन जब वे जगन्नाथ मंदिर दर्शन करने गये तब दर्शन करते हुए वे विमला माई के मंदिर में आये। उन्होंने देखा कि विमला माई के आसन पर योगमाया देवी विराजमान हैं। वे दौड़कर पास गये और मूर्ति के चरणों को पकड़ लिया। मंदिर के सभी पण्डे नाराज होकर शोरगुल मचाते हुए आये। मंदिर के विग्रह को छूने के कारण उसे वे लोग मारने को तैयार हुए। लेकिन तभी उन्हें ज्ञात हुआ कि यह बालक जटिया बाबा के आश्रम

का है, इसलिए उसकी पिटाई नहीं हुई। विग्रह का नये सिरे से अभिषेक करने के निमित्त सवा रुपये जुर्माना देना पड़ा।

सारी बातें सुनकर गोस्वामीजी ने अप्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"इतना अस्थिर होना ठीक नहीं है। अब आगे से तुम किसी मंदिर में मत जाना।"

इसी दौरान एक दिन अर्द्धरात्रि के समय किरण को लगा जैसे कोई उनका गला कसकर दबा रहा है। जोर लगाकर वे उठ बैठे। पास ही गोस्वामीजी सो रहे थे। उनसे सारी घटना बताने पर उन्होंने कहा—"पाप पुरुष ने तुम पर आक्रमण किया था। पाप पुरुष जब यह देखता है कि यह व्यक्ति मेरे हाथ से निकला जा रहा है तब वह ऐसा करता है। तुम्हारी लता-साधन, समुद्र-स्नान, त्रिसंध्या, नित्य लोकनाथ और जगन्नाथ देव-दर्शन— इनके कारण पाप तुममें ठहर नहीं पा रहा है। डरने की कोई बात नहीं।"

पाप पुरुष आक्रमण कर सकता है, इस बात को गोस्वामीजी जानते थे, इसीलिए किरण को हमेशा अपने साथ रखते हुए त्रिसंध्या, दर्शन आदि कराते रहे। इस घटना के बाद किरण का साधन-भजन निर्विघ्न रूप से होने लगा।

सन् १६०० ई० में गोस्वामीजी का तिरोधान पुरी में हो जाने के कारण किरण वहाँ से वापस आ गये। काशी जाकर श्री विजयकृष्ण मठ में उन्होंने अपने सद्गुरु की प्रतिष्ठापना की।

सन् १६०१ में उनके जीवन में एक विचित्र घटना हुई। नित्य स्नान करने के बाद वे अलगनी पर कपड़े सूखने के लिए टाँग देते थे। उन्हें यह कतई पसन्द नहीं था कि कोई उनके कपड़ों का प्रयोग करे। इधर जिसकी इच्छा होती, वही उनके कपड़ों का उपयोग कर लेता था। सरोजबाला को इसके लिए हिदायत देने पर भी कार्याधिक्य के कारण वह उनके कपड़ों को ठीक से नहीं रख पाती थीं।

फलस्वरूप एक दिन क्रोध में आकर उन्होंने एक घूँसा सरोजबाला की पीठ पर मार दिया। बाद में चैतन्य होने पर वे अफसोस करने लगे। रात को स्वप्न में उन्होंने देखा कि गोस्वामीजी कह रहे हैं— "आज से तेरी लक्ष्मी अन्तर्धान हो गयी।"

तभी नींद खुल गयी और वे देर तक रोते रहे। पुनः सो गये। थोड़ी देर बाद उनके स्वप्न में योगमाया देवी आयीं और उसे गोद में लेकर बोलीं—"डरने की बात नहीं है। क्रोध में आकर उन्होंने ऐसा कहा है। तुम निश्चिन्त रहो। तुम्हारा और सरोज का जीवन सार्थक होगा।"

ज्ञातव्य है कि बंग-भंग-आन्दोलन का सबसे जबरदस्त प्रभाव बरिशाल जिले में पड़ा था। किरण ने किसी भी राजनीतिक पार्टी में न रहते हुए भी इस आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया था। काशी में बंगाली टोला कांग्रेस कमेटी के वे अध्यक्ष थे। कांग्रेस नेता अश्विनीकुमार दत्त और गुरुभाई मनोरंजन गुहठाकुरता के साथ बराबर सहयोग करते रहे।

अपने घर आकर वे जमींदारी का काम सम्हालने लगे। एक दिन आफिस में थककर वे कुर्सी पर माथा टेककर आराम कर रहे थे कि कमरे में सहसा गोस्वामीजी प्रकट हुए। गुरुदेव को देखकर वे चकित रह गये। तभी गोस्वामीजी ने कहा—"अब यह स्थान छोड़ दो।"

"क्यों ?"

"पानी जब एक जगह रुक जाता है तब गन्दा हो जाता है। एक ही जगह साधक को नहीं रहना चाहिए।"

"तब यह सब जमीन-जायदाद ?"

"इन्हें बेच दो। न बिके तो दान कर दो।"

किरण ने पूछा— "क्या तुरत ?"

गोस्वामीजी ने कहा— "नहीं, सब ठीक-ठाक करके जाना।"

यह आज्ञा सुनकर किरण ने गुरुदेव को प्रणाम किया। तब तक वे अन्तर्धान हो गये थे। रात साढ़े-आठ बजे नौकर भोजन के लिए बुलाने आया तो देखा—बाबू बेहोश हैं। तुरत भीतर जाकर सरोजबाला को सूचना दी गयी। वे आयीं और सिर पर पानी उड़ेलने के बाद हवा करने लगीं। होश में आने के बाद उन्हें जमीन-जायदाद से अनासक्ति हो गयी।

सन् १९१३ में किरणचन्द्र ने निश्चय किया कि अब घर-गृहस्थी छोड़कर संन्यास ले लिया जाय। इस निश्चय के बाद वे वाराणसी आये और हरिहरानन्द सरस्वती से उन्होंने संन्यास लिया। किरणचन्द्र का नाम हुआ—कैशोरानन्द सरस्वती।

संन्यास-ग्रहण करने के पहले किरणचन्द्र स्त्री-संग तथा अर्थोपार्जन छोड़ चुके थे। पत्नी से उन्होंने कहा— "तुमने मुझे कभी कष्ट नहीं दिया जबकि मैं कभी-कभी देता था। तुम इसके लिए मुझे क्षमा कर दो। जिस दिन मैंने अनुभव किया कि माताजी के अंश से तुम्हारा जन्म हुआ है, उस दिन से तुम्हारे साथ पत्नी की तरह व्यवहार नहीं किया। यह बात तुम अच्छी तरह जानती हो।"

संन्यास लेने के बाद उन्हें अपना नाम बिलकुल पसन्द नहीं आया। गोस्वामीजी हमेशा उसे 'किरण' कहकर पुकारते थे। फिर नाम के साथ सरस्वती उपाधि और भी विचित्र थी। एक बार यात्रा पर निकले और आगरा आये। आगरे का किला देखने के लिए प्रवेश-पत्र खरीदना पड़ता था। टिकट घर के पास जाते ही टिकट बेचनेवाले ने कहा—"आओ दरवेश, टिकट लो।"

दरवेश संबोधन से वे चौंक उठे। आमतौर पर साधु को स्वामीजी या बाबाजी कहकर लोग पुकारते हैं, पर यह तो परिचित नाम है। एक बार गोस्वामीजी ने भी किरण को 'दरवेश' कहा था। आगरा किला के दरवाजे के पास खड़े-खड़े किरण ने निश्चय किया कि आज से यही नाम ग्रहण करूँगा।

'दरवेश' नाम धारण करने के बाद गुरु की आज्ञा से भक्तों को साधन देने लगे। विमलचन्द्र भट्टाचार्य मुँह खोलकर एक दिन बोले— "क्या मुझे साधन नहीं मिलेगा ?"

दरवेशजी बोले— "मिलेगा।"

"कहाँ ?"

दरवेशजी ने कहा— "यहीं।"

विमलचन्द्र ने पूछा— "कब ?"

"आज और अभी।"

तुरत आनन-फानन में सारी व्यवस्था हो गयी। विमलचन्द्र की पत्नी को लोग बुलाने गये। वे भोजन करके स्नान करने जा रही थीं। वे आयीं तो बोलीं— "मैं तो भात खा चुकी हूँ। फिर कैसे दीक्षा होगी ?"

दरवेशजी ने कहा— "इससे क्या हुआ ? भात खा लेने के बाद मेरी भी दीक्षा हुई थी। गोस्वामीजी के यहाँ जब मैं पहुँचा तब कई दिनों का भूखा था। मेरे लिए चटपट खाने का इंतजाम हुआ। उसी रात को मुझे दीक्षा दी गयी। आज तुम लोगों को दीक्षा देने का समय आ गया है।"

इसी प्रकार तिलक नामक शिष्य के साथ घटना हुई थी। तिलक जब आश्रम में पहुँचा तब दिन चढ़ गया था। लोग चाय पी चुके थे। तिलक को देखते ही एक शिष्य ने कहा— "जल्दी से हाथ-मुँह धो लीजिए। दरवेशजी ने आपके लिए दूध रख देने को कहा है। मैं चाय बना दे रहा हूँ।"

अभी साधन में देर थी। तिलक कम पढ़ा-लिखा है। होमियोपैथी इलाज करता है, इसलिए दरवेशजी उसे डॉक्टर कहते हैं। केवल संबोधन ही नहीं, 'भारतीय भैषजावली' एक पुस्तक भी दी थी। इस पुस्तक के आधार पर तिलक रोगियों को दवा देता और वे अच्छे हो जाते थे। उसे समझते देर नहीं लगी कि मैं कठिन-से-कठिन रोगियों को दवा देता हूँ और वे अच्छे हो जाते हैं, इसमें मेरी कारसाजी नहीं है। जरूर गुरुदेव की कृपा है। इस बात को जाँचने के लिए वह अपने रोगियों को केवल शुद्ध पानी देने लगा। आश्चर्य की बात यह रही कि केवल पानी से वे अच्छे होने लगे। अब वह बेफिक्र होकर इलाज करने लगा।

दीक्षा चाहने पर नहीं मिलती और न चाहने पर मिल जाती है। उदाहरण के लिए अन्नदा बनर्जी को लीजिए। आप दरवेशजी के शिष्य कैसे बने ? सम्पन्न परिवार के होने के कारण हमेशा ठाट-बाट से रहते हैं। इनकी पत्नी लावण्य भी सम्पन्न घराने की लड़की थी। लावण्य के परिवार का कोई दरवेशजी का शिष्य था। अन्नदा बनर्जी को ईश्वर के प्रति कोई दिलचस्पी नहीं थी।

एक बार आप ससुराल गये तो वहाँ के लोगों के साथ काशी आये। लावण्य के ताऊ शैलजाकुमार चटर्जी गोस्वामीजी के शिष्य थे। काशी आकर उन्होंने अपने गुरुभाई दरवेश की खोज की। ताऊजी के साथ लावण्य भी दरवेशजी के पास गयी थी। बातचीत के सिलसिले में उसने दीक्षा के लिए प्रार्थना की।

दरवेशजी ने कहा— "आप अपने पति को साथ लेकर आइयेगा। नवमी के दिन दीक्षा दूँगा।"

डेरे पर आकर जब अन्नदा से लावण्य ने दीक्षा की चर्चा की तो वे बिगड़ गये। ताऊजी के अनुरोध पर भी राजी नहीं हुए। उन्होंने कहा—"मैं इन सब पर विश्वास नहीं करता। लावण्य चाहे तो ले सकती है। इस पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है। अष्टमी के दिन के लिए दरवेशजी के यहाँ से पूरे परिवार को निमंत्रित किया गया। अन्नदा आश्रम में नहीं गये। घरेलू नौकर से पूरी, रबड़ी मँगवाया। महाष्टमी के दिन अन्न खाने की प्रथा नहीं है।

दोपहर को नौकर ने आकर कहा कि कोई फकीर आया है। अन्नदा ने साधु समझकर उसे कुछ पैसे देकर बिदा करने की आज्ञा दी। नौकर ने कहा कि वे भीख नहीं चाहते।

आपको नीचे बुला रहे हैं। नीचे आने पर फकीर ने कहा—"लोग मुझे दरवेश कहते हैं। आप ठहरे दामाद। आपको निमंत्रण देने के लिए मुझे आना चाहिए था। इस वक्त मैं आपको अपने साथ ले जाने के लिए आया हूँ।"

अन्नदा ने कहा—"निमंत्रण-प्रथा से मैं नाराज नहीं हूँ। हमारे यहाँ महाष्टमी के दिन अन्न नहीं खाना चाहिए, इसलिए आश्रम नहीं गया।"

दरवेशजी ने कहा— "आश्रम में खिचड़ी और पूरी दोनों प्रकार के भोग दिये गये हैं। आप अपने इच्छानुसार भोग ग्रहण कर सकते हैं।"

अन्नदा ने अनुभव किया कि दरवेशजी बिना साथ लिये टलनेवाले नहीं हैं तब वे तैयार होकर चल पड़े। उन्होंने सोचा—"काशी की गलियों में कहीं दन से वे खिसक जायँगे। इधर इनके मन की भावना को साधु ने भाँप लिया। उन्होंने कहा— "मैं बहुत तेज चलता हूँ। आप मेरे आगे-आगे चलिये। मैं पीछे से मार्ग बताता चलूँगा।"

दरवेशजी को बहलाना कठिन है जानकर अन्नदा चुपचाप आश्रम में आ गये। उस दिन केवल अन्नदा के परिवार के लोग ही नहीं, बल्कि अनेक अन्य साधु-महात्मा भी निमंत्रित थे। दरवेशजी हाथ-मुँह धोकर साधुओं की जमात में अपने आसन पर बैठे। उस वक्त उनका रूप देखकर अन्नदा की आँखों में आँसू आ गये। लगा जैसे भावविभोर हो गये हैं। बार-बार वे अपने आँसुओं को पोंछते रहे।

प्रसाद-ग्रहण के वक्त दरवेशजी ने उन्हें अपनी बगल में बैठाया ताकि उन्हें उनकी रुचि के अनुसार भोजन परोसा जा सके। भोजन के पश्चात् वे घर चले आये। घर आकर सोचने लगे कि ऐसे व्यक्ति से दीक्षा लेने पर वे भेड़ा बन जायँगे। ऐसी गलती वे कदापि नहीं करेंगे। इनके इस निश्चय को सुनकर लावण्य रातभर रोती रही।

अन्नदा इस स्थिति के लिए तैयार नहीं थे। समझौता करते हुए बोले—"ठीक है। दीक्षा ले लूँगा।"

दीक्षा देने के बाद दरवेशजी ने कहा—"अब आपको अपनी पत्नी से छः माह तक अलग रहना पड़ेगा।"

इस आज्ञा को मानकर वे अपने घर चले आये। साधना में उनकी एकाग्रता बढ़ने लगी। एक दिन आफिस में काम करते समय उनका मन बेहद चंचल हो उठा। काम में मन नहीं लगा। घर आकर आसन पर बैठे और जप करने लगे। अचानक उन्हें लगा जैसे कोई उनके कानों में कह रहा है—"तेरी पत्नी नहीं है। तेरी पत्नी नहीं है।"

इस आवाज को सुनते ही वे काँप उठे। आँखें खोलने पर देखा—कमरे का दीपक बुझ गया है। रात को बिना कुछ खाये वे सो गये।

दूसरे दिन सुबह एक आदमी आकर समाचार दे गया कि अगले दिन दोपहर को सामान्य बीमारी में लावण्य की मौत हो गयी है। अन्नदा उदास हो गये। दरवेशजी को पत्र लिखने पर वहाँ से उत्तर आया—"यह कच्चा घाव है। इन दिनों तुम्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगेगा। कुछ दिनों के लिए मेरे पास आकर रहो।"

इस आदेश को पाते ही अन्नदा सब कुछ छोड़कर काशी चले गये।

अपने शरीरान्त के बाद भी उच्चकोटि के योगी कभी-कभी भक्तों को न केवल दर्शन देते हैं, बल्कि समस्या को सुलझा देते हैं, मुसीबतों से छुटकारा दिला देते हैं और दूसरों को सहायता देने का आदेश भी देते हैं।

नारायणदासजी ने साधन लेते समय देखा कि आसन पर गोस्वामीजी बैठे हैं। यह देखकर उन्हें मूर्च्छा आ गयी। केवल यही नहीं, दो बार उन्होंने आदेश भी दिया था। वही गुरु गंभीर कंठस्वर था।

बात उन दिनों की है जब कलकत्ता में वे दवाखाना चलाते थे। उन दिनों दरवेशजी 'श्री श्री विजयकृष्ण लीलामृत' नामक पुस्तक प्रकाशित कराने के लिए कलकत्ता आये हुए थे। तीसरे पहर नारायणदासजी ने निश्चय किया कि आज दरवेशजी के डेरे पर दर्शन करना चाहिए। अपनी दिनभर की आमदनी, खर्च काटने के बाद एक बक्स में रख देते थे। दूसरे दिन बैंक में जमा करते थे।

उस दिन दरवेशजी के यहाँ जाने के पहले उन्होंने कैशबाक्स खोलकर देखा कि दो सौ रुपये इकट्ठे हो गये हैं। कल इसे बैंक में जमा कर दूँगा। ज्योंही मन में यह विचार आया त्योंही उन्हें स्पष्ट आदेश मिला— "इसमें से एक सौ रुपये दरवेशजी को दे दो। अच्छा होगा। पुस्तक प्रकाशित करने के लिए उसे रुपयों की सख्त जरूरत है।" इस कंठस्वर को सुनते ही नारायणदासजी समझ गये कि यह आदेश गोस्वामीजी का है।

वे रुपये लेकर दरवेशजी के पास पहुँचे। नारायणदासजी अक्सर रुपये देते हैं, पर आज उन्हें एक सौ रुपये देते देख दरवेशजी ने पूछा—"आज इतने रुपये ?"

नारायणदासजी ने कहा—"पुस्तक प्रकाशित कराने के लिए। गोस्वामीजी से यही आदेश प्राप्त हुआ है।"

यह बात सुनकर दरवेशजी की आँखें छलछला आयीं। बोले—"मेरे लिए गोस्वामीजी ने भीख माँगना आरंभ कर दिया।"

सन् १६०१ की घटना है। किरणचन्द्र अपने गाँववाले मकान में गोस्वामीजी का जन्मोत्सव मना रहे थे। निमंत्रण पाकर दूर-दूर से अनेक शिष्य और भक्त आये थे। झूलन पूर्णिमा के दिन अष्ट प्रहर कीर्त्तन हुआ। गोस्वामीजी के चित्र के सामने भोग दिया गया। तब तक किरणचन्द्र को यह विश्वास नहीं था कि गोस्वामीजी प्रत्यक्ष रूप से भोग ग्रहण करते हैं, क्योंकि अब तक चित्र के सामने सरोजबाला ही भोग देती थी।

इसके पूर्व पूजा-गृह में पैरों की छाप, भोग में अँगुलियों के निशान, भोग में कमी आदि देखने पर भी उन्हें कभी विश्वास नहीं हुआ था। सोचते थे कि किसी व्यक्ति ने बदमाशी की है। गोस्वामीजी का तो तिरोधान हो गया है।

आज जब भोग निवेदन करने बैठे तब कमरे के दरवाजे को बन्द करके बैठे ताकि कोई बाहरी व्यक्ति भीतर न जा सके। इसके बाद दरवाजे से सटकर बाहर बैठे और नाम जपने लगे।

थोड़ी ही देर बाद उन्होंने स्पष्ट रूप से आवाज सुनी— "किरण।"

चौंककर उन्होंने आँखें खोलीं। शरीर में रहते समय गोस्वामीजी इसी तरह आवाज

देकर किरण को बुलाते थे। कहीं मेरे मन का भ्रम तो नहीं है ? यह विचार मन में आते ही उन्होंने पुनः सुना— "किरण।"

इस आवाज को सुनते ही दरवाजे को खोलकर वे पूजाघर के भीतर आये। उन्होंने देखा—गोस्वामीजी भोजन कर चुके हैं। थाली में कुछ अवशिष्ट है। किरण के भीतर आते ही उन्होंने इशारे से कहा कि मेरा हाथ धुला दो। आचमन का पानी एक ओर रखा था। किरणचन्द्र उस पात्र को उठाकर पानी गिराने लगे। बस, इतना उन्हें होश था।

कमरे के बाहर बैठे अनेक लोग किरण के वापस आने का इंतजार करते रहे। अंत में सरोजबाला भीतर गयीं तो चीख उठीं। इस चीख को सुनकर कई व्यक्ति भीतर गये। किरण बेहोश पड़ा था। मुँह पर पानी के छींटे पड़ने के कुछ ही क्षण बाद वे होश में आये।

झटके से उठ बैठे और देखा—गोस्वामीजी अन्तर्हित हो गये हैं। अभी कुछ देर पहले जिन पात्रों को खाली देखा था, अब उन पर खाद्य पदार्थ मौजूद है। उन्होंने कमरे में उपस्थित लोगों से व्याकुल होकर पूछा—"आप लोगों ने कुछ देखा या नहीं ?"

सरोजबाला, किरण की भतीजी, ललित मोहन और यज्ञेश्वर सेन ने गोस्वामीजी को आसन पर बैठे देखा था। बाद में जो लोग कमरे में आये, उन लोगों को कोई चमत्कार दिखाई नहीं दिया।

इस बात पर कोई संदेह नहीं कि प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी के अगणित शिष्यों में दरवेशजी अन्यतम रहे। उन्होंने अपने गुरु की परम्परा को आगे बढ़ाया। काशी में उनके नाम पर स्थापित मठ में, सन् १९४७ ई०, आषाढ़ मास में रात ११ बजकर ४५ मिनट पर उन्होंने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। आज भी उनके अगणित शिष्य तथा भक्त गोस्वामीजी के साथ-साथ उनका दर्शन यदाकदा करते रहते हैं।

●
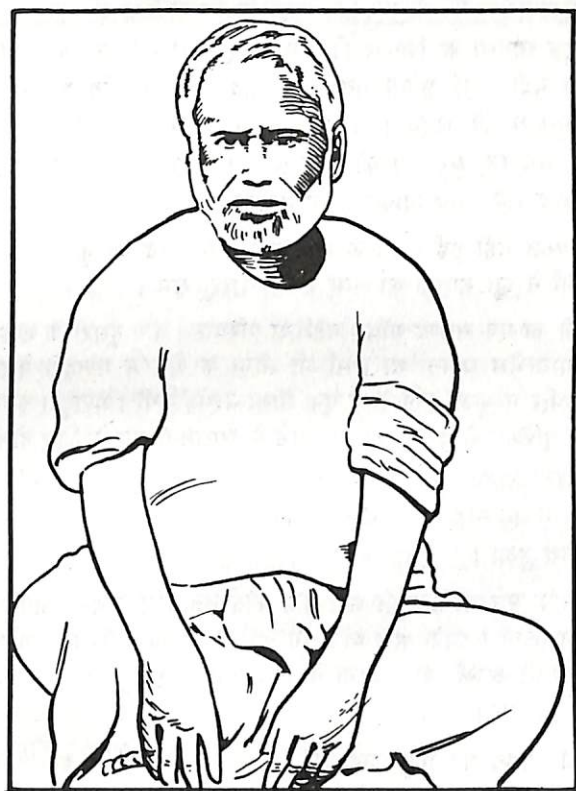
स्वामी अद्भुतानन्द
(लाटू महाराज)

स्वामी अद्भुतानन्द
(लाटू महाराज)

एकमात्र पुत्र शीतला का शिकार हो गया। संपूर्ण शरीर में चेचक के दाने उभर आये। हालत नाजुक हो गयी। माँ अपनी संतान को गोद में लेकर गाँव में स्थित राम-मंदिर में गयी। उसे विश्वास था कि भगवान् राम अवश्य कृपा करेंगे। वह विग्रह के सामने प्रार्थना करने लगी—"हे भगवान्, मेरे बच्चे को बचा ले। यही एकमात्र सहारा है, आँखों का तारा है। इसे ठीक कर दे। मैं नित्य आकर दर्शन करूँगी।"

प्रार्थना निष्फल नहीं हुई। बालक बच गया। रामचन्द्र की कृपा से उसे नया जीवन मिला, इसलिए माँ ने इस बालक का नाम रखा—राख्तू राम।

छपरा जिले का एक नगण्य गाँव। गड़ेरिया परिवार। बाप दूसरों के खेत में काम करता और लोगों की गाय-भैंस चराता था। माँ भी लोगों के खेत में मजदूरी करती थी। अपने पास न खेत था और न कुआँ। ले-देकर एक सामान्य मँड़ई थी। मजदूरी इतनी कम मिलती थी कि दोनों जून मुश्किल से पेट भरता था। बच्चे के लालन-पालन के लिए दोनों को अतिरिक्त श्रम मजबूरन करना पड़ता था। अधिक श्रम करने के कारण माँ तथा पिता दोनों ही चल बसे। बच्चे को न माँ का स्नेह मिला और न बाप का प्यार। उन दिनों उसकी उम्र पाँच साल थी जब वह अनाथ हुआ।

गाँव में उसके सगे चाचा रहते थे। उन्हें कोई संतान नहीं थी। अपने अनाथ भतीजे को उन्होंने अपना लिया। इनके पास थोड़ी-सी जमीन थी, खाते-कमाते व्यक्ति थे। राख्तू के पिता से इनकी स्थिति अच्छी थी। चाचा के निर्देशानुसार राख्तू लोगों के ढोर चराता और अपने में मगन रहता था।

विधाता को शायद यह मंजूर नहीं था। महाजनों के कर्ज के कारण चाचा की सारी जायदाद कुर्क हो गयी। वे बेसहारा हो गये। बिहार तथा उत्तर प्रदेश के अधिकतर लोग काम की तलाश में कलकत्ता, बम्बई और अहमदाबाद जाते हैं। यही इनके सपनों का संसार है। राख्तू अबोध नहीं था। चाचा क्यों बेघर हो गये, क्यों उनकी जमीन हड़प ली गयी और क्यों हमेशा के लिए गाँव छोड़कर परदेश जा रहें हैं, यह सब समझने में उसे देर नहीं लगी। अपनी मातृभूमि छोड़ते समय उसे भी कष्ट हुआ था। पता नहीं, फिर कब वह यहाँ वापस आयेगा ? उसे गाँव की अमराई, तालाब, मंदिर, बँसवाड़ी, पनघट और वे ढोर याद आने लगे जिन्हें वह चराया करता था। इसके साथ अखाड़े के उन दोस्तों की याद आने लगी जिनके साथ कुश्ती और कबड्डी खेला करता था।

कलकत्ता आने पर चाचा को सबसे अधिक राख्तू की चिन्ता सताने लगी। गाँव के काफी लोग शहर में रिक्शा खींचते हैं, चटकल में काम करते हैं और बाबुओं के घर में काम करते हैं। अपने लिए वे कहीं न कहीं इन्तजाम कर लेंगे। सौभाग्य से गाँव के फूलचन्द से मुलाकात हो गयी। वह सिमलापल्ली स्थित रामचन्द्र दत्त बाबू के यहाँ अर्दली है। उसे अपनी समस्या कहने पर उसने कहा—"भइया, राख्तू को मैं अपने मालिक के यहाँ लगा दूँगा, पर काम मन लगाकर करना पड़ेगा। बड़े आदमी का घर है, कहीं कोई बात हो गयी तो राख्तू के साथ-साथ मेरी नौकरी भी खतरे में पड़ जायगी।"

चाचा ने जवाब दिया—"इस ओर से तुम बेफिक्र रहो। मेरा राख्तू बहुत सीधा और भोला है। काम में भले ही कुछ गलती हो जाय, पर मेहनत और ईमानदारी में फर्क नहीं पड़ेगा।"

फूलचन्द के प्रयत्न से राख्तू राम को रामचन्द्र दत्त के यहाँ घरेलू नौकर रख लिया गया। बाजार से सौदा खरीदकर लाना, बच्चों को स्कूल पहुँचाना या घुमाने ले जाना, बाबू का जलपान ले जाना और गृहिणी के आदेश के अनुसार फुटकर काम करना उसके जिम्मे था। अपने श्रम और लगन से वह बहुत जल्द दत्त-परिवार में घुलमिल गया। दत्ता साहब को बाबूजी, उनकी पत्नी को माँ, बच्चों को दादा-दीदी कहने लगा।

बचपन में रामजी की कृपा से जीवनदान मिला तो माँ ने नाम रखा—राख्तू राम। गाँव के हमजोली 'रखतू' कहते थे और दत्ताबाबू के घर में उसका नाम 'लाल्टू' रखा गया। बाद में परमहंस रामकृष्ण ने इस बालक का नाम 'लेटो, नेटो, लाटू' रखा। संन्यास लेने के बाद 'स्वामी अद्भुतानन्द' नामकरण हुआ था, क्योंकि स्वभाव और बातचीत में इनका हर काम अद्भुत हुआ करता था।

घर के काम से अवकाश पाने पर अपनी आदत के अनुसार वह कसरत करता। नगर में अखाड़े की सुविधा नहीं थी। घर के बच्चे उसे डंड-बैठक करते देख हँस पड़ते थे। एक दिन रामबाबू के एक मित्र ने सुझाव दिया—"पहलवान टाइप नौकर को घरेलू नौकर नहीं रखना चाहिए।" प्रत्युत्तर में रामबाबू ने कहा था—"तुम लोगों को नहीं मालूम, कुश्ती लड़ने से काम-भावना कम हो जाती है। अपने-आप वीर्य-रक्षा होती है।" मित्र ने कहा—"मगर इनकी खुराक असाधारण होती है।" रामबाबू ने कहा—"आप लोग जैसे कमजोर हैं, उसी प्रकार कमजोर नौकर चाहते हैं ताकि उसे भरपेट भोजन न देना पड़े। नौकर है, कोई कुत्ता-बिल्ली नहीं। कुत्ते को भरपेट भोजन दोगे, पर नौकर को नहीं। मालिक-नौकर में यह प्रभेद उचित नहीं है।"

इसी प्रकार दत्ताबाबू के एक मित्र को संदेह हुआ कि राख्तू बाजार से सौदा लाता है, जरूर कुछ चोरी करता है। एक दिन जब वह बाजार से सामान खरीदकर वापस आ रहा था तब उन्होंने पूछा—"क्यों बे लड़के, आज सौदा खरीदने में कितना कमीशन बनाया ?" इस अपवाद को सुनते ही राख्तू राम का खून खौल उठा। स्वाभिमान में चोरी का इल्जाम लगने पर वह असह्य हो उठा। कहा—"बाबू, कान खोलकर सुन लीजिए—मैं नौकर जरूर हूँ, पर नमकहराम नहीं हूँ। आइन्दा ऐसी गंदी बात मत कहियेगा वर्ना वैसा ही जवाब पाइयेगा।"

एक नौकर के मुँह से इतनी कड़वी बात सुनकर वे अपने को रोक नहीं सके। तुरत रामबाबू से शिकायत की। सारी बातें सुनने के बाद रामबाबू ने कहा—"लड़का स्वभाव का जरा गँवार जरूर है, पर चोर नहीं है। उसे जब किसी चीज की जरूरत होती है, तब वह अपनी माँ से माँग लेता है।" मालिक द्वारा नौकर की इस तरह की प्रशंसा आज के युग में दुर्लभ है।[१]

रामचन्द्र दत्त महाशय परमहंस रामकृष्णजी के मंत्र-शिष्य और भक्त थे। प्रत्येक रविवार को वे दक्षिणेश्वर जाकर ठाकुर का दर्शन करते और उपदेश सुनते थे। अक्सर रविवार की रात वहीं ठहर जाते और दूसरे दिन घर वापस आते थे। घर पर जब उनके मित्र आते तब वे ठाकुर के वचनामृतों की चर्चा किया करते थे।

इस चर्चा के दौरान लाटू (राख्तू) छोटे-मोटे काम के सिलसिले में जब रामबाबू के कमरे में आता तब वह इन बातों को बड़े गौर से सुना करता था। गाँव का भोला बालक लाटू क्रमशः इन वचनामृतों से प्रभावित होता गया। कभी-कभी वह सोचता कि जो साधु बाबा इस तरह की बातें कहते हैं, वे कैसे होंगे ? क्या कभी उनका दर्शन कर पाऊँगा ? खाली समय में वह उन उपदेशों को मन ही मन दुहराता। भावावेश के कारण उसकी आँखें छलछला उठतीं। बार-बार वह अपने गिरते आँसुओं को पोंछता।

उसकी यह दशा घर के लोगों से छिपी नहीं रह सकी। माँ (दत्त-गृहिणी) सोचतीं कि शायद इसे अपने चाचा की याद सता रही है। वह कभी अपने इस भतीजे को देखने भी नहीं आता। वे उसे सांत्वना देतीं। प्यार से सिर सहला देतीं। उन दिनों कोई यह भाँप नहीं सका कि अपने आधार को ठाकुर आकर्षित करने के लिए उसे चंचल कर रहे हैं।

उस साधु बाबा को देखने के लिए लाटू का मन सर्वदा उत्सुक रहने लगा जिसके वचनामृत ने उसके हृदय को मथ डाला है। पता नहीं, यह दक्षिणेश्वर कहाँ है ? अकेले जाना उचित नहीं है। घर के कामों से उसे इतना अवकाश नहीं मिलता कि किसीसे इस बारे में पूछता। उसे केवल इतनी जानकारी है कि प्रत्येक रविवार को बाबू वहाँ जाते हैं।

एक रविवार को बड़े साहस के साथ वह कह बैठा—"बाबू, आज मैं आपके साथ वहाँ जाऊँगा जहाँ आप जा रहे हैं।"

बालसुलभ आग्रह से रामबाबू प्रभावित हुए। भवितव्य सहायक हुआ। उसे अपने साथ लेकर रामबाबू दक्षिणेश्वर आये। यहाँ आने पर उन्होंने देखा कि ठाकुर अपने कमरे में नहीं हैं। लाटू को बरामदे पर खड़ा रहने का आदेश देकर वे ठाकुर को खोजने चले गये। थोड़ी देर बाद वे परमहंसजी के साथ आये। अचानक ठाकुर की नजर लाटू पर पड़ी। बोले—"राम, इस बालक को अपने साथ लाये हो, क्या ? इसमें तो साधु के लक्षण देख रहा हूँ।"

इतना कहने के बाद वे ठाकुर के साथ कमरे के भीतर चले गये। लाटू समझ गया कि यही वह साधु हैं जिन्हें देखने के लिए वह यहाँ आया है। भीतर आकर ठाकुर का पैर छूकर प्रणाम करने के बाद हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। उस समय ठाकुर कह रहे थे—"जो लोग नित्यसिद्ध होते हैं, वे प्रत्येक जन्म में ज्ञान-चैतन्य प्राप्त कर लेते हैं। वे लोग पत्थर से ढके

१. श्री श्री लाटू महाराजेर स्मृति कथा— श्री चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय।

उस फौवारे की तरह होते हैं जो पत्थर हटाने या कहीं दबा देने पर फर्र-फर्र पानी फेंकने लगता है।"

इतना कहने के बाद ठाकुर ने धीरे से लाटू को छू दिया। इस स्पर्श से लाटू के भीतर का सारा ज्ञान उछल पड़ा। होश-हवास गायब हो गया। आँखों से अविरल गति से आँसू बहने लगा। रामबाबू और ठाकुर दोनों ही यह दृश्य देख रहे थे। लगभग एक घंटे तक यही स्थिति रही तब रामबाबू ने पूछा-- "यह लड़का कब तक रोता रहेगा ?"

यह सुनकर ठाकुर ने पुनः लाटू को स्पर्श किया। तुरत ही वह अपनी दुनिया में वापस आ गया। रामबाबू से ठाकुर ने कहा—"इसे कभी-कभी यहाँ भेजना।" फिर लाटू की ओर देखते हुए उन्होंने कहा—"कभी-कभी चले आना।"

इस घटना के कुछ दिनों बाद की बात है। रामबाबू के यहाँ एक समस्या उत्पन्न हुई। उनके यहाँ से कभी-कभी ठाकुर के यहाँ भोग के लिए फल-मिठाई आदि भेजा जाता था। अब आज इसे कौन ले जायगा ? इस समाचार को सुनते ही उसने बड़े उत्साह के साथ कहा—"मुझे दीजिए, मैं पहुँचा आऊँ। मैं बाबू के साथ परमहंस महाशय के यहाँ गया था।"

उस दिन फल-मिठाई लेकर वह दोपहर को ११ बजे दक्षिणेश्वर पहुँचा। परमहंसजी को देखते ही उसने दूर से प्रणाम किया। बातचीत करते हुए कुटिया में आये। उस दिन मंदिर की आरती देखकर वह प्रसन्न हो गया। दोपहर को मंदिर से ठाकुर परमहंसजी के लिए प्रसाद नित्य आता था। उसे अपनी बगल में बैठाते हुए परमहंसजी ने कहा—"विष्णु-मंदिर में जो भोग चढ़ाया जाता है, वह पूर्ण निरामिष होता है और गंगाजल से बनाया जाता है। अगर तुम्हारी इच्छा हो तो तुम उस भोग को ग्रहण कर सकते हो।"

ठाकुर के लिए माता के मंदिर से आमिष भोजन आता था। उन्होंने सोचा कि कहीं बिहारी संस्कार के कारण वह आमिष भोग खाना पसन्द न करे। तभी लाटू ने कहा—"मैं यह सब पचड़ा नहीं जानता। आप जो पायेंगे, वही मैं भी खाऊँगा। इसके अलावा और कुछ नहीं खाऊँगा।"

परमहंसजी अट्टहास करते हुए पास ही बैठे रामलाल दादा से बोले—"साला कितना चालाक है, समझ रहा है ? मैं जो पाऊँगा, साला उसीमें से हिस्सा लेगा।"

भोजन के पश्चात् उस दिन शाम तक लाटू ठाकुर के आसपास रहा। उसे वापस न जाते देख ठाकुर ने पूछा— "शाम हो रही है, क्या वापस नहीं जायगा ? तेरे पास किराये के पैसे हैं या नहीं ?"

लाटू ने मुँह से कुछ न कहकर जेब में हाथ डालते हुए सिक्के बजाते हुए जताया कि उसके पास पैसे हैं।

दक्षिणेश्वर से वापस आने के बाद से लाटू में तेजी से परिवर्तन होने लगा। पहले वह चटपट हाथ का काम निपटा देता था। अब उसमें व्यतिक्रम होने लगा। दत्त-परिवार में किंचित् असंतोष उत्पन्न हो गया। रामबाबू चिन्तित हो उठे। ठाकुर के पास जाकर उन्होंने कहा—"आजकल लाटू की स्थिति विचित्र हो गयी है। ठीक से काम नहीं करता। अक्सर आँखें बन्द कर चुपचाप बैठा रहता है। पुकारने पर आवाज नहीं देता। उस वक्त आँखों से

आँसू बहते रहते हैं। क्यों रो रहा है पूछने पर कोई जवाब नहीं देता। उसकी यह हालत देखकर गृहिणी भी चिन्तित हो उठी हैं।''

ठाकुर ने कहा—''यहाँ आने पर ऐसा हो जाता है। वास्तव में उसका मन यहाँ आने को करता है। मौका मिलने पर उसे यहाँ भेज देना।''

गुरुदेव के आज्ञानुसार एक दिन रामबाबू ने उसे दक्षिणेश्वर भेजा। इधर उसी दिन ठाकुर डॉक्टरों के निर्देशानुसार हवा-पानी बदलने के लिए कामारपुकुर जाने की तैयारी कर रहे थे। लाटू यहाँ आते ही बोला— ''मैं आपकी सेवा में रहना चाहता हूँ। अब मैं नौकरी नहीं करूँगा।''

लाटू की बातें सुनकर ठाकुर हँस पड़े। बोले—''यहाँ तेरा रहना नहीं हो सकता। मैं आज ही बाहर चला जा रहा हूँ। बीमार हूँ, हवा बदलने जा रहा हूँ। कब लौटूँगा, पता नहीं। तू वापस चला जा। वहाँ मन लगाकर काम कर।''

यह बात सुनकर लाटू उदास हो गया। जब ठाकुर यहाँ नहीं रहेंगे तब अकेला यहाँ क्या करेगा ? किसकी सेवा करेगा ? परमहंसजी उसके मन की बात समझ गये। बोले— ''जिसका नमक खाता है, उसे धोखा नहीं देना चाहिए। मालिक अन्नदाता होता है। इस तरह बिना सूचना दिये नौकरी छोड़ना पाप है। रामबाबू बहुत अच्छा मालिक है। तुम्हारी खुशी के लिए कभी-कभी तुम्हें यहाँ भेज देते हैं। मैं गाँव से वापस आ जाऊँ तब आ जाना।''

आगे चलकर लाटू महाराज ने अपने शिष्यों से कहा था—''देखो, उनकी मुझ पर कितनी कृपा थी। उस दिन गाँव जाने के पहले मुझे कितनी अच्छी बातें सुना गये। मालिक के घर कैसे रहना चाहिए। लेकिन मेरे मन का दुःख दूर नहीं हो रहा था।''

रामबाबू के घर में रहते हुए वह दुःख के दिन व्यतीत करने लगा। अक्सर जब वह अधिक बेचैन हो उठता तब चुपचाप घर के लोगों को बिना बताये दक्षिणेश्वर आकर घाट-किनारे बैठ जाता। यहाँ आने पर भी उसे शान्ति नहीं मिलती। पंचवटी में जाकर अकेला चुपचाप बैठा रहता। मंदिर-दर्शन के लिए जो लोग आते थे, उनमें से तथा स्थानीय लोग उसे इस तरह बैठा देखकर सोचते कि शायद रामबाबू ने डाँटा-फटकारा होगा। इसीलिए यहाँ चला आया है।

यहाँ आने पर रामलाल दादा उसका ध्यान रखते थे। एक दिन जब उसे प्रसाद देने गये तो देखा कि गंगा की ओर मुँह करके वह न जाने किसे प्रणाम कर रहा है। अचानक पीछे मुड़ते ही रामलाल दादा को देखकर उसने पूछा—''परमहंस महाशय कहाँ गये ?''

रामलाल दादा अवाक् रह गये। लाटू ने कहा—''परमहंस महाशय यहीं हैं। वे गाँव नहीं गये हैं।'' रामलाल दादा उसे समझाते कि वे गाँव गये हैं, पर वह नहीं मानता था।

इधर रामबाबू ने गौर किया कि उनके लाटू में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। अब वह आज्ञाकारी सेवक नहीं है। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि ठाकुर के आकर्षण में यह बालक आ गया है। उन्होंने घर के लोगों को समझा दिया कि इससे अधिक छेड़छाड़ न की जाय। अपने मन से जो काम करे, करने दिया जाय। पत्नी जरा असंतुष्ट हुई, पर पति की आज्ञा का पालन करती रही। रामबाबू स्वयं ठाकुर के भक्त थे। ठाकुर को साधु नहीं, भगवान् समझते थे। घर के कामकाज के लिए रामबाबू ने एक नया नौकर रखा। जब घर में कोई

आयोजन होता तब काम का बोझ बढ़ जाने पर लाटू सारा काम करता था। इसी प्रकार दिन गुजर रहे थे कि अचानक रामबाबू के यहाँ नित्यगोपाल अवधूत बीमार हालत में आये। रामबाबू ने लाटू से कहा— "आज से बाबाजी की सेवा तुम करोगे।"

लाटू को मनपसन्द काम मिल गया। अवधूतजी ऊँचे दर्जे के साधक थे। बीमारी की हालत में भी उन्हें बराबर समाधि लग जाती थी। उस समय लाटू को नाम सुनाना पड़ता था। अवधूतजी की सेवा के साथ-साथ निरन्तर नाम (जप) करने की प्रवृत्ति लाटू में उत्पन्न हो गयी। लगातार चार माह तक उनकी सेवा में लगे रहने पर लाटू को चैतन्य महाप्रभु के बारे में जानकारी प्राप्त हो गयी। उन दिनों रामबाबू नित्य 'चैतन्य-चरितामृत' पढ़कर अवधूतजी को सुनाया करते थे।

आठ माह बाद परमहंसजी दक्षिणेश्वर वापस आये तब एक दिन लाटू वहाँ पहुँचा। उसे आया देखकर ठाकुर प्रसन्न हो गये। उन्होंने लाटू से कहा—"आज तुम यहीं ठहर जाओ। वापस जाने की जरूरत नहीं है।"

अंधे को क्या चाहिए—दो आँखें। लाटू यही चाहता था। यहाँ रुक जाने के कारण उसके जीवन की दिशा बदल गयी। उस दिन वहाँ केदारनाथ चट्टोपाध्याय नामक एक भक्त मौजूद थे। लाटू ठाकुर का पैर दबा रहा था। सहसा ठाकुर ने पूछा—"नींद आ रही है ?"

"जी नहीं।"

"डर लग रहा है ?"

"जी नहीं।"

"तब तुझे क्या हो गया है ? ऐसा क्यों कर रहा है ?"

इस प्रश्न का जवाब लाटू ने नहीं दिया। थोड़ी देर बाद उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। यह देखकर ठाकुर ने केदारनाथ से कहा—"देखो तो, यह लड़का केवल रो रहा है। कुछ बोलता नहीं है।"

केदार बाबू ने कहा—"यह तो आपकी लीला है। आपने इस बालक में शक्ति-संचार किया है, इसलिए यह जम गया है।"

दूसरे दिन सबेरा हुआ, दोपहर हुआ, पर वह उसी प्रकार समाधिस्थ भाव में बैठा रहा। जब मंदिर में भोग की घंटी बजी तब ठाकुर ने पुकारा—"अरे लाटू, कब तक इस तरह बैठा रहेगा ? नहायेगा-खायेगा नहीं ?"

इस आवाज को सुनते ही उसकी चेतना लौट आयी। वह उठकर मंदिर में जाकर दर्शन करने के पश्चात् स्नान करने लगा। इस बार वह यहाँ लगातार तीन दिनों तक उपस्थित था। ठाकुर उसके मानसिक स्तर को सामान्य बनाने के लिए बराबर नाना प्रकार के कार्यों में व्यस्त रखते रहे।

ठाकुर ने गौर किया कि लाटू वापस जाने का नाम नहीं ले रहा है। कई बार समझाने पर भी उसने अस्वीकार कर दिया। ठाकुर ने कहा—"तेरे लिए वे लोग बहुत परेशान हैं।"

"मेरे यहाँ रहने पर मालिक गुस्सा नहीं करेंगे। घर के कामों के लिए एक नया नौकर उन लोगों ने रख लिया है।"

ठाकुर ने कहा—"तू कैसा लड़का है । राम का पैसा खाकर यहाँ रहेगा । ऐसा नहीं करना चाहिए । जिससे वेतन लेता है, उसका काम करना चाहिए । एक का पैसा खायेगा और दूसरे की हाजिरी बजायेगा, ऐसा कभी नहीं सुना ।"

ठाकुर और लाटू में इन्हीं बातों की चर्चा हो रही थी, तभी रामबाबू सपत्नीक वहाँ हाजिर हो गये । उन्हें लाटू की जिद ज्ञात हो गयी । ठाकुर ने कहा—"अजी राम, देखो तो लड़के को क्या हो गया है । यह तुम्हारे यहाँ जाना नहीं चाहता । कितना समझाया, पर मानता नहीं है । हो सके तो तुम समझाओ ।"

ठाकुर की बातों से भक्त रामबाबू को यह समझते देर नहीं लगी कि लाटू पर इनकी कृपा हो गयी है । कृत्रिम क्रोध के साथ उन्होंने पूछा—"क्यों रे, यहाँ क्यों पड़ा है ? घर नहीं चलेगा ?"

लाटू चुप रहा । बाद में उन्होंने ठाकुर से कहा—"स्नेह देकर आपने इसे सिर चढ़ा लिया है, अब क्यों मुझे परेशान कर रहे हैं ?"

इसी प्रकार की बातें होती रहीं । दत्त-गृहिणी के मनाने पर वह वापस जाने को राजी हो गया । लेकिन यहाँ आकर भी उसका हृदय ठाकुर के पास जाने के लिए निरन्तर छटपटाता रहा । बात यह है कि उन दिनों ठाकुर कुछ चुने हुए शिष्यों का एक गिरोह बनाने की चिन्ता में थे । भक्त तो अनेक थे, पर उनके मिशन के काम के लिए नवयुवकों की एक ऐसी टोली चाहिए थी जो देश और समाज को नयी दिशा दे सके । इस कार्य के लिए उन्होंने लाटू को परखा जो उनकी कसौटी पर खरा साबित हुआ । इसके बाद स्वामी विवेकानन्द, ब्रह्मानन्द आदि आये । यह सन् १८८० की घटना है ।

इसी बीच एक दुर्घटना हो गयी । ठाकुर की देखरेख उनका भांजा हृदयनाथ करता था । उसका मंदिर में काफी रोब था । अपने घमंड में आकर उसने एक ऐसी हरकत की जिसके कारण मंदिर का निर्माण करानेवाली रानी रासमणि के दामाद मथुरनाथ ने तुरत उसे मंदिर से निकाल दिया । उसका अपराध ऐसा था जिसके प्रतिवाद में ठाकुर भी कुछ कह नहीं सकते थे । वे स्वयं हृदय के अत्याचारों से त्रस्त रहते थे । हृदय के चले जाने के कारण उनकी परेशानियाँ बढ़ गयीं । उन्हें खिलाना, नहलाना और सम्हालना किसीके द्वारा संभव नहीं हो रहा था । अचानक उन्हें लाटू का ख्याल आया । सेवक के रूप में वह बालक सब कुछ कर सकता है । वह यहाँ रहना भी चाहता है । कुछ दिनों बाद जब रामबाबू आये तब ठाकुर ने कहा—"लाटू शुद्ध चित्त का है । भगवत् प्रेमी । उसे हमें दे दो । उसका मन भी तुम्हारे यहाँ नहीं लगता । यहाँ रहेगा तो मेरी सेवा करेगा ।"

ठाकुर के अनुरोध को रामबाबू ने शिरोधार्य कर लिया । लाटू हमेशा के लिए दक्षिणेश्वर आ गया । वे नगर में कहीं भी जाते, उसे अपना दरबान बनाकर ले जाते थे । इस प्रकार कलकत्ते के अनेक संभ्रांत परिवारों से उसका परिचय हो गया । इन दिनों के बारे में अपने भक्तों से चर्चा करते हुए उन्होंने कहा था—"मुझे ठाकुर हमेशा बहुत-सी बातें सिखाते थे । दिल साफ रखना । चित्त-शुद्धि करना, सत्य-पवित्र बनो । अपनी छाती दिखाते हुए कहते कि यहाँ काम-कामना घुसने मत देना । अगर कभी परेशानी हो तो नाम लेना । भगवान् को

बुलाना। वे तुम्हें बचा देंगे। अगर इससे भी लाभ न हो तो माँ के मंदिर के पास बैठ जाना या दौड़कर मेरे पास चले आना।"

बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा—"ठाकुर ने मुझे नशा करना सिखाया था। वह भी मामूली नशा नहीं, राजा नशा, जिसे भगवान् का नशा कहा जाता है। तुम लोग अपने बच्चों को कामिनी-कांचन का नशा सिखाते हो, शराब-जुआ का नशा सिखाते हो, पर वे हमें ब्रह्म का नशा सिखाते रहे। इस नशे के आगे सारा नशा फीका है।"

एक भक्त ने कहा—"हम भी तो इस नशे में आकर भगवान् को पुकारते हैं, पर हमारी पुकार वहाँ तक नहीं पहुँचती।"

लाटू महाराज ने कहा—"जरूर पहुँचती है। तुम लोग रुपया-रुपया-रुपया की पुकार करते हो, इसलिए तुम्हारे पास रुपये आते हैं! जिस दिन तुम्हारी भावना यह हो जायगी कि मुझे रुपया, मान, यश कुछ भी नहीं चाहिए। केवल आप (भगवान्) चाहिए, उस दिन वे जरूर आयेंगे।"

परमहंसजी ने अनुभव किया कि लाटू बिलकुल गँवार है। इसे थोड़ी शिक्षा देनी चाहिए। पहली पोथी मँगाकर वे पहले अ, आ, इ, ई पढ़ाने लगे। इसके बाद जब आगे पढ़ाने लगे तब बड़ी कठिनाई उत्पन्न हुई। वे कहते—"बोल क।" लाटू कहता—"का।" कई बार 'का' सुनने के बाद ठाकुर बोले—तब 'का' को क्या कहेगा ?"

लाटू ने बिहारी-संस्कार के अनुसार कहा—'का।'

यह जवाब सुनकर उन्होंने कहा—"अब तुझे पढ़ने की जरूरत नहीं है।"

लाटू की शिक्षा यहीं समाप्त हो गयी। इसका यह अर्थ नहीं कि ठाकुर ने उसे त्याग दिया। वह समर्पित सेवक के रूप में आया था। ठाकुर के प्रति उसे असीम श्रद्धा थी। लाटू उन्हें भगवान् समझता था। यह तब की बात है जब स्वामी विवेकानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द आदि ठाकुर के पास नहीं आये थे। लाटू ज्ञानवान् बने, उसमें विवेक जाग्रत् हो, इसके लिए ठाकुर बराबर प्रयत्न करते रहे। इसके बाद वे तरह-तरह के उपदेश देते थे। धीरे-धीरे लाटू में आध्यात्मिक चेतना जागृत हो गयी। बचपन से लाटू को कुश्ती लड़ने का शौक था। पहलवान स्वभाववाले कुछ अधिक भोजन करते हैं। गाँव का बालक, कसरती शरीर। लाटू भी अधिक भोजन करता था।

एक दिन ठाकुर योगीन महाराज को डाँटते हुए कहने लगे—"भोजन पर ज्यादा ध्यान मत दो। इससे साधना में व्यतिक्रम होता है।"

लाटू आड़ में था। इस चेतावनी को सुनने के बाद से उसने अपने भोजन में कमी कर दी। कुछ दिनों तक उसे इससे काफी कष्ट हुआ। भूख के कारण वह व्याकुल हो उठता था। आगे अपने को योग्य बना लिया। इसी बीच राखाल महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) से उसकी कुश्ती हो गयी। लाटू राखाल को पटक नहीं पा रहा था। यह दृश्य देखते ही परमहंसजी असली कारण समझ गये। अधिक श्रम और पर्याप्त भोजन न पाने के कारण लाटू कमजोर होता जा रहा है। उन्होंने उससे कहा—"दोनों पर कड़ाई करने पर यही दशा होगी।"

इस घटना के बाद से ठाकुर भोजन के वक्त उसे अपने पास बैठाकर खिलाने लगे। अपने हिस्से का सारा घी उसकी थाली में डाल देते थे। ठाकुर की कृपा को लाटू भाँप गया।

इसके बाद से वह कायदे के अनुसार भोजन करने लगा। कुश्ती के बदले अब केवल कसरत करने लगा।

एक दिन ठाकुर ने राखाल से (जिसे उन्होंने अपना मानसपुत्र बनाया था, जो आगे चलकर रामकृष्ण मठ के प्रथम अध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए थे।) कहा कि जरा एक पान लगा दे। उसने इनकार कर दिया। ठाकुर ने कई बार कहा और प्रत्येक बार राखाल इनकार करता गया। लाटू को इस आचरण में पिता-पुत्र की झलक नहीं मिली। अपनी व्यावहारिक दृष्टि से उसने कहा—"राखाल बाबू, यह आपका कैसा सलूक है ? आप उनकी बात नहीं सुन रहे हैं। ऊपर से जवाब दे रहे हैं। आपका व्यवहार ठीक नहीं है।"

इतना सुनना था कि बालक राखाल नाराज हो गया। फिर दोनों में झगड़ा शुरू हो गया। राखाल ने कहा—"मुझे पान लगाना नहीं आता। क्या मैं तमोली हूँ ? मैं पान नहीं लगाऊँगा। बड़ा आया है नसीहत देनेवाला।"

दोनों एक दूसरे से दब नहीं रहे थे। श्रद्धा-भक्ति का झगड़ा चल रहा था। इस बाल-सुलभ झगड़े का आनन्द ठाकुर ले रहे थे। अचानक उन्होंने रामलाल को पुकारते हुए कहा—"रामलाल, जल्दी आ। राखाल-लेटो की लड़ाई देख।"

रामलाल के आने पर ठाकुर ने पूछा—"रामलाल, बता तो इनमें कौन अधिक भक्त है ?" रामलाल ठाकुर के मजाक को समझ गये। बोले—"मेरी समझ से राखाल बड़ा भक्त है।"

रामलाल की बातें सुनते ही लाटू क्रोध के साथ बोला—"हाँ, उनकी बात सुना नहीं और वह बन गया बड़ा भक्त।"

लाटू का क्रोध देखकर ठाकुर ने हँसते हुए कहा—"तुमने ठीक कहा रामलाल। राखाल की भक्ति अधिक है। देखो, राखाल कैसा हँस-हँसकर बातें कह रहा है और लाटू कितना क्रोधित है। जिसमें अधिक भक्ति है, (अपने को दिखाते हुए) इसके सामने नाराज हो सकता है ? क्रोध तो चाण्डाल है। क्रोध से भक्ति-श्रद्धा नष्ट हो जाती है।"

इतना सुनना था कि जैसे जोंक के मुँह में नमक पड़ गया हो, ठीक इसी प्रकार लाटू महाराज ठंढे पड़ गये। उसने चुपचाप एक ओर खड़े होकर रोते हुए कहा—"अब मैं आपके सामने गुस्सा नहीं होऊँगा।"

ठाकुर ने स्नेह के साथ कहा—"इस शरीर को पान खाने की इच्छा हुई थी, इसलिए राखाल ने इनकार कर दिया। इस शरीर के भीतर जो है, अगर वे इच्छा करते तो राखाल को इनकार करने की हिम्मत न होती।"

देर तक बातचीत करने के बाद लाटू ठाकुर के लिए पान लगाने लगा। इसी प्रकार की प्रबोधक बातों से ठाकुर लाटू में आध्यात्मिक चेतना जाग्रत् करते रहे। कभी पूछते—"तू तो रामजी का भक्त है ? बता तो इस वक्त रामजी क्या कर रहे हैं ?"

लाटू ने कहा—"मुझे क्या मालूम कि वे क्या कर रहे हैं ?"

ठाकुर ने कहा—"रामजी सूई के भीतर से हाथी को निकाल रहे हैं।"

उन दिनों ठाकुर के कहने का अर्थ लाटू समझ नहीं सका। इसका ज्ञान बहुत दिनों

बाद उसे हुआ था। बातचीत के सिलसिले में एक दिन ठाकुर ने अपने को दिखाते हुए कहा—"देख, इसे मत भूलना।" अपने को दिखाने का अर्थ कहीं वह उनके शरीर को समझ न ले, इसलिए बातचीत के जरिये उन्होंने बताया कि मुझमें भगवान् हैं। इस घटना के बाद से लाटू परमहंसजी को सर्वदा भगवान् समझकर भक्ति करता रहा। ठाकुर भी घटनाओं के माध्यम से उसे ज्ञानवान् बनाते रहे।

एक बार एक भक्त दक्षिणेश्वर आया। उनकी असभ्यता देखकर लाटू नाराज हो गया। यह दृश्य ठाकुर दूर खड़े होकर देख रहे थे। भक्त के जाने के बाद उन्होंने लाटू को बुलाकर कहा—"यहाँ जो लोग आते हैं, उन्हें इस तरह कड़ी बात नहीं कहनी चाहिए। एक तो वे लोग सांसारिक झंझट से तंग रहते हैं। ऐसी हालत में यहाँ आने पर जब उन्हें कड़ी बात सुनायी जायगी तब वे कहाँ जायँगे ?"

इसके बाद उन्होंने भक्त को सांत्वना देने के लिए लाटू को भेजा। उसके वापस आने पर उन्होंने पूछा—"यहाँ का प्रणाम उन्हें दिया था ?"

यहाँ का प्रणाम ? लाटू अवाक् रह गया। ठाकुर का प्रणाम एक भक्त को ? यह कैसी बात ? उसे चुप रहते देख ठाकुर ने कहा—"जा, एक बार फिर जा। उनसे यही कहना।"

लाटू को आदेश का पालन करना पड़ा। ठाकुर की बातें कहते ही वह भक्त फफककर रो पड़ा। अब लाटू समझ पाया कि भक्ति क्या है। इसी समझदारी का उदाहरण उन्होंने अपने एक भक्त को दिया था जब वे स्वामी अद्‌भुतानन्द बन गये थे।

एक बार एक धनी भक्त ने हाथ उठाकर लाटू महाराज को प्रणाम किया तो उन्होंने कहा—"साधु-संन्यासियों को दण्डवत् होकर करना चाहिए। ठाकुर का यही कथन था।"

"मतलब ?"

लाटू महाराज ने कहा—"मतलब बताने के लिए एक घटना सुनो। गिरीश बाबू ने ठाकुर को एक बार इसी तरह प्रणाम किया। ठाकुर ने हम लोगों के सामने उसी तरह किया। फिर गिरीश बाबू ने कमर झुकाकर प्रणाम किया तब ठाकुर ने भी उसी तरह प्रणाम किया। इस प्रकार नमस्कार करते-करते जब गिरीश बाबू ने साष्टांग दण्डवत किया तब ठाकुर ने आशीर्वाद दिया।"

दक्षिणेश्वर में श्री श्रीमाँ (ठाकुर की पत्नी शारदा माता) अकेली, सुनसान स्थान, नहबत में बड़े कष्ट से रहती थीं। उन्हें नित्य भक्तों तथा शिष्यों के लिए भोजन बनाना पड़ता था। कोई सहायक भी नहीं था। अन्तर्यामी ठाकुर को श्री श्रीमाँ के कष्टों का ध्यान आया तो वे सक्रिय हो उठे।

एक दिन गंगा-स्नान के समय ठाकुर ने देखा कि लाटू तट पर चुपचाप बैठा है। उन्होंने लाटू से कहा—"अरे लाटू, तू यहाँ अकेला बैठा है और उधर तेरी माँ परेशान हैं। उन्हें रोटी बेलनेवाला कोई सहायक नहीं मिल रहा है। चल, उठ।"

उसे साथ लेकर ठाकुर श्री श्रीमाँ के पास आये और कहा—"यह लड़का शुद्धसत्त्व का है। तुम्हें जब जिस चीज की आवश्यकता हो, इससे कहना। यह सब कर देगा।"

अब उसे बराबर माँ की सेवा में रहना पड़ेगा, जानकर लाटू को अपार प्रसन्नता हुई।

उसकी वास्तविक मनोकामना पूरी हो गयी। उसी दिन से वह माँ का प्रधान सहायक बन गया।

इसी बीच एक दिन रामबाबू आये और ठाकुर से बोले—"आपने इस छोकरे को क्या सिखाया है जो आठ मील का चक्कर लगाकर कलकत्ता आता है।"

ठाकुर ने कहा—"मैंने क्या कहा है, इस वक्त याद नहीं आ रहा है। बात क्या है ?"

रामबाबू ने कहा—"लाटू को आपने शराब की महक से दूर रहने को कहा है, इसलिए वह कलवरिया के पास से नहीं गुजरता। जहाँ-जहाँ शराब की दुकानें हैं, उधर के रास्ते से जाता नहीं। काफी चक्कर काटकर जाता है।"

यह बात सुनकर ठाकुर गंभीर हो गये। तुरत लाटू को बुलाकर उन्होंने कहा—"मैंने तुझे शराब की महक सूँघने से मना किया है। इसका यह मतलब नहीं कि उधर से जाना मना है। शराब की दुकान की बगल से गुजरने पर कोई दोष नहीं होगा। उस वक्त (अपने को दिखाते हुए) इसे स्मरण करना तब कोई भी नशा तुझे अपनी ओर आकृष्ट नहीं करेगा।"

इसी तरह की घटनाओं से उसे उपदेश तथा योग की शिक्षा ठाकुर देते रहे। उन्होंने कहा—"यागयोग में जागते रहना चाहिए। काम करते हुए उनका ध्यान करना चाहिए। जीवन का प्रत्येक क्षण उन्हें समर्पित करना।"

एक बार लाटू सोये हुए ठाकुर को हवा कर रहा था। थकावट के कारण वह नींद में झूमने लगा। सहसा ठाकुर ने पूछा—"लाटू, क्या तू बता सकता है कि भगवान् सोते हैं या नहीं ?"

लाटू ने बिहारी भाषा में कहा—"हमराके का मालूम। भगवान् सुतलन कि नाहीं।"

ठाकुर हँसकर बोले—"भगवान् को सोने का अवसर नहीं मिलता। वे चौबीसों घण्टा जागते रहते हैं, जीव-जन्तुओं की सेवा करते हैं, इसलिए जीव-जन्तु सो पाते हैं।"

इस घटना के बाद एक दिन लाटू थककर सो गया था। उसे जगाते हुए ठाकुर ने कहा—"क्यों रे लाटू, शाम को कहीं सोना चाहिए ? इस वक्त भगवान् का ध्यान करना चाहिए, न कि लम्बी तानकर खर्राटे मारना।"

लाटू अप्रतिभ होकर उठ बैठा और उसने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि अब आगे से शाम के समय कभी नहीं सोऊँगा। अपनी इस प्रतिज्ञा का पालन उन्होंने आजीवन किया। एक बार जब वे सन्निपात से पीड़ित हुए तब शाम के समय स्वामी शारदानन्दजी से उन्होंने कहा—"इस वक्त मुझे उठाकर बैठा दीजिए। मैं इस समय सो नहीं सकता।"

शारदा महाराज ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। वे लाटू महाराज की देखभाल कर रहे थे। मरीज को आराम करना चाहिए, इस सिद्धान्त का पालन कर रहे थे। शारदा की उपेक्षा देखकर लाटू महाराज ने कहा—"अगर तुम लोग मुझे उठाकर नहीं बैठाओगे तो मुझे महावीरजी की शरण में जाना पड़ेगा।"

महावीरजी की शरण क्या बला है, इससे शारदा महाराज अपरिचित थे। ज्योंही वे आगे बढ़े त्योंही लाटू महाराज "जय बजरंग बली की" कहते हुए जोर लगाकर उठ बैठे।

यह दृश्य देखकर शारदा महाराज बिगड़ उठे—"तुम बीमार हो। तुम्हें बराबर लेटकर आराम करना चाहिए। यह क्या तमाशा कर रहे हो ? चलो, सो जाओ।"

लाटू महाराज ने कहा—"मैं यह सब नहीं जानता। यह उनका हुक्म है। शाम को सोना नहीं चाहिए। मुझे उनका हुक्म मानना ही पड़ेगा।"

अपने शिष्यों को मान-अपमान से रहित बनाने के लिए ठाकुर बराबर प्रयोग किया करते थे। एक बार भिक्षा के बारे में अपना संस्मरण सुनाते हुए लाटू महाराज ने कहा था—"एक दिन मुझे और राखाल बाबू को भिक्षा माँगने की आज्ञा मिली। जाते समय ठाकुर नित्य कहते कि कोई गाली देगा, कोई आशीर्वाद देगा, कोई पैसा देगा और कोई अनाज देगा। तुम लोग सब लेना। एक दिन हम लोगों पर एक सज्जन बिगड़ उठे—'जवान लड़के हो, भिक्षा माँगते हो ? काम करके कमा नहीं सकते ?' यह बात सुनकर राखाल बाबू बहुत मायूस हो गये। मैंने उन्हें समझाया कि ठाकुर ने तो हमें यह सब बता दिया था। उसी दिन एक विधवा बुढ़िया के दरवाजे पर जाकर खड़े हुए तो उसने पूछा—'किस दुःख के कारण तुम लोग भीख माँग रहे हो, बेटा ?' उन्हें सही बात कह दी गयी तो उन्होंने प्रसन्न होकर एक चवन्नी दी और आशीर्वाद देती हुई बोलीं—'तुम लोग जिस उद्देश्य से निकले हो, भगवान् सूर्यदेव तुम्हारी आशा पूरी करेंगे।' इसके बाद कई घरों से चावल-दाल आदि सामान लेकर हम वापस आये। सारी घटनाएँ ठाकुर से विस्तारपूर्वक वर्णन करने पर उन्होंने कहा—'उस वृद्धा ने ठीक कहा है। इस स्थान से सूर्यनारायण का योग है।'

परमहंसजी का सेवक होने के कारण लाटू को उनके साथ कलकत्ता के समृद्ध परिवारों में जाना पड़ता था। शिक्षित न होने पर भी वह इन लोगों के सम्पर्क में आने के कारण काफी सुसंस्कृत बन गया। गाँव का बालक, सरल प्रकृति का होने के कारण अपने मन की सारी कमजोरियों का उल्लेख कर देता था।

एक बार उनके मन में आसक्ति उत्पन्न हुई। जप में मन नहीं लग रहा था। लाचारी में वे ठाकुर के पास गये और अपनी परेशानी का वर्णन किया। परमहंसजी ने कहा—"यह होगा, मगर नाम जपना बन्द मत करना। इससे मन स्वतः शान्त हो जायगा।"

संन्यास ग्रहण करने के बाद लाटू का नाम अद्‌भुतानन्द स्वामी हुआ, लेकिन सभी लोग लाटू महाराज के नाम से संबोधित करते थे। आपके आचरण और बातों में अद्‌भुत का असर था। संभवतः इसीलिए आपका यह नाम रखा गया।

सबेरे जब सोकर उठते थे तब आँख खोलते ही सबसे पहले ठाकुर का चेहरा देखते थे। अगर ठाकुर अपने कमरे में नहीं रहते तो आँखें बन्द कर चिल्लाते—"आप कहाँ चले गये ?" इस पुकार को सुनकर ठाकुर को तुरत पास आना पड़ता था।

परमहंसजी अपने चुने हुए युवा भक्तों को लेकर कभी-कभी कीर्तन में नृत्य करते थे। एक बार नृत्य करते समय उन्होंने माँ जगदम्बा से कहा—"माँ, अगर तेरी इच्छा हो तो इन बच्चों को जरा भाव (समाधि) हो।"

इस घटना के बाद एक दिन विष्णुघर में जब कीर्तन होने लगा तब लाटू महाराज ने इतने जोर से हुंकारा कि सारा कमरा गूँज उठा। कीर्तन के बाद खोका महाराज ने पूछा—"आज जो कीर्तन हुआ, उसमें ठीक-ठीक भाव किसे हुआ था ?"

ठाकुर कुछ देर तक चिन्तन करने के बाद बोले—"आज लाटू में ठीक-ठीक भाव हुआ था। बाकी लोगों को थोड़ा-थोड़ा।"

लाटू महाराज अत्यन्त कठोरता से साधना करते रहे। यह देखकर ठाकुर ने एक दिन कहा था—"अधिक नाचना-कूदना ठीक नहीं है। भाव को अगर छिपाया नहीं गया तो वह अन्तर्मुखी नहीं होता।"

लाटू महाराज की साधना कितनी कठोर थी और वे किस तेजी से आगे बढ़ रहे थे, इसका प्रमाण हमें उनके जीवन की कई घटनाओं से मिल जाता है।

एक दिन ब्राह्म मुहूर्त में सभी लोगों को अपने कमरे में ध्यान पर बैठाकर ठाकुर गाने लगे—"जाग माँ कुण्डलिनी।" तभी लाटू महाराज विकट स्वर में 'ऊहू' कर उठे। ठाकुर तुरत उसके पास आये और दोनों हाथों उसके कंधों को दबाया। इधर लाटू अपने आसन पर स्थिर नहीं रहना चाहता था। बाद में उसका बाह्य ज्ञान लुप्त हो गया।

एक दिन शिव-मंदिर में ध्यान करते समय वे समाधिस्थ हो गये। तीसरे पहर तक प्रस्तर-प्रतिमा की तरह बैठे रहे। समाचार पाते ही ठाकुर आये और पंखे से हवा करने लगे। शीतल वायु पाकर लाटू का शरीर काँपने लगा। ठाकुर ने कहा—"दिन ढल गया। आखिर दीयाबत्ती कब करेगा ?"

इस आदेश को सुनते ही लाटू प्रकृतिस्थ हो गया। ठाकुर को पंखा झलते देख वह संकोच से अप्रतिभ हो उठा। लाटू ने बताया—"शिवजी की ओर दृष्टि निबद्ध रखे हुए था कि अचानक एक ज्योति प्रकट हुई और चारों ओर प्रकाश फैल गया। इसके बाद का कुछ ज्ञात नहीं।"

ठाकुर ने कहा—"ठीक है, ठीक है। इस तरह के आगे न जाने कितने दृश्य देखेगा। अभी एक गिलास पानी पी ले।"

इसी प्रकार एक बार ध्यान करते समय अचानक जमीन से मुँह सटाकर विचित्र आवाज करने लगे। थोड़ी देर बाद परमहंसजी आये। उसे चित्त लेटाकर उसकी छाती पर हाथ फेरने लगे। थोड़ी देर बाद जब लाटू सहजावस्था में आया तब ठाकुर बिगड़कर बोले—"चुप रह साले, लगता है, आज तूने काली माता को देखा है।"

एक दिन गंगा किनारे बैठकर लाटू दिन के वक्त ध्यान कर रहा था। ठीक इसी समय गंगा में ज्वार आ गया। आमतौर पर लाटू जहाँ बैठता था, वहाँ तक पानी नहीं आता था। लेकिन उस दिन वहाँ तक पानी चढ़ आया। लाटू को वहाँ से हटते न देख स्वामी अद्वैतानन्द दौड़े हुए ठाकुर के पास गये और घटना का विवरण दिया। ठाकुर ने आकर देखा कि लाटू को चारों ओर से पानी ने घेर लिया है। वे शीघ्रता से उसके पास जाकर उसे ढकेलते हुए उठाया।

एक बार विष्णुघर के पुरोहित से ठाकुर ने कहा—"देख तो लाटू कहाँ है ? कई बार बुलाया, आया नहीं।" पुरोहित ने इधर-उधर खोजते हुए आकर देखा कि लाटू समाधिस्थ है। कई बार आवाज देने पर जब वह नहीं उठा तब ठाकुर से सारी बातें उन्होंने कह दीं। ठाकुर ने तब नरेन (स्वामी विवेकानन्द) को भेजा। नरेन ने भी यही दृश्य देखा तो परीक्षा करने के लिए एक डंडा लेकर दूर एक पेड़ पर पटकते हुए आवाज करने लगे। इस आवाज

को सुनकर ठाकुर स्थिर नहीं रह सके। तुरत आकर उन्होंने नरेन से कहा—"अब इसे परेशान मत कर।"

नरेन ने कहा—"जब आदमी होश में रहे तब परेशान होगा। यह तो बिलकुल बेहोश है।"

ठाकुर ने हँसकर कहा—"जब तक इस प्रकार बेहोश न हुआ जाय तब तक ध्यान जमता नहीं।"

इसी प्रकार की कई घटनाएँ लाटू के जीवन में हुई थीं। एक बार देर तक ठाकुर को मालिश करनी पड़ी थी। एक बार उसके पैर पर पैर रखकर देर तक चाँपना पड़ा था। शायद इसीलिए ठाकुर ने सिद्ध पंचमुंडी आसन पर लाटू को बैठाया था जहाँ बैठकर वे स्वयं सिद्ध हुए थे।

पंचमुंडी आसन पर बैठकर ध्यान करना साधारण बात नहीं है। दृढ़ ब्रह्मचर्य के अलावा शुद्ध-पवित्र शरीर और मन का होना जरूरी है। उस वक्त अनेक उपग्रह ध्यान में खलल डालते हैं, आसन से उठाने के लिए उपद्रव करते हैं। निर्भीक साधक ही सिद्ध आसन पर बैठकर जप करने में सफलता प्राप्त करते हैं। इस आसन पर ऐरे-गैरे शिष्यों को ठाकुर नहीं बैठाते थे। केवल उचित आधारवालों को भेजते थे। लाटू जैसे कसरती जवान का कलेजा काँप उठा था। ध्यान के वक्त चारों ओर विभीषिका देखकर वह डर से काँप उठा था। ठीक उसी समय अन्तर्यामी ठाकुर ने दूर से कहा था—"क्यों रे, डर गया ? डरने की क्या बात है ? आ, मेरे पास चला आ।" ठाकुर की आवाज सुनते ही सारा भय दूर हो गया था।

कुछ दिनों बाद लाटू को झक सवार हुई कि वह तीर्थयात्रा करेगा। ठाकुर ने कहा—"यहाँ रहते काफी दिन हो गया। जा, कहीं घूम-फिर आ।"

इस आज्ञा को सुनकर वह प्रसन्न हो उठा। बोला—"आप कहाँ जाने की आज्ञा दे रहे हैं ?"

ठाकुर ने कहा—"बाबूराम के आटपुरा में चला जा। वहाँ बाबूराम है, तुझे कोई कष्ट नहीं होगा।"

लाटू महाराज के बारे में बाबूरामजी ने अपने एक भक्त से कहा था— "एक बार लाटू मेरे यहाँ गया था। नित्य वह कहा करता था—'मुझे यहाँ अच्छा नहीं लग रहा है।' मेरी माँ मुझसे कहतीं—'उससे पूछ कि उसे किस बात की तकलीफ है ?' मैं यह जान गया था कि उसे यहाँ क्यों नहीं अच्छा लग रहा है। वहाँ ठाकुर नहीं थे। लाटू जैसा सेवक ठाकुर बिना चंचल हो उठा था। आखिर एक दिन रो पड़ा और कहा कि मैं कल ही दक्षिणेश्वर चला जाऊँगा। लाटू की हालत देखकर किसीने उसे रोका नहीं।"

दक्षिणेश्वर आते ही ठाकुर ने पूछा—"क्यों रे, बड़ी जल्दी वापस आ गया ?"

लाटू ने कहा—"वहाँ अच्छा नहीं लग रहा था।"

ठाकुर ने पूछा—"क्यों ? वह जगह तो काफी अच्छी है। बाबूराम की माँ भी भक्तिमती हैं। साधु-संन्यासियों की खूब अच्छी तरह सेवा करती हैं।"

लाटू—"पता नहीं। वहाँ आपके लिए मन न जाने कैसा कर रहा था। नाम-जप में मन नहीं लग रहा था।"

ठाकुर—"यह क्या बक रहा है ? मैं नहीं रहूँगा तो तेरा मन नहीं बैठेगा। क्या मैं हमेशा जीवित रहूँगा ?"

लाटू ने रोते हुए कहा—"आप मुझे इस तरह अपना लीजिए ताकि हमेशा आपके साथ रह सकूँ।"

ठाकुर ने कहा—"साले का नखरा देखो।"

दिन गुजरते गये। ठाकुर को गले का कैंसर हुआ। इलाज के सिलसिले में वे श्यामापुकुर आये। सेवक लाटू साथ में था। एक दिन यहाँ भी लाटू महाराज भावावेश में आ गये। बाद में ठाकुर के हाथ फेरने पर प्रकृतिस्थ हुए।

श्यामापुकुर के बाद ठाकुर काशीपुर आकर रहने लगे। एक दिन ठाकुर के सिर पर हाथ फेरते-फेरते लाटू महाराज समाधिस्थ हो गये। इस बारे में उन्होंने कहा—"एक दिन ठाकुर के सिर पर हाथ फेरते समय मेरे सामने मुल्लूक (मुल्क) खुल गया। उस मुल्लूक में जो देखा, उसे आँखों से पकड़ नहीं सका। जो आस्वाद मिला, उसे जीभ ग्रहण नहीं कर सकी।"

श्री श्रीमाँ वृन्दावन जा रही थीं। साथ में लाटू महाराज चल पड़े। वहाँ लोगों की अजानकारी में कुछ दिनों तक तपस्या करने के बाद कलकत्ता चले गये। यहाँ आने के बाद उन्हें संन्यास दिया गया।

ठाकुर के निधन के बाद लाटू महाराज निरन्तर साधना में मगन रहने लगे। रात को सोते नहीं थे। रात गये कमरे में खटखट आवाज सुनकर स्वामी शारदानन्द ने सोचा—कमरे में चूहे उपद्रव करते हैं। कई दिनों बाद एक दिन लालटेन मद्धिम करके रखा। ज्योंही आवाज होने लगी त्योंही रोशनी बढ़ाने पर उन्होंने देखा कि लाटू महाराज माला जप रहे हैं। यह आवाज माला के दानों की थी। जबकि लाटू महाराज भोजन के बाद जल्द सो जाते और थोड़ी देर बाद खर्राटे भरने लगते थे। जब सभी सो जाते तब वे चुपचाप उठकर जप-साधना करते थे।

सन् १८९२ से १८९७ ई० तक लाटू महाराज न तो मठ में थे और न किसीके घर पर। गंगा-तट ही उनका निवासस्थान था। भिक्षा में भुने चावल या चना खाकर दिन गुजारते थे। कपड़ों के लिए अपने पूर्व स्वामी रामचन्द्र दत्त के यहाँ जाकर माँग लेते थे। सलकिया का एक हलवाई इन्हें लगातार ७-८ माह तक चने की रोटी खिलाता था। कभी-कभी भीगे चने खाकर रह जाते थे। गंगा-तट पर भागवत-कथा सुनते और साधन-भजन करते। पानी बरसने पर स्टेशन पर स्थित खड़ी किसी मालगाड़ी में सो जाते थे।

एक बार आप पुरी गये। जगन्नाथ-विग्रह के सामने खड़े होकर आपने विचित्र प्रार्थना की। आपने कहा—"आपका जो रूप देखकर महाप्रभु (चैतन्यदेव) की आँखें सजल हो गयी थीं, आज मुझे अपना वही रूप दिखाइये।"

कहा जाता है कि आपकी मनोकामना पूर्ण हुई थी। पुरी से रवाना होने के पूर्व आपने जगन्नाथ देव से दो अद्‌भुत प्रार्थनाएँ की थीं। उनमें से एक यह थी कि अब मैं अधिक घूम-फिर नहीं सकता, इसलिए जो कुछ खाऊँ, सब हजम हो जाय।

इस बारे में प्रश्न करने पर आपने बताया— "भिक्षान्न में क्या-क्या मिलता है, यह आप

लोग जानते हैं ? अगर पाचन-शक्ति ठीक नहीं रहेगी तो स्वास्थ्य खराब हो जायगा। स्वास्थ्य खराब होने पर भजन में मन नहीं लगेगा।''

सन् १८९७ में स्वामी विवेकानन्द अमेरिका से वापस आये। सभी गुरुभाई उनसे मिले, पर लाटू महाराज नहीं गये। उन्होंने सोचा—मैं साधारण व्यक्ति हूँ। वह विलायत रिटर्न आदमी है। साहब हो गया है। भला मुझे पहचानेगा ?

लेकिन विवेकानन्दजी लाटू महाराज को भूले नहीं थे। एक दिन स्वयं ही आये और उन्हें गले से लगाते हुए बोले—''अरे लाटू भाई, मैं तेरा वही नरेन हूँ। चल, मठ में।''

लाटू महाराज मठ में आये तो यहाँ का रंग-ढंग देखकर परेशान हो गये। विवेकानन्द ने नियम बनाया था कि भोर में तीन बजे घंटा बजते ही सभी लोग जाग जायँगे। इस नियम की जानकारी होते ही एक दिन लाटू महाराज अपना बोरिया-बिस्तर लेकर चल पड़े। इन्हें मठ से जाते देख विवेकानन्दजी ने पूछा—''कहाँ जा रहा है ?''

लाटू—''कलकत्ता।''

विवेकानन्द—''क्यों ?''

लाटू—''तुम विलायत से आये हो। नये-नये नियम बना रहे हो। मैं यह सब नहीं मान सकता। मेरा मन ऐसा नहीं है कि उधर तुम्हारा घंटा बजा और इधर मेरा मन ध्यान में लग गया।''

विवेकानन्द—''तब जा।''

लाटू महाराज ज्योंही फाटक के पास पहुँचे त्योंही स्वामी विवेकानन्द ने दौड़कर उन्हें पकड़ते हुए कहा—''तुझे इस नियम को मानने की जरूरत नहीं है। जो लोग मठ में नये आये हैं, उनके लिए यह नियम है।''

इसी प्रकार एक बार आदेश हुआ कि सभी लोग व्यायाम के लिए डंबेल भाँजेंगे। इस आदेश को सुनकर लाटू महाराज ने कहा—''अजीब तमाशा है। अब इस बुढ़ापे में डंबेल भाँजना पड़ेगा।''

लोगों ने कहा—''यह नियम आपके लिए नहीं है।''

लाटू महाराज ने कहा—''यह कैसा नियम है ? मठ में रहूँगा और नियम नहीं मानूँगा ? यह अच्छी बात नहीं है।''

धर्म के विषय में लाटू महाराज बड़े उदार थे। मुसलमानों के ईद और मुहर्रम पर दरगाह में पूजा की सामग्री भेजते तो क्रिसमस और गुडफ्राइडे को प्रभु यीशु को अपने हाथ से भोग चढ़ाते थे। माला पहनाते थे। ईसाई डी मेलो के एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने पूछा—''आप किसे मानते हैं ?''

डी मेलो ने कहा—''यीशु और ठाकुर दोनों को मानता हूँ।''

''बराबर किसे मानते हैं ?''

डी मेलो ने कहा—''प्रभु यीशु को।''

''तब तुम यीशु को मानते रहो।''

सन् १९०७ की घटना है। दुर्गा-पूजा के अवसर पर श्री श्रीमाँ बलराम-मंदिर में आयीं।

अपनी प्रिय संतान लाटू को देखने के लिए उनके कमरे में आयीं तो लाटू महाराज बोल उठे—"आप शरीफ घर की लड़की हैं। मुझसे मिलने क्यों आयीं ? किसीको भेजकर मुझे बुलवा लेतीं।"

श्री श्रीमाँ लाटू के स्वभाव से परिचित थीं। वे हँसती हुई ऊपर चली गयीं। इधर अपने मन का विषाद दबाने के लिए लाटू महाराज कहने लगे—"संन्यासी का कौन पिता और कौन माता। संन्यासी तो निर्माया होता है।"

श्री श्रीमाँ उस समय सीढ़ी पर से उतर रही थीं। बोलीं—"बेटा लाटू, तुम्हें मुझे मानने की जरूरत नहीं है।"

श्री श्रीमाँ का इतना कहना था कि लाटू महाराज का सारा विषाद दूर हो गया। वे रोते हुए माँ के चरणों पर गिर पड़े।

श्री श्रीमाँ की आँखें भी सजल हो उठीं। यह देखकर लाटू महाराज अपने उत्तरीय से उनके आँसुओं को पोंछते हुए बोले—"अपने पिता के घर जा रही हो, भला ऐसे वक्त रोना चाहिए ?"

कुछ दिनों बाद लाटू महाराज को झक सवार हुई कि अब काशीवास करना चाहिए। काशी आकर वे कुछ दिनों तक अद्वैत आश्रम[१] में रहे। बाद में पांडे हवेली आकर रहने लगे।

इन्हीं दिनों यक्ष्मा का एक रोगी इनके पास आया और बोला—"मेरे पास इतने पैसे नहीं हैं कि मैं अपना इलाज करवा सकूँ। आप मुझे ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि मैं रोगमुक्त हो जाऊँ या मर जाऊँ।"

लाटू महाराज ने कहा—"चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। ठाकुर की अगर कृपा हुई तो तुम निस्सन्देह रोगमुक्त हो जाओगे। आज से नित्य स्नान करने के बाद विश्वनाथ मंदिर जाकर बाबा का दर्शन करना। उनका चरणामृत पान करना। ईश्वर की कृपा से तुम ठीक हो जाओगे।"

कुछ दिनों बाद वह युवक पूर्ण स्वस्थ हो गया। इसी प्रकार उनके एक भक्त ने बंगाल से एक पत्र लिखा कि मेरी बहुत दिनों से इच्छा है काशी आने की, बाबा विश्वनाथ का दर्शन करना चाहता हूँ, पर मेरे पास आने-जाने के लिए किराये के पैसे नहीं हैं।

लाटू महाराज ने जवाब दिया—किसी प्रकार से आप आने के किराये का जुगाड़ कर लें और चले आयें। शेष का प्रबंध यहाँ हो जायगा। इस आश्वासन को पाकर वह भक्त काशी आया। विश्वनाथ-दर्शन करने के बाद उनका मन उदास हो गया। सभी लोग बाबा को दान दे रहे थे, पर उन्होंने केवल बेल-पत्र चढ़ाया। एक तो तीर्थ करने आकर संन्यासी का अन्न खा रहा हूँ, दूसरे पास में एक पैसा नहीं जो पुण्य अर्जन करूँ। मंदिर से वापस आकर वे अपने बन्द कमरे में रोने लगे।

समाचार पाते ही लाटू महाराज ने कहा—"कल सबेरे गंगा-स्नान के पश्चात् भगवान् के नाम पर गंगाजल अर्पण करते हुए कहना—"जगत् का समस्त दुःख दूर हो जाय।"

---

१. काशी में उनकी स्मृति में बनवाया गया घर है और कमरे में उनकी सामग्री है।

भक्त ने सोचा—यह तो मन को सांत्वना देने का एक उपदेश मात्र है। लेकिन जब गुरुदेव की आज्ञा है तब यह करना ही पड़ेगा। आश्चर्य की बात यह हुई कि अर्घ्य देने के बाद उनके मन को अपार शान्ति प्राप्त हुई।

एक बार एक भक्त उनके कमरे में सो रहा था। रात को वह नींद में गन्दा सपना देखने लगा। तभी लाटू महाराज ने उसे धक्का देते हुए कहा— "यहाँ आकर यही सब सोचते हो ?"

एक महिला अपने पति से झगड़कर तीर्थयात्रा करती हुई काशी आयी। लाटू महाराज को प्रणाम कर ज्योंही खड़ी हुई त्योंही उन्होंने कहा— "विवाहित महिलाओं को पति की आज्ञा मानकर चलना चाहिए। जो महिलाएँ ऐसा नहीं करतीं, वे अशान्ति भोग करती हैं।"

यह बात सुनकर महिला चकित रह गयी। आखिर महाराज को मेरी गृहस्थी की बात कैसे मालूम हो गयी ? मैंने तो किसीसे जिक्र नहीं किया है।

जीवन के अंतिम काल में लाटू महाराज मधुमेह के शिकार हो गये थे। इलाज से लाभ नहीं हो रहा था। २४ अप्रैल सन् १९२० के दिन वे महाप्रयाण कर गये।

●

भोलानन्द गिरि

भोलानन्द गिरि

विवाह के कई वर्षों बाद जब नन्दा देवी सन्तान की जननी नहीं बन सकीं तब पड़ोस की बूढ़ी महिलाएँ तथा सहेलियों ने उन्हें शंकर भगवान् की पूजा, पीपल वृक्ष में जलदान एवं फेरी लगाने और साधु-संतों की सेवा करने की सलाह दी। इस सलाह को मानकर नन्दा देवी देवाधिपति शंकर की आराधना में मगन रहने लगीं।

कुछ दिनों बाद उन्हें प्रथम पुत्र की प्राप्ति हुई। पिता ब्रह्मदास ने वंश के गौरव का नाम रखा—रतनदास। बालक पिता-माता की स्नेह-छाया में पलता रहा। बालक से किशोर हुआ और एक दिन लापता हो गया। एकमात्र सन्तान के गायब होने के कारण माँ-बाप टूट-से गये। दिन-रात यही चिन्ता उन्हें सताती रही—न जाने कहाँ होगा ? घर में भूख लगने पर कभी भोजन नहीं माँगता था। चुपचाप सुनसान जगह में जाकर रोता रहता था। पता नहीं, वह किस परिस्थिति में होगा ? कैसे, किससे माँगता होगा।

अब नन्दा देवी व्याकुल भाव से अपने देवता शंकर भगवान् से प्रार्थना करने लगीं कि उनके पुत्र को घर वापस भेज दें, अन्यथा रो-रोकर हम दोनों प्राण त्याग देंगे। पुत्र का बिछोह अब सहन नहीं हो रहा है।

एक दिन जब नन्दा देवी गहरी नींद में सो रही थीं तो स्वप्न में उन्होंने देखा— "देवाधिदेव शंकर भगवान् उनके सामने खड़े हैं। वे कह रहे हैं— "बेटी, तू क्यों दुःखित है ? तेरा बेटा अध्यात्म की खोज में चला गया है। अब वह कभी नहीं लौटेगा। उसने संन्यास ले लिया है। उसकी तपस्या से तेरे परिवार का भी भला होगा। तुझे पुत्र चाहिए न ? मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तू तीन सुसन्तानों की जननी बनेगी। लेकिन वे भी बड़े भाई की तरह योगी बनेंगे। इनमें एक अद्वितीय होगा। केवल अन्तिम बालक तेरे पास रह जायगा। तेरे लिए यह गौरव की बात होगी जो ऐसे सन्तानों की जननी बनेगी। शोकसन्तप्त नर-नारियों को तेरे पुत्र शान्ति देंगे।"

शंकर भगवान् इतना कहकर अन्तर्धान हो गये। तभी नन्दा देवी की आँखें खुल गयीं। वे चौंककर जाग उठीं। देखा—पति गहरी नींद में सो रहे हैं। बाहर भोर का पक्षी काकली कर रहा है। पति को जगाती हुई नन्दा देवी ने अपने स्वप्न की कहानी सुनायी।

पति ब्रह्मदास ने कहा— "भोर का सपना सच होता है। शायद हम ऐसे पुत्रों के माँ-बाप बनें। तुम अपना पूजा-पाठ जारी रखना।"

दिन गुजरते गये। कुछ दिनों के बाद घर में दूसरे पुत्र ने जन्म लिया। शंकर भगवान् का कृपा-प्रसाद समझकर लड़के का नाम रखा गया—भोलादास।

फिर तीसरे पुत्र ने जन्म लिया। इस बालक का नाम रखा गया—शंकरदास। सभी शंकर भगवान् के आशीर्वाद थे।

भोलादास का नियमानुसार उपनयन-संस्कार हुआ। सारस्वत ब्राह्मण-परिवार का आवास है। आगे चलकर बालक यजमानों के यहाँ जायगा। लेकिन उपनयन होने के कुछ दिनों बाद यह बालक भी अपने बड़े भाई की तरह एक रात को गायब हो गया। काफी खोज की गयी, पर कहीं पता नहीं चला। घर में उदासी का दौर चलता रहा। इस घटना के बाद चौथे पुत्र ने जन्म लिया। इस बालक का नाम रखा गया—सुन्दरदास।

नन्दा देवी को देखे हुए सपने की कहानी बराबर याद आती रही। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि एक दिन शंकरदास भी अपने दोनों भाइयों की तरह कहीं गायब हो जायगा। भरसक उसे अपनी निगाहों के सामने रखती रहीं, पर एक दिन वह भी घर से गायब हो गया। अब ले-देकर घर में अन्तिम पुत्र सुन्दरदास रह गया। ब्रह्मदास को विश्वास हो गया कि अब यह बालक कहीं नहीं जायगा। अपने खोये हुए तीनों पुत्रों का प्यार उसे देने लगे।

इन घटनाओं के बाद एक युग बीत गया। नन्दा देवी अपनी प्रथम तीन सन्तानों को भूल गयीं। कभी-कभी याद आने पर वे अकेले में चुपचाप आँसू बहा लेती थीं। सुन्दरदास बूढ़े माँ-बाप की सेवा में लगा रहता था।

सहसा एक दिन जब ब्रह्मदास और सुन्दरदास घर से बाहर थे और नन्दा देवी घर के भीतर आँगन में काम कर रही थीं, ठीक इसी समय बाहर दरवाजे पर आवाज आयी—"जय शंकर।"

नन्दा देवी ने समझा कोई साधु भीख माँगने आया है। वे दरवाजे के पास खड़ी हो गयीं। सामने एक संन्यासी गेरुआ वस्त्र पहने खड़ा था। नन्दा देवी को देखते ही उसने चरण-स्पर्श किया।

नन्दा देवी चौंककर पीछे हट गयीं और तीखे स्वर में बोलीं—"संन्यासी होकर आप गृहस्थ घर की औरत के पैर छूते हैं। छिः बाबाजी, हमें पाप का भागी क्यों बनाया ?"

बाबा ने कहा— "मैंने तो माता जानकर चरण-स्पर्श किया है, माताजी। मुझे आशीर्वाद दें।"

नन्दा देवी ने कहा— "आशीर्वाद तो आपको देना चाहिए। मैं कैसे दे सकती हूँ ? ठहरिये, कुछ भिक्षा ले लीजिए।"

इतना कहकर नन्दा देवी घर में चली गयीं। लौटकर आयीं तो देखा—बाबा गायब हैं। दूर-दूर तक उनका पता नहीं है। न जाने क्यों मन में संदेह उत्पन्न हुआ। आज तक कोई संन्यासी इस तरह वापस नहीं गया और न किसीने प्रणाम किया। क्या वह मेरा रतन था ? फिर शक्ल की याद आने पर सब कुछ स्पष्ट हो गया। वह मेरा भोला था। भोला का स्मरण आते ही नन्दा का सिर चकराने लगा और वे दरवाजे के पास बेहोश होकर गिर पड़ीं।

उधर भोलादास ने अपने गुरु के पास जाकर उन्हें प्रणाम करते हुए कहा—"गुरुदेव, आपकी आज्ञा का पालन कर आया।"

गुरुदेव ने पूछा— "माँ या अन्य किसीने तुम्हें पहचाना तो नहीं ?"

"जी नहीं।"

गुरु गुलाब गिरि ने कहा— "नारायण गिरि, (भोलादास का संन्यासी नाम) अब तुम पहले की तरह आश्रम की देखभाल करो। समय आने पर आगे का कार्यक्रम बताऊँगा।"

"जो आज्ञा।" कहने के पश्चात् नारायण गिरि आश्रम के कार्यों में लग गये।

आश्रम में १४०० गायें, ५ सौ भैंसें तथा काफी जमीन थी। सभी शिष्यों को गाय-भैंस चराना, उन्हें सानी-पानी देना, जंगल से लकड़ी काटना, खेत जोतना-बोना तथा अन्य बहुत-सा गृहस्थी का कार्य करना पड़ता। इसमें जरा-सी चूक होने पर गुलाब गिरि क्षमा नहीं करते थे। डाँटना, मारना, गाली देना आम बात थी।

प्राचीनकाल से लेकर अब तक शिष्यों को साधना के क्षेत्र में योग्य बनाने के लिए गुरु लोग हर तरह की सेवाएँ लेते थे। जो सहज ही सिद्धि पाना चाहते थे, वे भाग जाते थे या सर्वज्ञाता गुरु उन्हें वापस भेज देते थे। मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा और सुना है। आज भी मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के अनेक साधु अपने शिष्यों से आश्रम के लिए कठोर-से कठोर कार्य कराते हैं ताकि उनके अन्तर की सारी वासनाएँ और कामनाएँ निर्मूल हो जायँ। खेती कराना, ढोर चराना, नदी से पानी लाना, भोजन बनाना, जंगल से लकड़ी लाना, गृहस्थों के यहाँ से भीख माँगना आदि कार्य करने के बाद भजन-पूजन कराते हैं। विश्राम के लिए कम समय देते हैं। जब इन कार्यों में जरा भी त्रुटि होती है तब गुरु आपे से बाहर हो जाते हैं। उस वक्त गुरु के क्रोध का शिकार होना पड़ता है। अगर गुरु के क्रोध को शिष्य नहीं पचा पाता तो वह अच्छा साधक नहीं बन पाता।

जिस प्रकार बाँस को तेल पिलाकर क्रमशः पोख्ता किया जाता है, उसी प्रकार शिष्य को सीढ़ी दर सीढ़ी साधना के पथ पर अग्रसर किया जाता है।

नारायण गिरि जो आगे चलकर अपने पितृप्रदत्त नाम भोलादास के बदले भोलानन्द गिरि के नाम से प्रसिद्ध हुए, को इन सभी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होना पड़ा था। भोर में तीन बजे उठकर वे साधना करते, एक मन दूध मथकर मक्खन निकालते। उन्हें शिव-मंदिर की पूजा, आश्रम में आनेवाले अतिथियों के भोजन का प्रबंध और फिर रात को आरती-पूजा, भजन करना पड़ता था। ऊपर से गुरुजी के कटु वाक्यों को प्रसन्न चित्त से हजम करना पड़ता था।

एक बार किसी गलती पर गुलाब गिरि महाराज ने बिगड़कर कहा— "निकल जा, मेरे आश्रम से। केवल कौपीन पहनकर निकल जा। आज से तेरा यहाँ से कोई मतलब नहीं।"

गुरु की आज्ञा मानकर भोलानन्दजी अपने गुरु की कुटिया से बाहर एक पेड़ के नीचे खड़े हो गये। सर्दी की रात, बदन पर केवल कौपीन, ठंढी हवा तीर की तरह बदन से चुभती रही। हाथ जोड़ते हुए उन्होंने मन ही मन कहा— "गुरुदेव, यह शरीर भी आपका है। आपका आश्रय छोड़कर मैं कहीं नहीं जा सकता। अब जो इच्छा हो, करिये। मैं इन चरणों को छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा।"

भोर के समय गुरुदेव कुटिया के बाहर आये तो देखा— उनका प्रिय शिष्य आश्रम के बाहर एक पेड़ के नीचे हाथ जोड़े खड़ा है। पास जाकर बोले— "यहाँ क्यों खड़ा है ? पूजा-पाठ नहीं करना है ? जाओ, मन्दिर में जाकर पूजा की तैयारी करो।"

भोलानन्दजी अपने गुरुदेव के स्वभाव को अच्छी तरह जानते थे, इसलिए उन्हें प्रणाम कर चुपचाप आश्रम के भीतर चले गये।

समय गुजरता गया। एक दिन गुरुदेव ने भोलानन्द को बुलाकर कहा—"वत्स, अब कुछ दिनों के लिए कृच्छ्र-साधना के लिए जाना होगा। तुम्हारे साथ तीन अन्य ब्रह्मचारी भी जायँगे। वहाँ से वापस आने के बाद तुम्हें आगे की साधना के बारे में बताऊँगा।"

गुरु की आज्ञा मानकर अपने तीनों गुरुभाइयों के साथ हिमालय की तराई के आगे एक सुनसान कन्दरा में चले आये। पास ही कुछ दूरी पर नदी बह रही थी। चारों ओर घना जंगल था। गुफा की सफाई करने के बाद चारों ब्रह्मचारी साधना में लग गये। रात्रि को हिंस्र जानवरों से बचने के लिए धूनी जलाकर बीज मंत्र जपते थे।

एक दिन धूनी की लौ मन्द पड़ गयी तो देखा—गुफा के बाहर एक बाघ जीभ निकालकर देख रहा है। मन्द प्रकाश में उसकी आँखें चमक रही थीं। भोलानाथ ने अपने गुरुभाइयों से कहा—"डरने की जरूरत नहीं। अपने-अपने आसन पर एकाग्र चित्त से मंत्र का जाप करते रहो। गुरुदेव हमारी रक्षा करेंगे।"

इन गुरुभाइयों में एक का हृदय बहुत कमजोर था। वह हमले के डर से सुरक्षित स्थान में जाने के लिए ज्योंही उठ खड़ा हुआ त्योंही एक छलाँग में बाघ ने उसे दबोच लिया। इसके बाद उसे घसीटता हुआ जंगल के भीतर ले गया।

बाद में भोलानन्द ने अपने गुरुभाइयों से कहा—"एकनिष्ठ भाव से अगर अपने आसन में जप करते रहो तो गुरु-कृपा से कोई खतरा नहीं होगा। गुरु हमेशा अपने शिष्यों की रक्षा करते हैं। प्रभासचन्द्र अपनी अकाल मृत्यु के लिए स्वयं उत्तरदायी है।"

इसी प्रकार एक बार जब वे पद्मासन लगाकर ध्यान लगाये हुए थे तब एक रीछ आया और पीछे से इन्हें जकड़ लिया। आसन्न विपद् से मुक्ति पाने के लिए भोलानन्दजी ने उसके मुँह को कसकर दबाया और पीठ पर लादकर एक गहरी खाई के पास आये। पीठ पर लदे भालू को एक झटके में खाई में फेंकते हुए बोले—"भइया, अब तुम अपना रास्ता नापो और मैं अपने रास्ते जाता हूँ।"

गुरु की आज्ञा से वे आगे और कठोर तप करने के लिए निबिड जंगल में चले गये। वहाँ खाने-पीने की असुविधा होने लगी। साधना-रत भोलानाथ अनाहार के कारण कृश होते गये। केवल झरने का पानी और वृक्ष की पत्तियों का सेवन करते रहे।

गर्मी के कारण झरने का जल सूख गया। एक दिन पानी लेने के लिए नीचे नदी की ओर आये। कमजोरी के कारण उनका पैर डगमगाया और वे नदी में गिर पड़े। होश आने पर उन्होंने अपने को एक कमरे में पाया। उनके ऊपर एक पहाड़ी झुका हुआ उनकी सेवा कर रहा था। कलेजे में सर्दी जम गयी थी।

बातचीत के सिलसिले में पहाड़ी ने कहा कि आप पता नहीं कहाँ से बहते हुए आ रहे थे। पहले सोचा कि आप मृत हैं, पर साँस चलती देखकर मैं आपको यहाँ ले आया। यह आपका ही घर है। यहाँ आप आराम से विश्राम कीजिए।

पहाड़ी की सेवा से भोलानन्दजी स्वस्थ हो गये। उसके अनुनय पर उन्होंने उसे दीक्षा दी। यही पहाड़ी स्वामी भोलानन्द गिरि का प्रथम शिष्य था। उसे अपने साथ लेकर भोलानन्दजी

अपने गुरु के पास आये। गुरुदेव का आश्रम कुरुक्षेत्र के पास पस्ताना में था। सारी बातें सुनने के बाद गुरुदेव ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"मेरे पास जो कुछ था, वह सब तुम्हें दे चुका। अब तुम पूर्ण हो गये हो। मेरा आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ रहेगा। अब आगे की साधना के लिए तुम अन्यत्र कहीं कुटिया स्थापित कर लो। अब तुम्हें मेरी आवश्यकता नहीं है।"

गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य कर भोलानन्दजी हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों में साधना करते हुए हरिद्वार स्थित लालतारा बाग में आये। यह स्थान उन्हें पसन्द आ गया। कुछ दिनों के भीतर भोलानन्द का योगैश्वर्य स्थानीय सन्तों में चर्चा का विषय हो गया। शिष्य और सेवकों की संख्या बढ़ती गयी।

अपने गुरुदेव की तरह आप भी सच्चे साधकों की तलाश में सभी के साथ उग्र व्यवहार करने लगे। शिष्यों से खेती करवाना, ढोर चरवाना, नाली साफ कराना, भंडारे के लिए भोजनादि बनवाने का काम लेते रहे। अपने कार्य में जो सेवक लापरवाही करता, उसे फटकारने के अलावा कभी-कभी मार भी देते थे। जब शिष्य मन में कष्ट अनुभव करते तब पास बुलाकर आदर भी करते थे।

एक बार महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने उनसे अजपा-रहस्य के बारे में प्रश्न किया था। इस बारे में उन्होंने कहा—"मनुष्य की स्वाभाविक श्वासों की संख्या २१६०० है, ऐसा कहा जाता है, इसलिए प्रति श्वास के साथ नाम का घनिष्ठ सम्पर्क है और अजपा-रहस्य के साथ इसका विशेष तात्पर्य देखने में आता है। ऐसा न कर पाने पर भी प्रतिदिन अभ्यास करते हुए, उसे पूरा करना चाहिए। मानव-शरीर धारण करने के बाद से, अर्थात् मातृ-गर्भ से भूमिष्ठ होने के बाद से प्रयाण-काल तक, समग्र जीवन के माध्यम से स्वाभाविक श्वास-प्रश्वासों की क्रिया होती रहती है, इसीको मूल जड़ बनाकर अजपा-साधना अनुष्ठित होती है। इसके लिए कोई विशेष उपकरण, किसी प्रकार की कृत्रिम प्रक्रिया या किसी प्रकार के विशेष अनुशासन की आवश्यकता नहीं होती। श्वास-प्रश्वास जिस प्रकार ज्ञात और अज्ञात रूप में हर वक्त प्रवाहित हो रहा है, श्वास-प्रश्वास के साथ ही सर्वश्रेष्ठ अजपा-क्रिया भी उसी प्रकार जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्तिकाल में, समरूप में जारी रहती है। यह साधना अत्यन्त निगूढ़ तथा इसका विज्ञान भी एक गंभीर रहस्य है। इसका फल अन्य कृत्रिम साधना की तरह नहीं होता। निष्क्रिय परमसत्ता के हृदय को आश्रय बनाकर जो क्रिया विश्व में निरन्तर जारी है, अजपा मनुष्य शरीर में उसकी प्रतिच्छाया मात्र है—यह स्वभाव की साधना है। प्रकृति के बीच व्यष्टि भूमि में एवं समष्टि में, समरूप से इसका प्रभाव पड़ता है। अजपा-विज्ञान को अगर ठीक से जान लिया जाय तो तत्त्वज्ञान का पूर्ण उदय हो जाता है। यह साधना जितनी स्वाभाविक है, इसका फल भी उतना ही स्वाभाविक है अर्थात् स्वभाव में स्थिति की प्राप्ति।

शिशु जब मातृगर्भ से बाहर आता है और जब उसकी नाल काटी जाती है, तभी से उसके शरीर में श्वास-प्रश्वास की क्रिया चालू हो जाती है। मातृगर्भ में रहते समय गर्भधारिणी जननी से अलग शिशु का श्वास-प्रश्वास नहीं रहता। गर्भस्थ शिशु माँ के द्वारा व्यवहृत भोजन से पुष्टि प्राप्त करता है और माँ के श्वास-प्रश्वास से ही उसके शरीर का विकास होता है। लेकिन प्रसव के साथ ही उस पर वैष्णवी माया का आक्रमण होता है और तभी से वह काल-राज्य में निवास करने लगता है। शिशु का प्रथम श्वास जन्म और अन्तिम श्वास-त्याग

मृत्यु के नाम से प्रसिद्ध है। जन्म से मृत्यु तक मध्यावस्था ही उसका जीवन है। इस दृष्टि से मनुष्य का समग्र जीवन ही श्वास-प्रश्वासमय है। प्रकृत प्रस्ताव में श्वास-प्रश्वास काल की लीला है। हम लोग जिसे जीवन कहते हैं, वह काल या मृत्यु की अपनी महिमा का प्रकाश मात्र है।

शिष्य का पुरुषकार या तपस्या ही सर्वदा गुरु-कृपा को आकर्षित करती है। कठोर भाव से बिना तपस्या किये वह कभी प्राप्त नहीं होती। साधनरूप पत्नी के साथ युक्त होकर ज्ञानरूप पुत्र-प्राप्ति शिष्य को ही करनी पड़ेगी। इसके लिए तीव्र तपस्या की जरूरत है। तपस्या की दीवार है—वैराग्य।

गुरु शिष्य को दीक्षा देने के बाद साधन-दान करते हैं। साधनरूप पत्नी का अगर संग नहीं किया, कठोर तपस्या में व्रती नहीं हुए तो मोक्षरूप पुत्र की प्राप्ति से वंचित रहना पड़ेगा। इसके लिए गुरु जिम्मेदार नहीं हैं, बल्कि इसके लिए शिष्य ही जिम्मेदार होगा।"

इस कथन से तप-साधना के साथ-साथ गुरु-शिष्य के सम्पर्क पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। यह नियम केवल उनके लिए है जो शिष्य बनकर साधना के क्षेत्र में प्रगति करना चाहते हैं। भक्तों के लिए बाबा कृपालु रहते हैं। आज भी शक्तिधर सन्तों का अभाव नहीं है, पर उन्हें खोजना कठिन है।

प्रसिद्ध गणितज्ञ सोमेशचन्द्र बसु की पत्नी की मृत्यु हो गयी। वे अपनी पत्नी को बहुत चाहते थे। उसके अभाव में उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने निश्चय किया कि अब वे अपना सारा समय भजन-पूजन में व्यतीत करेंगे। दीक्षा लेने के लिए नाना प्रकार के संतों के पास गये। कहीं उनकी इच्छा पूर्ण नहीं हुई।

उनकी शर्त यह थी कि वे उस संत से दीक्षा लेंगे जो उनकी मृत पत्नी के साथ दोनों को ही दीक्षा दे सकेंगे। इस शर्त को सुनते ही संत लोग भड़क जाते थे। मृता पत्नी के साथ दीक्षा कैसे दी जा सकती है? जो मर गया वह तो पंचभूत में विलीन हो गया। हम कोई ईश्वर नहीं हैं जो मृत को जीवित बना सकें।

इधर सोमेशचन्द्र अपनी जिद पर अटल रहे। ऐसे शक्तिधर सन्त की तलाश में चारों ओर चक्कर काटते रहे। अन्त में भोलानन्दजी से मुलाकात हुई। यह सन् १९१४ की बात है।

भोलानन्दजी ने कहा— "घबराओ मत, तुम्हारी कामना पूरी होगी।"

इतना सुनते ही सोमेशचन्द्र आनन्द से गद्‌गद हो उठे। आज ईश्वर की कृपा से वास्तविक सद्‌गुरु मिले। उन्होंने शंका प्रकट की— "क्या मेरे साथ मेरी पत्नी को भी दीक्षा देंगे?"

हँसते हुए बाबा भोलानन्द ने कहा— "तुम्हारी यही इच्छा है न? तुम्हारे साथ-साथ उसे भी दीक्षा दूँगा।"

पुनः शंकित हृदय ने प्रश्न किया— "मुझे कैसे मालूम होगा कि मेरे साथ उसे भी दीक्षा दी गयी? क्या वह यहाँ सशरीर उपस्थित होगी?"

भोलानन्द ने कहा— "अवश्य। वह तुम्हारे पास आकर बैठेगी। तुम उसे प्रत्यक्ष रूप से देख सकोगे। लेकिन इस बात की प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी कि तुम उसे स्पर्श नहीं करोगे।"

सोमेशचन्द्र इस बात पर राजी हो गये।

शुभ दिन देखकर आयोजन किया गया। तीन आसन बिछाये गये। एक गुरु के लिए और दो उनके सामने सोमेशचन्द्र तथा उनकी मृत पत्नी के लिए। सोमेशचन्द्र अपने आसन पर बैठ गये। सामने स्वामी भोलानन्द बैठे। दीक्षा-कार्य प्रारंभ हुआ।

सहसा बायीं ओर निगाह जाते ही सोमेशचन्द्र ने देखा— उनकी पत्नी बगल में विराजमान है। वही शक्ल, वही साड़ी, वही मुस्कान। दोनों ने एक-दूसरे को प्रेम से देखा। सोमेशचन्द्र के कलेजे का खून उछलकर मस्तिष्क में आ गया। तभी गुरुजी की चेतावनी कानों में गूँज उठी। अपने को संयत कर वे बैठे रहे।

भोलानन्दजी ने कान में बीज-मंत्र दिया। इसके बाद पत्नी के कान में दिया। दोनों शिष्यों ने गुरु को प्रणाम किया और तभी सोमेशचन्द्र की पत्नी अन्तर्धान हो गयीं।

बहुत दिनों की एक अभिलाषा को आज साकार होते देख सोमेशचन्द्र आनन्द और आदर से गद्‌गद हो उठे। भोलानन्दजी के चरणों पर मस्तक रखकर हर्ष के आँसू बहाने लगे।

इसी प्रकार असम प्रान्त के श्रीहट्ट जिले में अमरनाथ राय नामक एक भक्त की भोलानन्द के प्रति अपार श्रद्धा थी। उनका एकमात्र पुत्र बीमार हो गया। ज्यों-ज्यों इलाज होता गया, त्यों-त्यों मर्ज बढ़ता गया। पति-पत्नी तथा परिवार के सभी सदस्य इस संकट से बुरी तरह घबरा उठे।

अमरनाथ राय को अचानक अपने गुरुदेव की याद आयी। उन्होंने तुरत पोस्ट आफिस जाकर हरिद्वार के पते पर तार भेजा— "गुरुजी, मेरे बच्चे को बचाइये। अब आप ही का भरोसा है।"

उधर से पत्र द्वारा जवाब आया— "यथासंभव नाम-जप करो और दान दो।"

पत्र में केवल इतना ही लिखा था। उसी दिन रात को सहसा उनके लड़के ने पिता के गले में हाथ डालकर कहा— "पिताजी, मैं बिलकुल अच्छा हो गया।"

अभी दोपहर को जो लड़का बेहोश था, पुकारने पर आवाज नहीं दे रहा था, वह इस तरह आश्वासन दे रहा है! कहीं प्रलाप तो नहीं कर रहा है? अन्तिम समय जानकर वे रो पड़े।

लड़के ने कहा— "आप रो क्यों रहे हैं? सचमुच अच्छा हो गया हूँ। अभी कुछ देर पहले गुरुजी महाराज आये थे। उन्होंने अपने कमण्डल से मुझ पर पानी छिड़का और मैं अच्छा हो गया।"

"गुरुजी महाराज आये थे? कब, कहाँ?" अब अमरनाथ राय चौंके।

लड़के ने कहा— "अभी-अभी थोड़ी देर पहले आये थे। उनके पीछे कई और बाबा खड़े थे।"

उस वक्त लड़के के पास जितने लोग खड़े थे, उन सभी की आँखों में अविश्वास की झलक थी। पिता ने पूछा— "अच्छा, यह बताओ, गुरु महाराज की शक्ल कैसी थी?"

लड़के ने कहा— "लम्बा-चौड़ा शरीर, सिर पर पगड़ी, पैरों में खड़ाऊँ, हाथ में कमण्डल और उनके शरीर से एक प्रकार की ज्योति निकल रही थी।"

अमरनाथ राय ने मन में अन्दाज लगाया कि लड़का वर्णन तो सही कर रहा है। तभी

लड़के ने कहा— "तुम लोगों को विश्वास नहीं हो रहा है ? गुरु महाराज ने अपने कमण्डल से मुझ पर पानी छिड़का था। देखो, अभी तक मुँह, हाथ और बदन पर पानी है।"

इस बात का निरीक्षण किया गया तो सही प्रमाणित हुआ। अमरनाथ राय ने गुरुदेव को स्मरण करते हुए मन ही मन प्रणाम किया।

कुछ दिनों बाद हरिद्वार में अमरनाथ राय का एक पत्र लड़के के बारे में पहुँचा तो भोलानन्दजी ने अट्टहास करते हुए कहा— "अरे सुनो मेरे शिष्यो, श्रीहट्ट से एक शिष्य अमरनाथ का एक पत्र आया है कि मैं उसके घर जाकर बीमार लड़के को ठीक कर आया हूँ। तुम लोग तो जानते ही हो कि मैं यहाँ से इधर पिछले कई महीनों से कहीं नहीं गया। वास्तव में यह भगवान् की लीला है। अगर उन्हें सच्चे मन से स्मरण किया जाय तो उनकी कृपा अवश्य होती है। यही वजह है कि मैं तुम लोगों से बराबर कहता हूँ—सच्ची लगन के साथ उस परम ब्रह्म को स्मरण करते रहो। न जाने कितनी योनियों में जन्म लेने के बाद मानवतन प्राप्त हुआ है। जीवन क्षणभंगुर है। परमात्मा को निशि-दिन स्मरण करते रहो।"

श्री अचलनाथ मित्र कलकत्ते के प्रसिद्ध एटर्नी हैं और भोलानन्दजी के भक्त शिष्य हैं। उनकी इच्छा थी कि बाबा एक बार पूजा (दशहरा-पर्व) के अवसर पर उनके यहाँ अतिथि बनें। भक्त की इच्छा-पूर्ति करने गुरुजी आ गये।

कलकत्ता तथा आसपास के भक्तों तथा दर्शनार्थियों की भीड़ उनके यहाँ लग गयी। भोलानन्दजी नित्य उपदेश देते रहे। दशहरे के दिन उन्हें हरिद्वार वापस जाना था। गाड़ी में स्थान सुरक्षित हो गया था। सारा सामान ठीकठाक हो गया।

ठीक इसी समय भोलानन्दजी के एक अन्य शिष्य मोहिनीमोहन चक्रवर्ती वहाँ आये। उनकी इच्छा थी कि बाबा एक बार उनके घर चरण-रज दें तो असीम कृपा होगी। वे यहाँ नित्य आते थे और अपना निवेदन जताना चाहते थे, पर संकोचवश कह नहीं पाते थे। आज गुरुदेव को वापस जाते देख मन ही मन रो पड़े, पर अपनी इच्छा व्यक्त नहीं कर सके।

गुरुदेव धीरे-धीरे नीचे उतरने लगे और इधर चक्रवर्ती महाशय मन ही मन कातर स्वर में प्रार्थना करने लगे—"गुरुदेव, आप तो मेरे मन की बात जानते हैं, फिर यह उपेक्षा क्यों ? क्या मेरी कामना पूरी नहीं करेंगे ? क्या मैं इतना अधम हूँ ?"

देखते ही देखते गुरुदेव रवाना हो गये। चक्रवर्ती की हसरत मन में रह गयी। वे चुपचाप अपने घर वापस आ गये। घर पर आते ही पत्नी ने पूछा— "अब तक कहाँ मटरगश्ती करते रहे ? गुरुदेव यहाँ आकर चले गये। तुमसे मुलाकात भी नहीं हुई।"

"क्या ?" चक्रवर्ती महाशय चीख उठे— "गुरुदेव यहाँ आये थे ? कब ?"

"अभी थोड़ी देर पहले। उन्होंने हमें आशीर्वाद दिया। इसके बाद चुपचाप रवाना हो गये। अधिक देर ठहरे नहीं। शायद वे कहीं जाने की तैयारी में थे।"

चक्रवर्ती बाबू मानो इन बातों को चुपचाप निगल रहे थे। अन्तर्यामी गुरुदेव की आखिर कृपा हो गयी। गुरुदेव की इस कृपा पर उनकी आँखें छलछला आयीं।

सन् १८६३ ई० की घटना है। प्रयाग में कुंभ-मेला लगा था। दसनामी संतों के अखाड़े-आये थे। दूर-दूर तक तम्बुओं का जाल बिछ गया था। सहसा इसी बीच प्रभुपाद विजय-कृष्ण गोस्वामी को लेकर संन्यासियों में झगड़ा हो गया। दसनामी संन्यासी अपने क्षेत्र में उन्हें

तम्बू लगाने देना नहीं चाहते थे, क्योंकि वे वास्तव में गृही संन्यासी थे। जिसकी पत्नी हो, वह संन्यासी कैसा ?

समाचार भोलानन्दजी के पास आया। आसन्न संकट को दूर करने के लिए वे तुरत घटनास्थल पर आये और कहा— "आप लोग क्या तमाशा कर रहे हैं ? गोस्वामीजी असाधारण संन्यासी हैं। भले ही वे गृही हैं तो क्या हुआ ? आपमें से अधिकांश लोग इनके स्तर तक नहीं पहुँच सके हैं। अगर यह चाहें तो अभी यहाँ ताण्डव-नृत्य हो सकता है।"

भोलानन्द गिरि कितने महान् योगी हैं, यह बात संन्यासी-समाज से छिपी नहीं थी। भोलानन्दजी स्वयं भी दसनामी संन्यासियों में थे। भोलानन्दजी को हस्तक्षेप करते देख उग्रवादी संन्यासियों का क्रोध शान्त हो गया।

इसके बाद वे गोस्वामीजी की छोली में जाकर बोले— "मेरे आशुतोष, नाराज मत होना। ये सब बालक हैं। इन्हें क्षमा कर देना।"

गोस्वामीजी ने मुस्कराकर कहा— "आपका आदेश पाने के पूर्व ही मैंने यह कार्य कर दिया है। आइये, विराजिये।"

'प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी'[१] ने बाद में अपने भक्तों से कहा था—"हमारे भोलानन्द गिरिजी महाराज इस युग के असाधारण योगी हैं। अगर वे चाहें तो इस संसार को नष्ट कर सकते हैं।"

नाथ-सम्प्रदाय के महान् योगी गंभीरनाथ को भी वे बहुत चाहते थे। कुंभ-मेला के अवसर पर उन्होंने कहा—"मेरे तम्बू में गोस्वामीजी तथा बाबा गंभीरनाथ के भक्तों के बाद मेरे शिष्यों को स्थान मिलेगा। ये दोनों संत इस युग के युग-पुरुष हैं। सामान्य लोग इन्हें नहीं जानते।"

भोलानन्दजी के एक भक्त शिकार के शौकीन थे। वे अपने मित्रों के साथ सुन्दरवन में शिकार खेलने गये। सुन्दरवन भारत का प्रसिद्ध जंगल तथा खूँखार जानवरों का आरामगाह है। इधर-उधर शिकार करते समय भक्त महाशय मित्रों की टोली से बिछुड़ गये तभी उनका एक बाघ से सामना हुआ। बाघ को देखते ही भक्त महाशय के होश उड़ गये। बन्दूक के बदले हाथ में एक छोटा भाला था। इस छोटे हथियार से कब तक लड़ते। लेकिन भक्त साहसी था। उस हथियार को लेकर वह लड़ने के लिए तैयार हो गया। आखिर में लहूलुहान होकर वे गिर पड़े। उन्हें यह ज्ञात हो गया कि अब मौत निश्चित है। अंतिम काल में भगवान् की याद आती है। सहसा भक्त को अपने गुरुदेव की याद आ गयी। 'जय गुरुदेव' कहते हुए वे एक ओर लुढ़क गये।

ठीक उसी समय तेज आवाज आयी—"हिम्मत मत हारो। उठो और एक बार पूरी ताकत से भाला बाघ की ओर फेंको।"

इस आकाशवाणी को सुनते ही न जाने कहाँ से उनमें शक्ति उत्पन्न हो गयी। पास ही पड़े भाले को उठाकर पूरी ताकत से बाघ की ओर फेंका। भक्त को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि कई बार भाला मारने पर भी बाघ की हानि नहीं हुई, पर इस बार कमजोर हाथों ने कमाल कर दिखाया। बाघ वहीं ढेर हो गया था।

---

१. देखिये 'भारत के महान् योगी' प्रथम भाग।

भक्त को समझते देर नहीं लगी कि गुरुदेव की कृपा से यह संभव हुआ, वरना आज मौत निश्चित थी।

बाबा भोलानन्द कभी-कभी मौज में रहने पर अपनी साधना, अपने गुरुदेव के बारे में, शिष्यों को कहानियाँ सुनाया करते थे। कभी-कभी विचित्र अनुभवों की भी चर्चा करते थे।

बातचीत के सिलसिले में एक दिन उन्होंने बम्बई के एक सेठ के बारे में अत्यन्त मनोरंजक कहानी सुनायी। एक बार वे तीर्थों का दर्शन करते हुए बम्बई शहर में एक धनी सेठ के यहाँ ठहरे। सेठजी के परिवार में पति-पत्नी और एकमात्र लड़की थी। स्वामी भोलानन्द सारस्वत ब्राह्मण तथा तपस्वी जीवन व्यतीत करने के कारण अत्यन्त क्रान्तियुक्त पुरुष लगते थे। सेठजी अपनी विशाल सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए पुत्र की कामना करते रहे, पर उनकी यह इच्छा पूरी नहीं हुई।

भोलानन्दजी के रूप-गुण पर मुग्ध होकर सेठजी ने कहा— "स्वामीजी, क्या आप मेरा एक अनुरोध स्वीकार करेंगे ?"

"क्या ?"

"हम दोनों की इच्छा है कि आप स्थायी रूप से हमारे बन जायँ। एक लड़की के अलावा हमारी अन्य कोई सन्तान नहीं है। आप इसे ग्रहण कर मेरी जायदाद का भार सम्हालें।"

भोलानन्दजी को बड़ा विस्मय हुआ। व्यापारी को धन की लिप्सा नहीं। आखिर यह कैसे संभव हो रहा है ? क्षणभर में रहस्य समझ में आ गया। मुस्कराते हुए बाबा ने पूछा— "आप यह कृपा क्यों कर रहे हैं ? इतनी सम्पत्ति, विशाल भवन, इतनी सुविधाएँ, सुख को क्यों त्याग रहे हैं ? क्या आपको इनसे घृणा हो गयी या यह सब भारस्वरूप प्रतीत हो रहा है ?"

सेठ ने कहा— "आपका कहना ठीक है। लेकिन सब कुछ रहते हुए हमें शान्ति नहीं मिल रही है। दिन-रात नाना प्रकार की चिन्ताओं से परेशान रहते हैं। हम इनसे मुक्त होकर तीर्थ-भ्रमण और भजन-पूजन में लगना चाहते हैं।"

भोलानन्दजी ने कहा— "अब आप ही सोचिये कि जिस जंजाल से मुक्त होना चाहते हैं, उसे दूसरे के गले क्यों मढ़ना चाहते हैं ? अगर मुझे यही प्रिय होता तो शान्ति की तलाश में यह चोला क्यों धारण करता ? मैं एक संन्यासी हूँ, गृही नहीं। मुझे आप इसके लिए क्षमा करें।"

सेठवाली घटना से भोलानन्दजी को एक नयी दिशा मिली। वे गृहस्थों के घर से दूर हरिद्वार चले आये। इसके बाद यहीं उन्होंने अपना स्थायी आश्रम स्थापित किया। अब तक उनके गुरु गुलाबगिरि का तिरोधान हो गया था। आश्रम में साधकों की संख्या बढ़ती रही। लेकिन बाबा भोलानन्द के आश्रम में शिष्यों तथा भक्तों को एक परेशानी का सामना करना पड़ता था।

आश्रम में बन्दर भयंकर उत्पात करते थे। रोटी सेंककर रखिये, पलक झपकते ही गायब। कपड़े सूखने के लिए डालिए, लेकर चम्पत। गठरी खोलकर आटा, चावल, दाल निकाल ले जाते थे। यही स्थिति अयोध्या, मथुरा, गोकुल आदि स्थानों में थी। बन्दरों के

कारण नाक में दम हो जाने पर एक दिन कई शिष्यों ने इस बात की शिकायत गुरुजी से की।

गुरुजी का सख्त आदेश था कि आश्रम में स्थित किसी भी पशु-पक्षी को न मारा जाय। भक्तों की शिकायत सुनकर एक दिन गुरु भोलानन्दजी बाग में आये और तेज स्वर में कहा— "बन्दरो, तुम सब जो जहाँ है, वहाँ से सामने आकर बैठो।"

आश्रम के चारों ओर जितने बन्दर थे, सभी आकर भोलानन्दजी के सामने ऐसे बैठे जैसे उनका भाषण सुनने आये हों। शिष्यों और भक्तों के लिए यह अपूर्व दृश्य था।

स्वामी भोलानन्द ने कहा— "तुम लोगों के उपद्रव के कारण मेरे शिष्यों और भक्तों को बहुत कष्ट हो रहा है। मेरे आदेश के कारण तुम लोगों को कोई मारता नहीं। इसका यह अर्थ नहीं कि तुम लोगों को तंग करते रहो। आश्रम में जितने फल लगे हैं, उन्हें खाने का अधिकार तुम्हें है। भक्त और शिष्य जो कुछ खुशी से दें, उसे भी तुम खा सकते हो। मगर आइन्दा कभी किसीके कपड़े फाड़ना नहीं, किसीकी गठरी खोलकर सामान निकालना नहीं। समझे ?"

सामने एक बूढ़ा बन्दर बैठा था, उसने सिर हिलाया जैसे बाबा का आदेश समझ गया हो, शेष बन्दर चुपचाप शान्त थे।

बाबा भोलानन्द ने कहा— "जिस प्रकार तुम्हें फल खाने का अधिकार है, उसी प्रकार तुम्हें मुँह चिढ़ाने का अधिकार है। हम फलों को नुकसान होते देख मारने की धमकी देंगे, भगायेंगे और डाटेंगे। यह अधिकार हमें रहेगा। बोलो, मंजूर है ?"

बूढ़े बन्दर ने सिर हिलाकर अपनी सम्मति दी। दूसरे दिन से बन्दरों का उत्पात बन्द हो गया। ऐसे महान् सन्त थे—बाबा भोलानन्द गिरिं। आपके बारे में प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी का कहना था— "आप उच्चकोटि के योगी हैं। पृथ्वी को ध्वंस करने की क्षमता रखते हैं।"

८ मई, सन् १६२८ ई० को हरिद्वार के आश्रम में आपका तिरोधान हो गया।

●
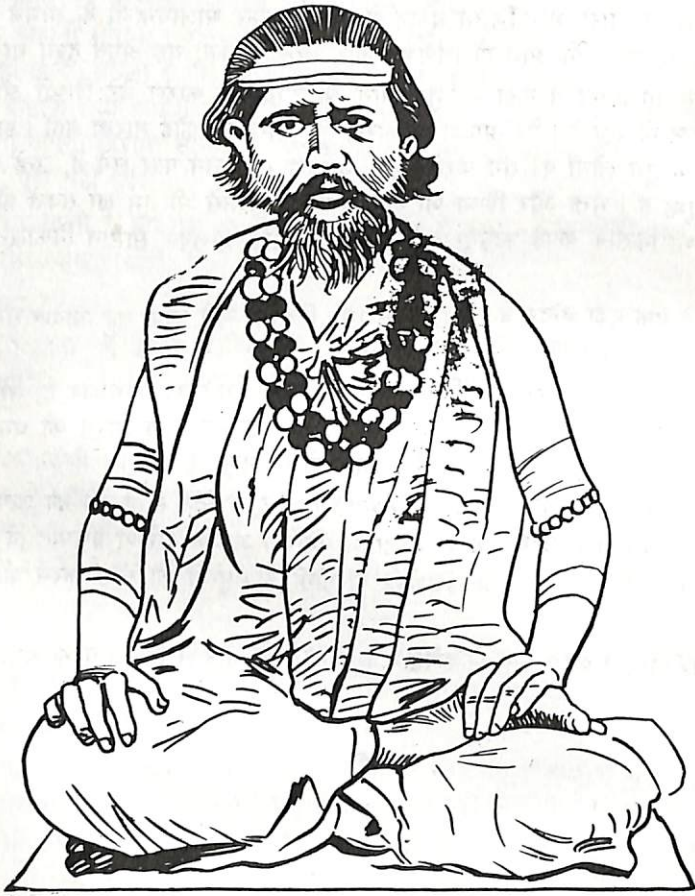
तंत्राचार्य शिवचन्द्र विद्यार्णव

तंत्राचार्य शिवचन्द्र विद्यार्णव

नदिया जिले के कुमारखाली गाँव में भट्टाचार्य-परिवार कई पुश्तों से निवास करता आ रहा है। कुमारीखाली इस परिवार का आदि निवास-स्थान नहीं है। यह परिवार फरीदपुर जिले के महीशाला गाँव से आकर बस गया था। वंश-परम्परा से इस परिवार के सदस्य तंत्र की चर्चा करते आये हैं। नेपाल, चीन और तिब्बत से प्राप्त तंत्र-साहित्य की अमूल्य पाण्डुलिपियाँ इस परिवार में सुरक्षित हैं। परिवार में जिसे इस साहित्य से रुचि होती है, वही इन ग्रंथों का अध्ययन करता है।

इस वंश के निमानन्द अलौकिक शक्ति-सम्पन्न साधक थे। आपके बारे में अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि होमकुण्ड प्रज्वलित कर आपने आत्माहुति दी थी। आपके पौत्र पं० कृष्णसुन्दर तर्कालंकार केवल विद्वान् ही नहीं थे, बल्कि तंत्र-साधना में भी सिद्ध हो गये थे। आपके पुत्र चन्द्रकुमार तर्कवागीश संस्कृत-साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् थे। गाँव में आयोजित पूजा-अर्चना में आप सक्रिय रूप से भाग लेते थे। आपकी पत्नी श्रीमती चन्द्रमयी देवी थीं।

कुछ दिनों बाद सन् १८६० ई० के मई माह में आपके यहाँ पुत्र का जन्म हुआ। पंचानन भगवान् के निकट आराधना करने के कारण प्रथम पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई थी, इसलिए माता ने इस बालक का नाम रखा—पंचानन भट्टाचार्य। आगे चलकर पितामह ने बालक का नया नामकरण किया—शिवचन्द्र। बाद में लोग पंचानन नाम भूलकर बालक को शिवचन्द्र के नाम से बुलाते रहे।

धीरे-धीरे बालक बड़ा होता गया। गाँव में हरिनाथ[१] की एक पाठशाला थी जहाँ गाँव के अधिकांश बालक अध्ययन करते थे। इस पाठशाला के अधिकांश विद्यार्थी आगे चलकर बंगला-साहित्य के प्रसिद्ध कवि, पत्रकार, कथाकार, राजनेता तथा तांत्रिक हुए हैं।

बंगाल के प्रसिद्ध पत्रकार तथा कथाकार श्री जलधर सेन इसी पाठशाला के छात्र और शिवचन्द्र के सहपाठी थे। अपने बचपन के संस्मरण में आपने लिखा है—

"उन दिनों की पद्धति के अनुसार नाना प्रकार के अनुष्ठान करने के बाद पुरोहित महाशय ने हमसे शिक्षा का श्रीगणेश[२] नहीं कराया था। न मेरा और न शिवचन्द्र का। यद्यपि सारा अनुष्ठान हुआ था, पर श्रीगणेश कराया था—हमारे परम आराध्य कांगाल हरिनाथ ने।

१. आप एक महान् संत, पत्रकार, अध्यापक थे। कांगाल हरिनाथ के नाम से आगे चलकर प्रसिद्ध हुए थे।

२. बंगाल में वसन्त पंचमी के दिन या सरस्वती-पूजा के अवसर पर पाठशाला में पढ़ने के लिए पहले दिन जो बटुक आते हैं, उनका हाथ पकड़कर खड़िया से श्री गणेशाय नमः लिखाया जाता है।

उन्होंने दो-तीन माह आगे-पीछे हम दोनों को पढ़ाना शुरू किया था। जब हमारी उम्र चार साल की हुई तब मैं तथा शिवचन्द्र "बंगला स्कूल" में पढ़ने गये। हम दोनों में से कोई भी गुरु महाशय की पाठशाला में पढ़ने नहीं गया था।"

शिवचन्द्र का परिवार कट्टरपंथी था, इसलिए घर के लोग प्रत्येक विषय में धार्मिक-संस्कारों का कड़ाई से पालन करते थे। अंग्रेजी भाषा को म्लेच्छ भाषा समझते थे। घर के सभी पुरुष देवभाषा संस्कृत का अध्ययन करते रहे। संस्कृत भाषा के प्रति इस परिवार के पुरुषों की अगाध श्रद्धा थी। इसका उदाहरण शिवचन्द्र के बचपन की एक घटना से प्राप्त होता है।

बचपन की इस घटना के बारे में श्री जलधर सेन ने लिखा है—"हम लोगों के चन्द्र काका यानी शिवचन्द्र के पिता बड़े तेजस्वी पुरुष थे। बचपन में शिवचन्द्र को कहानियाँ पढ़ने का शौक हो गया था।

एक दिन चन्द्र काका ने पूछा—"कौन सी पुस्तक पढ़ रहा है?"

शिवचन्द्र ने कहा—"डुबाल की कहानियाँ।"

"डुबाल की कहानियाँ? ला, देखूँ तो।" कहने के साथ ही उन्होंने शिवचन्द्र के हाथ से पुस्तक झटक ली। कई मिनट पढ़ने के बाद पुस्तक को दूर फेंकते हुए बोले—"आजकल यही सब किताबें पढ़ते हो? क्या हमारे देश में महापुरुषों की कमी है जो डुबाल की कहानियाँ पढ़ते हो? कल से तुम्हें स्कूल जाने की आवश्यकता नहीं है। डुबाल की कहानियाँ हमारे देश को एक दिन डुबो देंगी।"

तेजस्वी ब्राह्मण का आदेश पत्थर की लकीर बन गयी। शिवचन्द्र का इंगलिश स्कूल जाना बन्द हो गया। इसके बाद शिवचन्द्रजी को नवद्वीप की एक चटशाला में पढ़ने के लिए भेजा गया जहाँ उनका निर्माण शास्त्रीय ढंग से हुआ।

अल्प समय के भीतर वे व्याकरण, अलंकार, काव्य आदि विषयों में पारंगत हो गये। कुछ दिनों के भीतर इस बालक की ख्याति चारों ओर फैल गयी। नवद्वीप स्थित संस्कृत कालेज के अध्यापक श्री तारिणीचरण चटर्जी इस प्रतिभावान् बालक की मेधाशक्ति से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने अपनी ओर से कलकत्ता के संस्कृत कालेज में संस्कृत के साथ-साथ अंग्रेजी पढ़ने के लिए इन्तजाम किया।

शिवचन्द्रजी उन दिनों नवद्वीप में अपने पिता के मित्र श्रीनाथ शिरोमणि के यहाँ रहते थे। शिरोमणिजी को तारिणी चटर्जी का प्रस्ताव पसन्द आया। उन्होंने इस समाचार को शिवचन्द्र के पितामह के पास पत्र लिखकर सूचित किया। उन्हें विश्वास था कि यह प्रस्ताव वे स्वीकार कर लेंगे।

इस प्रस्ताव को पढ़कर शिवचन्द्र के पितामह ने लिखा—"वत्स, तुम स्वर्गीय रामनाथ तर्कसिद्धान्त के पुत्र, देवी तर्कालंकार के प्रपौत्र और नवद्वीप के स्मार्त प्रधान हो। ऐसी स्थिति में मेरे पौत्र को अंग्रेजी पढ़ाने के लिए कैसे राजी हुए, यह समझ नहीं पाया। वही हमारा एकमात्र पौत्र है, हमारे पूर्वपुरुषों को पानी-पिण्डा वही देगा, वंश का सारा कार्य, देव-सेवा आदि सब कुछ इसी लड़के पर निर्भर है, उसी लड़के को तुमने अंग्रेजी पढ़ाने का प्रस्ताव कैसे भेजा, यह समझ नहीं पाया। लड़के को अंग्रेजी पढ़ाकर स्वधर्म नष्ट करना, पूर्वपुरुषों तथा अपना पिण्ड एवं वंश का धर्म-कर्म नष्ट करने की प्रवृत्ति मुझमें नहीं है। श्रीमान् का कलकत्ता

रहना या अंग्रेजी पढ़ना, किसी भी हालत में नहीं हो सकता।"

इस बारे में स्वयं शिवचन्द्र ने लिखा है—"तारिणी बाबू अंग्रेजी पढ़ने के लिए मुझे कलकत्ता ले जाना चाहते थे और एक अर्से तक प्रयत्न करते रहे। पर इसका कोई फल नहीं निकला, क्योंकि पितामह की आज्ञा के विरुद्ध कोई भी कार्य, प्रवृत्ति या उपादान विधाता ने मेरे शरीर को नहीं दिया है अतएव मैं संस्कृत कालेज में अंग्रेजी पढ़ने नहीं जा सका।"

जो लोग प्रतिभावान् होते हैं, वे बचपन से ही अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय देते हैं। ऐसे मेधा-शक्तिवाले लोगों का भाग्य भी साथ देता है। प्राचीनकाल में संस्कृत के विद्यार्थियों में प्रतिस्पर्द्धा करने के लिए प्रतियोगिता का आयोजन होता था। इसी प्रकार की एक प्रतियोगिता में शिवचन्द्र को मजबूरन भाग लेना पड़ा था। इस प्रतियोगिता में भाग लेने के कारण संपूर्ण संस्कृत टोले में उनकी ख्याति फैल गयी। इस बारे में उन्होंने लिखा है—"नवद्वीप में हर भट्टाचार्य महाशय का वार्षिक श्राद्ध तत्कालीन पंडित-समाज के लिए एक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम था। यह अनुष्ठान जाड़े के मौसम में होता था। पौष या माघ मास में। इस वक्त ठीक से स्मरण नहीं है। उक्त श्राद्ध के अवसर पर केवल नवद्वीप ही नहीं, बल्कि आसपास के गाँवों से अध्यापक तथा छात्र-समाज को भी आमंत्रित किया जाता था। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि इस अवसर के लिए व्याकरण, साहित्य, स्मृति और न्यायशास्त्र के टोलों में महीनों पहले से छात्रों का दल तर्क-विचार के लिए शान चढ़ाते थे। मानो यह श्राद्ध-अनुष्ठान सभी के लिए वार्षिक परीक्षा का अवसर होता था। कौन किसे पराजित करके विजयश्री प्राप्त कर सकता है, इस बात की होड़ मच जाती थी।

मुझे इस प्रतियोगिता से कोई परेशानी नहीं थी। मैं ठहरा व्याकरण का छात्र—मुझे इस प्रतियोगिता से क्या लेना-देना है। अपने कई सहपाठियों के साथ मैं वहाँ गया। मुझे भी आमंत्रित किया गया था। वहाँ जाने पर देखा—विशाल सभा के प्रांगण में कहीं न्याय, कहीं स्मृति, कहीं साहित्य, कहीं व्याकरण के छात्रों की टोलियों में तर्क-वितर्क के दावानल जल रहे हैं। लगभग सात-आठ सौ छात्र और दो सौ अध्यापक—नाना प्रकार के शास्त्रों की भाषा पर अपने विचार प्रकट कर रहे थे। संपूर्ण वातावरण कोलाहल से मुखरित था। केवल मध्यस्थ अध्यापकगण मौन धारण किये हुए थे। इनके अलावा चारों ओर पाँच सौ से अधिक शिक्षित विद्वान् तथा संभ्रांत ब्राह्मण और दर्शक उपस्थित थे जो इस समारोह को देखने के लिए प्रति-वर्ष आते हैं।

अभी तक धुरंधर टोलों के छात्र नहीं आये थे। इन टोलों की संख्या सौ से ऊपर थी और सभी मैथिल थे। कविता का पादपूरण मैं कर सकता हूँ, इस बात की ख्याति थी। सभास्थल में पहुँचते ही सभा के कार्यकर्ता मुझे बड़े आदर के साथ वहाँ ले आये जहाँ तत्कालीन अध्यापक-समाज के शीर्षस्थानीय हरमोहन तर्कचूड़ामणि, प्रसन्नकुमार न्यायरत्न, भुवनमोहन विद्यारत्न आदि अध्यापक उपस्थित थे। मुझे यहाँ लाकर बैठाया गया। मेरे स्थान-ग्रहण करते ही समस्या-पूर्ति की तरंग उत्पन्न हो गयी।

उपस्थित अध्यापकगण मुझसे एक-एक करके प्रश्न पूछने लगे और मैं उनके उत्तर देता गया। इस तमाशे को देखने के लिए प्रसिद्ध इतिहास-लेखक तथा संस्कृत कालेज के भूतपूर्व अध्यापक तारिणीचरण चटर्जी, आनन्दबाबू तथा अन्य कई श्रद्धेय अध्यापक मुझे घेरकर खड़े हो गये। प्रश्नों के उत्तर देते हुए सहसा मैंने देखा कि धुरंधर टोले के छात्र इधर आ रहे हैं।

यह एक अपूर्व दृश्य था। सभी छात्र भारतीय वस्त्रों से सुसज्जित थे। गले में रुद्राक्ष की माला, भाल पर रक्तचन्दन का तिलक, मस्तक की शिखा में जवाकुसुम के फूल बाँधे हुए थे। सभी लम्बे-तड़ंगे, कृष्णवर्ण के थे और तेजी से सभास्थल की ओर आ रहे थे। वास्तव में यह एक अपूर्व दृश्य था। सभा में आकर वे लोग मण्डलाकार रूप में बैठ गये।

उधर विचार का प्रयत्न हो रहा था, पर इधर समस्या-पूर्ति की घटा तथा मेरी ख्याति के गौरव को सुनकर उन्हें असह्य हो रहा था। उन लोगों ने प्रश्न-विचार की दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए हरमोहन तर्कचूड़ामणि से कहा—"हम लोग इनसे प्रश्न पूछना चाहते हैं और इनके ज्ञान की परीक्षा लेना चाहते हैं। अगर हमारी प्रदत्त समस्या की पूर्ति ये कर देंगे तो इन्हें कवि के रूप में हम स्वीकार कर लेंगे, अन्यथा नहीं।"

अब तक मैं समस्या-पूर्ति में बराबर निडर होकर भाग लेता रहा। कभी भय-विभीषिका से आतंकित नहीं हुआ था। मगर आज मैथिल छात्रों की भीम भैरव मूर्ति देखकर मैं सहम गया। न्यायशास्त्र में सभी पारंगत थे। वे लोग क्षिप्र गति से मुट्ठी बाँधे मेरे पास आये।

बड़े दंभ के साथ उन्होंने प्रश्न किया--"सूच्यग्रे षट्कूपं तदुपरि नगरी, तत्र गंगाप्रवाहः।"

अर्थात् एक सूई के अग्रभाग में छः कूप हैं, उसके ऊपर एक नगरी है जिसमें गंगा का प्रवाह है।

इस समस्या को सुनते ही मेरी आँखें विस्मय से बड़ी-बड़ी हो गयीं। आज से पहले समस्या-पूर्ति के लिए कभी मैंने अधिक समय नहीं लगाया था। न कभी चिन्तित हुआ था। प्रश्न सुनने के साथ ही मन में जो उत्तर आ जाता था, तुरत दे देता था। मगर आज के इस प्रश्न को सुनकर सहसा उत्तर नहीं दे सका। भय से संकुचित हो गया।

थोड़ी देर चिन्तन करने के बाद मैं उत्तर देने को तैयार हुआ। यह देखकर पाण्डित्य एवं चातुर्यचूड़ामणि हरमोहन तर्कचूड़ामणि महाशय ने इशारे से मुझे सावधान करते हुए कहा—"जबानी उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है। कागज पर कलम से लिखना होगा।"

इतना कहकर उन्होंने कागज-कलम मेरी ओर बढ़ाया। एक बार ऊपर की ओर देखकर मैंने माता जगदम्बा को स्मरण किया। इसके बाद समस्या की पूर्ति की। मेरा लिखना समाप्त होते ही चूड़ामणि महाशय ने उस कागज को ले लिया और मन ही मन पढ़ने के बाद उसे अपनी मुट्ठी में बन्द कर लिया।

वहाँ उपस्थित सभी संभ्रांत अध्यापकों को बुलाकर उन्होंने कहा—"आप लोगों को यहाँ मध्यस्थ बनना पड़ेगा। आप लोग इस बात से अच्छी तरह परिचित हैं कि मैथिल-समाज से नवद्वीप-समाज की विद्या में बराबर स्पर्द्धा होती आ रही है। इसीलिए मेरा कहना है कि आज मैथिल छात्र-समाज ने इस बालक के प्रति जो भयंकर कूट समस्या निक्षेप की है, उसे आप लोगों ने अपने कानों से सुना और आँखों से देखा। इस बंगीय बालक ने उस समस्या का जो उत्तर लिखा है, वह मेरी मुट्ठी में बन्द है। मैं इसे पहले पढ़ने नहीं दूँगा। इन लोगों ने जिस श्लोक का एक चरण आज प्रश्न के रूप में पूछा है, उसके तीन अन्य चरण अवश्य होंगे—यह ध्रुव निश्चित है। इनके यहाँ इस समस्या के उत्तर में, उन तीन चरणों में जो लिखा है, उसे बिना देखे या सुने हम अपना उत्तर कदापि नहीं दिखायेंगे, अतएव मैथिल छात्र पहले हमें उन तीन चरणों को सुनाये।"

तर्कचूड़ामणि के इस कूट कौशल से बाध्य होकर उन लोगों को सुनाना पड़ा। उस समालोचना को भी कागज पर लिख लिया गया। उनके तीन चरणों में क्या लिखा था, इस वक्त स्मरण नहीं है। पर उसका भाव यह था—"चन्द्र, सूर्य की गति अगर स्तब्ध हो जाय, पानी में आग जले, पर्वत के शिखरों पर यदि कमल खिले तभी इस तरह के प्रश्न किये जा सकते हैं।"

उनके श्लोक का अर्थ जनसाधारण को अच्छी तरह समझाने के बाद तर्कचूड़ामणिजी ने मुझे अपना श्लोक पढ़ने की आज्ञा दी। मैंने उसे पढ़ा और उपस्थित लोगों को उसका अर्थ भी समझा दिया। मुझे वह श्लोक याद नहीं है। मगर जो याद है, वह यों है—"मनुष्य-जीवन का अति सूक्ष्माग्र मन ही सुतीव्र सूच्यग्रस्वरूप है, उसके ऊपर ही छः कूप हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य। इसके ऊपरवाली नगरी यही विशाल संसार है, जिसमें गंगा का प्रवाह है यानी इहलोक-परलोक में निरन्तर आवागमन।"

मेरे इस श्लोक को सुनकर मैथिलों ने स्वयं ही मुक्तकंठ से स्वीकार किया—"हमारे यहाँ जो श्लोक है, इस श्लोक के आगे उसकी कोई कीमत नहीं है।"

तब तर्कचूड़ामणिजी ने कहा—"अब बताओ कि तुम्हारे यहाँ प्रसिद्ध, प्रवीण और प्राचीन अध्यापकों के द्वारा जो नहीं हो सका है, हमारे बंगाल के दस-ग्यारह वर्ष के बालक द्वारा वह कार्य पूरा हो गया। इसके साथ ही आप लोग यह भी जान लें कि यह बालक हमारे नवद्वीप-समाज का गौरव है।"

मैथिल विद्वानों ने मुक्तकंठ से प्रसन्नता प्रकट करते हुए यह स्वीकार किया और मुझे आशीर्वाद दिया। बाद में उन लोगों ने कहा—"यह बालक कवि नहीं, बल्कि 'कविरत्न' के रूप में प्रसिद्ध होकर इसने नवद्वीप के पंडित-समाज का मुखोज्ज्वल किया है।"

इसी सभा में, मेरे बचपन में ही सर्वसम्मति से मुझे 'कविरत्न' की उपाधि दी गयी।"

नवद्वीप में शिक्षा समाप्त करने के बाद शिवचन्द्रजी कलकत्ता आये 'विद्यासागर' उपाधि-परीक्षा के लिए। यहीं आपकी मुलाकात तत्कालीन पंडित-समाज के ख्यातिप्राप्त विद्वान् जीवानन्द विद्यासागर से हुई। आपने इनके पास जाकर अपना अभिप्राय प्रकट किया। इनका मंतव्य सुनकर जीवानन्द ने कुछ मौखिक प्रश्न किये। उन प्रश्नों के सटीक उत्तर शिवचन्द्र ने दिये। इससे संतुष्ट होकर जीवानन्दजी ने परीक्षा देने की अनुमति दी। इस परीक्षा में शिवचन्द्रजी सफलतापूर्वक पास हो गये। अब परीक्षकों के निकट एक कठिन समस्या उत्पन्न हो गयी। शिवचन्द्र ने 'विद्यासागर' उपाधि लेना अस्वीकार कर दिया, क्योंकि यह उपाधि उनके गुरु धारण किये हुए हैं। लोगों ने इन्हें काफी समझाया, पर वे अपने निश्चय पर अटल रहे। काफी सोच-विचार करने के बाद कलकत्ते की विद्वत्-मंडली ने इन्हें 'विद्यार्णव' की उपाधि प्रदान की।

इस घटना के बाद वेदान्त पढ़ने के लिए इन्हें काशी भेजा गया। उन दिनों काशी में अनेक वेदान्तिक विद्वान् थे और इस नगरी को इसका गढ़ समझा जाता था। यहाँ अध्ययन करते समय आपका परिचय कतिपय महत्त्वपूर्ण तांत्रिक साधकों से हुआ। एक प्रकार से तंत्र के प्रति तीव्र गति से आपका झुकाव हुआ। काशी-यात्रा में यह घटना आपके जीवन के लिए वरदान सिद्ध हुई।

तंत्र-चर्चा और उसकी साधना में इतनी दिलचस्पी बढ़ी कि आप घर वापस आ गये और अपने पितामह से अपनी इच्छा प्रकट की। उन्होंने कहा—"मैं इस दिशा में विस्तृत अध्ययन करना चाहता हूँ। आपसे अनुमति लेने आया हूँ।"

पितामह को मुँहमाँगी मुराद मिल गयी। वे अपने पौत्र की इच्छा को जानकर प्रसन्न हो उठे। आखिर तांत्रिक परिवार का वंशधर सही मार्ग पर आ गया। यही तो रक्त का प्रभाव है।

उन्होंने कहा—"यह तो प्रसन्नता की बात है। अनादिकाल से हमारे वंश में तंत्रशास्त्र का अध्ययन होता आ रहा है। इसके लिए तुम्हें अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं है। हमारे वंश की ख्याति संपूर्ण बंगाल में है। इसके लिए सबसे पहले तुम्हें दीक्षा लेनी होगी।"

शिवचन्द्र ने कहा—"आप जो आज्ञा देंगे, वही करूँगा। मुझे दीक्षा किससे, कब और कहाँ लेनी होगी ?"

पितामह मुस्कराये। बोले—"इसके लिए तुम्हें अन्य किसीके पास जाने की जरूरत नहीं। मैं स्वयं तुम्हें दीक्षा दूँगा।"

पितामह कृष्णसुन्दर स्वयं ही प्रसिद्ध तांत्रिक थे। उन्होंने अपने पौत्र को दीक्षा देने के बाद बताया—"हमारे वंश में एक-दो नहीं, अनेक पूर्वपुरुष तंत्रसिद्ध हो गये हैं। कामदेव, जयदेव, निमानन्द आदि। हमारे यहाँ तंत्रशास्त्र की अनेक हस्तलिखित पोथियाँ हैं। तुम्हें इनका अध्ययन करना होगा। केवल अध्ययन ही नहीं, बल्कि इस दिशा में सिद्धि प्राप्त करनी होगी तभी हमारे वंश की मर्यादा बनी रहेगी।"

तंत्र-शास्त्र के विद्वानों का कथन है कि तंत्र-धर्म शिव द्वारा प्रचारित शक्ति-उपासना है। योगयुक्त साधना से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। तंत्र-धर्म ही सार्वजनिक धर्म है जो पृथ्वी के सभी देशों में, प्रत्येक स्थिति में मनुष्य-समाज के लिए उपयोगी है। यही वजह है कि कभी इस धर्म का प्रसार सम्पूर्ण भारत में हुआ था। वैदिक या ब्राह्मण-धर्म में बाहरी तत्त्वों का प्रवेश निषिद्ध था और इसके लिए कठोरता के साथ कड़ाई की जाती थी। यहाँ तक कि शूद्र और महिलाओं का भी प्रवेश निषिद्ध था। वेद पर उनका अधिकार नहीं था। ठीक ऐसे समय में शिव द्वारा प्रचारित धर्म इस देश में वैदिक-धर्म के प्रतिवादस्वरूप आया और वह भी सार्वजनिक रूप में।

शिव के विचार से संसार में केवल दो जातियाँ हैं—पुरुष और स्त्री। मानव-जगत् के बाहर पशु जाति, पक्षी जाति, पतंग जाति, कीट जाति, उद्भिद् जाति हैं। प्रत्येक जीव मोक्ष का अधिकारी है। स्त्री और पुरुष दो पृथक् जाति होने पर भी इनके अधिकार समान हैं। अकेली स्त्री या अकेला पुरुष अर्द्ध या असंपूर्ण सत्ता मात्र है।

शिवोक्त तंत्र में कहा गया है कि "सृष्टि, स्थिति और लय की अधिष्ठात्री एवं चतुर्वर्ग-फलदात्री वही आद्याशक्ति भगवती स्वयं हैं। अन्य किसीमें यह शक्ति नहीं है जो जीव को मुक्ति दे सके। वैदिक पुरुष देवता की उपासना भी प्रकृति या शक्ति की उपासना है।[1]

"वैदिक साधना के मूल में वेद एवं तांत्रिक साधना के मूल में तंत्र है। आजकल साधना

---

१. तंत्राभिलाषीर साधुसंग—श्री प्रमोदकुमार चट्टोपाध्याय। प्रथम संस्करण, १९८३, विश्ववाणी प्रकाशन, कलकत्ता।

की उपर्युक्त परम्पराओं में मिश्रण या सांकर्य हो गया है।

"साधना में एक बहिरंग-साधना और एक अन्तरंग साधना, इस प्रकार दो विभाग हैं। उसी प्रकार बहिरंग-साधना में भी एक भाग में आचारमूलक पार्थक्य है और दूसरे विभाग में आचार से असम्बद्ध आणव उपाय के विभिन्न अंशों का अवलम्बन—भेद किया गया है। विभिन्न प्रकार की योगांग प्रक्रियाएँ इस द्वितीय विभाग के अन्तर्गत हैं—यह जानना चाहिए। यह हुई साधना की बात। तत्त्व के विषय में भी उसी प्रकार द्वैत, द्वैताद्वैत, अद्वैत तथा परमाद्वैत, इस प्रकार के भेद हैं। एक दृष्टिकोण से यद्यपि तांत्रिक नाम से परिचित सभी शास्त्र एक श्रेणी के अन्तर्गत हैं तथापि उनमें भेद है।

"पूजा-तत्त्व का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लेने पर साधक शिवत्व का अनुभव करके जीवन्मुक्ति के आनन्द का आस्वादन कर सकता है। चर्चा की सुगमता के लिए तंत्रशास्त्र में देवी-पूजा को साधारणतः उत्तम, मध्यम और अधम, इन तीन श्रेणियों में विभक्त किया जाता है। इन तीनों पूजाओं को कहीं-कहीं—परा, परापरा और अपरा कहा गया है। अपरा अथवा अधम-पूजा अन्यों की अपेक्षा निम्न कोटि की पूजा है। व्यवहार-क्षेत्र में साधारणतः जिस प्रकार की पूजा प्रचलित है, वह उन-उन अधिकारियों के आध्यात्मिक विज्ञान की दृष्टि से सर्वथा उपयोगी होने पर भी निम्नतम अर्थात् चतुर्थ श्रेणी की या अधमाधम कोटि की पूजा के अन्तर्गत है।"[१]

आम तौर पर सामान्य लोग तांत्रिकों से भयभीत रहते हैं। उन्हें अच्छी निगाह से नहीं देखा जाता। कहा जाता है कि अभिचार-क्रिया कापालिक और अघोरी करते हैं। वे शव पर साधना करते हैं। शराब तथा मछली का सेवन करते हैं। मैथुन के बारे में उनकी धारणा है कि पूर्ण युवती को उलंगकर मैथुनरत होकर साधना करनेवाला साधक अगर तन्मय हो जाय तो उसे सिद्धि प्राप्त हो सकती है। तंत्रशास्त्र के विद्वानों का कहना है कि यह पद्धति तिब्बत में बौद्ध कापालिकों में प्रचलित थी जिसका किसी समय भारत में आकर प्रभाव-विस्तार हुआ।

ऐसे कापालिक और अघोरी 'मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रामैथुनमेव च' का जो अर्थ करते हैं और अपनी धारणा के अनुसार करते हैं, वह अधम पूजा है। उत्तम पूजा या साधना में उक्त तथ्य को दूसरे रूप में प्रयोग किया जाता है। शिव ने पार्वती से कहा है—

सोमधारा क्षरेद् या तु ब्रह्मरन्ध्राद् वरानने।
पीत्वानन्दमयीं तां यः स एव मद्यसाधकः॥

[जिस समय साधक की कुण्डलिनी षट्चक्र का भेदन करके ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रार चक्र पर पहुँचती है, उस समय सोम कमल चक्र से श्वेत रंग का अमृत झरता है। उस मद्य या सुरा का सेवन करनेवाला या पीनेवाला ही मद्य-साधक कहलाता है।]

मा शब्दाद्रसना ज्ञेया तदंशान् रसना प्रिया।
सदा यो भक्षयेद्देवि स एव मांससाधकः॥

[जिसे रसना या जीभ कहते हैं, उसीको रसना या अमृत लेनेवाली समझना चाहिए। जो उस जीभ का भक्षण करता है अर्थात् जो जीभ को उलटकर, तालु में ले जाकर सहस्रारचक्र

---

१. तांत्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि—महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।

का अमृत पीता है, वही मांस-साधक है।]

इस बारे में एक दूसरा श्लोक है—

पुण्यापुण्योभयं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगविद्।
परे लयं नयेच्चित्तं स मांसाशी निगद्यते।

—भैरवयामल

[पुण्य-पाप को ज्ञान की तलवार से योगी मार देता है और फिर ब्रह्म में अपना चित्त लीन कर देता है, वही मांसभक्षी कहलाता है।]

गंगायमुनयोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौ चरतः सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद् यस्तु स भवेत् मत्स्यसाधकः॥

[गंगा (इडा), यमुना (पिंगला) नामक नदियों (नाड़ियों) के बीच जो दो मछलियाँ (श्वास-प्रश्वास का आना-जाना) हैं, उनका (प्राणायाम के द्वारा) नाश कर देनेवाला ही मत्स्य का साधक है।]

सहस्रारे महापद्मे कर्णिका मुद्रिता चरेत्।
आत्मा तत्रैव देवेशि केवलं पारदोपमम्॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलः।
अतीव कमनीयश्च महाकुण्डलिनीयुतः॥
यस्य ज्ञानोदयस्तत्र मुद्रासाधक उच्यते॥

—यामल

[सहस्रार महापद्म के अन्तर्गत बन्द कर्णिका (कोश) के भीतर (द्विदल पद्म के बीच में) विशुद्ध पारे जैसा, करोड़ों सूर्य के समान तेजस्वी होने पर भी जो करोड़ों चन्द्रमाओं के समान शीतल आत्मा है, वह महाकुण्डलिनी से युक्त है ऐसा ज्ञान प्राप्त करनेवाले साधक को ही मुद्रा-साधक कहते हैं।]

मैथुनं परमं तत्त्वं सृष्टिस्थित्यन्तकारणम्।
मैथुनाज्जायते सिद्धिः ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम्॥
रेफस्तु कुंकुमाभासः कुण्डमध्ये व्यवस्थितः।
मकारश्च बिन्दुरूपो महायोगौ स्थितः प्रिये॥
आकार हंसमारुह्य एकता च यदा भवेत्।
तदा जातं महानन्दं ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम्॥

[सहस्रार के ऊपरवाले बिन्दु (परमात्मा) से जीवात्मा का मिलन ही मैथुन-क्रिया है। सम्पूर्ण सृष्टि, स्थिति और विलय का कारण यह मिथुनभाव ही परम तत्त्व है। इसी मैथुन-क्रिया से परम दुर्लभ ब्रह्मज्ञान की सिद्धि प्राप्त होती है। कुंकुम के रंगवाला (अग्निबीज) रेफ मूलाधार चक्रस्थ (शरीर के अधोभाग में) स्थित है जबकि बिन्दुरूप मकार ऊर्ध्व (सहस्रार) में। जब मूलाधारस्थ शक्ति (कुंडलिनी) आकाररूपी हंस (प्राण) पर सवार होकर सहस्रारचक्रस्थ बिन्दु से जा मिलती है तब अनन्त आनन्द देनेवाला दुर्लभ ब्रह्मज्ञान का बोध होता है।]

संक्षेप में यही तंत्र-साधना का सार है। योग्य शिष्य का आधार समझकर ज्ञानी गुरु इस साधना की शिक्षा देते हैं। केवल पुस्तकीय ज्ञान से यह साधना नहीं की जा सकती।

कापालिक और अघोरियों की पद्धति अलग है और योगी पुरुषों की साधना भिन्न प्रकार की है।

× × × ×

शिवचन्द्रजी सात्त्विक साधक थे। आपमें बचपन से ही भगवत् प्रदत्त प्रतिभा थी। अपनी इस प्रतिभा के कारण वंश-परम्परा से चले आ रहे तंत्रशास्त्र को आपने समृद्ध किया था।

भारतीय तंत्र-साधना को सर्वप्रथम विश्व के चिन्तनशील व्यक्तियों के सामने प्रस्तुत करने का श्रेय सर जान उडरफ को दिया गया है। आप तंत्राचार्य शिवचन्द्र के शिष्य थे। माना जाता है कि भारतीय तंत्र-साधना को प्रकाश में लाने का श्रेय प्रकाण्ड तांत्रिक शिवचन्द्र, परम श्रद्धेय स्वामी प्रत्यगात्मानन्द को है, पर इसे विश्व के सामने प्रस्तुत करने का श्रेय सर जान उडरफ को है। इनकी रचनाओं से ही पश्चिमी लोगों को भारत की इस साधना के बारे में जानकारी हुई।

सर जान उडरफ अपने गुरु शिवचन्द्र विद्यार्णव की जीवनी लिखना चाहते थे, पर उन्होंने यह कार्य करने को मना कर दिया। उन्होंने कहा—"मेरी जीवनी से भारतीय तंत्रशास्त्र का कोई उपकार नहीं होगा। इससे अच्छा है कि अब तक आप जो ज्ञान अर्जित कर चुके हैं, उसे लिखिये। आपके माध्यम से संसार के लोगों को इस साधना के बारे में जानकारी प्राप्त होगी।"

गुरु की आज्ञा से सर जान उडरफ ने अनेक तंत्राचार्यों के बारे में जानकारी दी और संसार के लोगों के सामने तंत्र-साहित्य के बारे में बताया। सर जान उडरफ की देन को लोग-भूल नहीं सकेंगे। शिवचन्द्रजी की रचनाओं के अलावा अन्य कई ग्रंथों की सहायता से सर जान उडरफ ने तंत्र-साहित्य की रचना की।[१]

बात उन दिनों की है जब सर जान उडरफ कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश थे। अपने एक मित्र के सहयोग से भारतीय तंत्र-साहित्य के प्रति आकृष्ट हुए और उनकी यह तृष्णा इतनी तीव्र हो गयी कि वे मूल भाषा में तंत्र-साहित्य पढ़ने के लिए व्याकुल हो उठे। हाईकोर्ट के दोभाषिया पंडित हरिदेव शास्त्री संस्कृत के साथ-साथ अंग्रेजी के अच्छे जानकार थे। उन्हें उडरफ ने अपना शिक्षक नियुक्त किया। कुछ ही दिनों के भीतर भारत तथा तिब्बत के कुछ ग्रंथों का अध्ययन कर डाला। लेकिन इससे उनकी तृष्णा नहीं मिटी। वे किसी तंत्र-साधक के सम्पर्क में आकर इसकी वास्तविकता जानना चाहते थे।

सौभाग्य से उन्हीं दिनों शिवचन्द्रजी हाईकोर्ट के काम से कलकत्ता आये। यह समाचार हरिदेव शास्त्री को ज्ञात हो गया। शिवचन्द्रजी की ख्याति उन दिनों चारों ओर फैल चुकी थी। हरिदेव ने जान उडरफ से कहा—"अब तक आप जिस व्यक्ति की तलाश में परेशान थे, अब वे कलकत्ते में आ गये हैं। आप उनसे मिलकर अपनी समस्याओं का समाधान कर सकते हैं।"

---

१. श्री शिवचन्द्र विद्यार्णव रचित 'तंत्रतत्त्व' का 'प्रिंसिपल्स आव तंत्र' का अंग्रेजी में अनुवाद करने के अलावा उन्होंने 'शक्ति एण्ड शाक्त', 'सर्पेण्ट पावर', 'क्रियेशन ऐज एक्सप्लेन्ड इन द तंत्र', 'महामाया द वर्ल्ड ऐज पावर कान्शन्स', 'शाक्त कुण्डलिनी निगम', 'इण्ट्रोडक्शन टू तंत्रशास्त्र' आदि ग्रंथ लिखे।

"यह तो प्रसन्नता की बात है। कृपया उन्हें सादर मेरे बंगले पर ले आइये।"

हरिदेव शास्त्री ने कहा—"यह ठीक है, पर एक मुश्किल यह है कि वे अंग्रेजी बिलकुल नहीं जानते। उनसे आपकी बातचीत संस्कृत में हो सकती है।"

उडरफ ने कहा—"यह तो प्रसन्नता की बात है। अगर वे अंग्रेजी जानते तो शायद मैं उनकी गहराई को पकड़ नहीं पाता। आप उन्हें जरूर लाइये।"

इस प्रकार उडरफ भारत-प्रसिद्ध तंत्राचार्य से परिचित हुए। प्रथम दर्शन में ही वे अवाक् रह गये। प्रश्न पर प्रश्न उडरफ करते रहे और तेजस्वी पंडित उदात्त कंठ से उनका निराकरण करते रहे। श्रद्धा से उडरफ परिपूर्ण हो उठे। शिवचन्द्रजी को कहना पड़ा—"तंत्र के प्रति आपकी इतनी श्रद्धा देखकर मैं विस्मित हो उठा हूँ। आप इस दिशा में कार्य करते रहें। मेरी शुभकामना आपके साथ सर्वदा रहेगी।"

इस घटना के बाद वे काशी चले आये। काशी आने के पूर्व आपका विवाह चिन्तामणि देवी से हो गया था। कुछ दिनों बाद एक पुत्री को जन्म देकर वे परलोक चली गयीं। पिता के आग्रह पर पुनर्विवाह करना पड़ा गाँव की लड़की मनमोहिनी देवी से।

काशी आकर वे साधना करने लगे। आपकी इष्ट देवी थीं—सर्वमंगला माँ। आपने अपनी इष्ट देवी के नाम पर काशी, कुमारखाली तथा कलकत्ता में 'सर्वमंगला सभा' की स्थापना की। कभी आप काशी में तो कभी अपने गाँव रहते थे। गाँव के श्मशान में आप तंत्रादि की निगूढ़-क्रिया सम्पन्न करते रहे। प्रतिदिन रात के वक्त मातृ-पूजा करते हुए महीना पर महीना, वर्ष पर वर्ष गुजार दिये। कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने के लिए व्याकुल होकर अनेक गीतों की रचना की। काशी और वैद्यनाथधाम उनकी साधना-भूमि थी। लेकिन उनका अधिकांश समय काशी में व्यतीत हुआ था। यहाँ अनेक तांत्रिक थे। कहा जाता है कि इन्होंने मणिकर्णिका घाट स्थित श्मशान में कौल-पद्धति के अनुसार अनेक तांत्रिक क्रियाओं का संपादन किया था। तपस्या के लिए अक्सर आप वैद्यनाथधाम जाते थे। वहाँ काशी की अपेक्षा अधिक निर्जनता थी। वैद्यनाथधाम की श्मशान-भूमि में आप शव-साधना करते रहे। आपकी साधना से प्रभावित होकर वहाँ के गंगाप्रसाद फलहारी नामक एक सज्जन ने आपकी काफी सहायता की थी।

काशी, वैद्यनाथधाम के अलावा आप साधना के सिलसिले में दक्षिण भारत के अनेक स्थानों में भी गये। उत्तर में काश्मीर, मानसरोवर, तिब्बत, हरिद्वार, ऋषिकेश, ज्वालामुखी, विंध्याचल, कामाख्या, तारापीठ आदि पीठस्थानों में सिद्धि प्राप्त करने गये थे।

श्री दानवीर गंगोपाध्याय ने लिखा है—"जिन दिनों आप काशी में रहते थे, उन दिनों आप एक जटाधारी, लाल आँखोंवाले एक प्राचीन तांत्रिक महात्मा के पीछे लगे रहते थे। इस महात्मा की सहायता से आपने मणिकर्णिका के श्मशान में, अमावस्या की अँधियारी रात में कई अनुष्ठान किये। दृढ़संकल्प, दुर्जय साहस और अपनी एकनिष्ठा के कारण उक्त महात्मा से लाभान्वित हुए थे। तंत्र-साधना में सिद्धि प्राप्त करने में शिवचन्द्रजी को उनसे पर्याप्त सहायता मिली थी।

यही बात उनकी मानसरोवर-यात्रा के समय हुई थी। वहाँ भी एक उच्चकोटि के कौलिक की कृपा पाने में सफल हुए थे। वहाँ आप एक अर्से तक अनुष्ठान और तपस्या करते रहे।

तंत्र-साधना के बारे में आपने लिखा है—

''आज भी तांत्रिक सिद्ध साधक महापुरुष लोग अपने-अपने तपःप्रभाव से भारत के दिग्-दिगन्त को प्रज्वलित कर रहे हैं। आज भी भारत के श्मशानों में प्रति अमावस्या की महानिशा में प्रज्वलित चिता के समीप भैरव-भैरवियों की ज्वलन्त दिव्यज्योति नैश तमिस्रा को विदीर्ण कर गगन को आलोकित कर रही है। आज भी श्मशान में जलमग्न मृत और सड़े हुए शव साधकों की मंत्र-शक्ति से जीवित होकर सिद्धों की साधना में सहायक होते हैं। आज भी तांत्रिक योगी दिव्य दृष्टि के प्रभाव से इस लोक में रहते हुए देवलोक के अतीन्द्रिय कार्यों को प्रत्यक्ष रूप से देख लेते हैं। आज भव-भयभीत प्रणत शरणागत भक्त साधक को मुक्त करने के लिए मुक्तकेशी श्मशान में दर्शन देती हैं। अभी भी मंत्र-शक्ति के अद्‌भुत आकर्षण से पर्वतनन्दिनी का सिंहासन डोल उठता है। मुक्तपुरी के शान्त साधकों के लिए यही चिर प्रशस्त राजपथ है और शय्याशायी मुमूर्षु अंधों के लिए अंधकार के अलावा अन्य कुछ नहीं है।

''साधक की आत्मशक्ति वायु और मंत्रशक्ति अग्नि है, इसलिए उसकी आत्मशक्ति निमिष भर में उसे विपुल बना सकती है। शास्त्र भले ही बहुत दूर क्यों न हो, नौका जैसे अग्रसर होती हुई तुम्हें पार तक पहुँचा देती है, उसी प्रकार ज्ञान, योग, समाधितत्त्व भले ही दूर हो, मंत्रमयी महादेवी मूर्तिमती होकर, तुम्हारा हाथ पकड़कर तुम्हें पार करा देंगी। ज्ञान, योग, समाधि के जरिये कोई भी अनुष्ठान क्यों न करो, तुम देखोगे कि इन सभी में सर्वेश्वरी आनन्दमयी माँ आनन्द से हँस-हँसकर नाच रही हैं। उनका अशान्त नृत्य हमारे ज्ञान-समुद्र को प्रेम की तरंग से उद्वेलित कर रहा है।''

× × × ×

कई महीने बाद उडरफ ने अपने मित्र हरिदेव शास्त्री से कहा—''मैंने निश्चय किया है कि आचार्य शिवचन्द्रजी से दीक्षा लूँ। मैं उन्हें भुला नहीं पा रहा हूँ।''

हरिदेव शास्त्री को आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा—''सर, यह बहुत कठिन साधना है और फिर शिवचन्द्रजी आपको दीक्षा देंगे या नहीं, पहले इसका पता लगाना चाहिए। आप विदेशी संस्कृति और धर्म के हैं।''

उडरफ ने कहा—''इसीलिए आपकी सहायता चाहता हूँ। मैंने अपने को पूर्ण रूप से तैयार कर लिया है।''

इस बातचीत के बाद दोनों व्यक्ति काशी आये और अपना अभिप्राय निवेदन करने के लिए शिवचन्द्रजी के यहाँ आये। उस समय वे पूजा कर रहे थे। थोड़ी ही देर बाद पूजा के कमरे से बाहर निकले। उडरफ और हरिदेव शास्त्री के भाल पर उन्होंने भस्म लगाया। उस समय उडरफ को कैसी अनुभूति हुई, इसे उन्हींके शब्दों में सुनिये—

''काशी में ठाकुर शिवचन्द्र के भवन में जाते ही एक दिव्य अनुभूति हुई और मेरा बाह्यज्ञान लुप्त हो गया। सारे शरीर में जैसे बिजली दौड़ गयी। अंग-अंग में, नस-नस में। मुझे लगा जैसे सारी पृथ्वी मेरी आँखों के सामने चक्कर काट रही है। मन की समस्त क्रियाएँ स्तब्ध होने लगीं। कुछ देर बाद चेतना लौटी तब अपने भीतर एक अद्‌भुत परिवेश अनुभव

किया। बिजली की भाँति मेरी आँखों के सामने ॐकार साक्षात् रूप में दर्शन देने लगा। उसके भीतर पवित्र मातृबीज-समन्वित मंत्रों के समूह थे। बाद में हरिदेव शास्त्री ने बताया था कि जब मेरा बाह्यज्ञान लुप्त हो गया तब शिवचन्द्रजी ने उन्हें इशारे से बताया कि इसे धीरे-धीरे लिटा दो। कुछ देर बाद जब मुझे होश आया तब मैं गुरुदेव के उपदेशों को सुनकर धन्य हो गया था।"

कलकत्ता वापस आने के बाद उडरफ को बारंबार शिवचन्द्रजी की याद आती रही। उस दिव्य अनुभूति को वे भूल नहीं पा रहे थे।

कुछ दिनों बाद जब शिवचन्द्रजी कलकत्ता आये तब उडरफ ने दीक्षा देने का आग्रह किया। शिवचन्द्रजी ने कहा—"ठीक है, पर तुम्हारी शक्ति ?"

उडरफ ने कहा—"मेरी पत्नी भी आपसे दीक्षा लेने के लिए उत्सुक हैं।"

शुभ लग्न में पूजा-होम के बाद उडरफ दम्पती को दीक्षा दी गयी। अनुष्ठान समाप्त होने के बाद हाथ जोड़कर उडरफ ने कहा—"अब मेरा कर्त्तव्य है कि आपको गुरु-दक्षिणा दूँ।"

शिवचन्द्रजी ने कहा—"वत्स, मैं जागतिक वस्तुओं में दिलचस्पी नहीं लेता। मेरी इच्छा है कि तुम मातृतत्त्व और मातृनाम का संसार में प्रचार करो।"

इस अद्‌भुत दक्षिणा की बात सुनकर उडरफ हतप्रभ रह गये। श्रद्धा से विगलित होकर उन्होंने गुरु के चरणों में सिर रख दिया।

इस घटना के बाद ही उडरफ ने जीवनी लिखने का प्रस्ताव रखा था। उडरफ के माध्यम से आर्ट स्कूल के अध्यक्ष श्री ई० वी० हैवेल और प्रसिद्ध शिल्पी आनन्दकुमार स्वामी से परिचय हुआ। तंत्र के आलोक में भारतीय नन्दनतत्त्व, चारुकला और भास्कर्य की शिवचन्द्र ने व्याख्या की। इस व्याख्या से हैवेल को नयी रोशनी मिली। उन्होंने यह बात स्वीकार की है कि मुझे तंत्राचार्य शिवचन्द्रजी के प्रसाद से भारतीय मूर्ति-कला में छिपे भावों को समझने में पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई है। हिन्दू-धर्म और दर्शन के प्रति डॉ० आनन्दकुमार स्वामी के मन में आस्था और श्रद्धा उत्पन्न कराने का श्रेय श्री शिवचन्द्र को दिया गया है।

श्री उडरफ काशी या कुमारखाली में जब अपने गुरु का दर्शन करने जाते तब उनका रूप कुछ और ही होता था। नंगे पाँव, काषाय वस्त्र, गले में रुद्राक्ष की माला और भाल पर तिलक लगाते थे। उनके इस रूप को देखकर कोई यह नहीं समझ पाता कि आप कलकत्ता हाईकोर्ट के जज हैं।

श्री उडरफ ने अपने गुरुदेव के बारे में कहा है—"मेरे जैसे नगण्य व्यक्ति पर गुरुदेव की असीम कृपा थी। उनके जीवनकाल में तथा उनके तिरोधान के बाद भी अनेक अलौकिक लीलाओं को प्रत्यक्ष रूप से देख चुका हूँ। उनकी योगविभूति के माध्यम से मेरा पथ प्रदर्शन हुआ है। कलकत्ते में रहते और बाद में लन्दन में निवास करते समय दोनों स्थानों में उनकी कृपा से लाभान्वित हुआ हूँ।

"एक बार कलकत्ता हाईकोर्ट में एक जटिल मुकदमे की पेशी हुई थी। कानून के कूट तर्क चल रहे थे। मुकदमे के गवाह बड़े चुस्त और चतुर थे। इस बात को मैं समझ रहा था। वे अपनी गवाही तथा बहस के द्वारा मुझे प्रभावित कर रहे थे। लेकिन मैं सत्य को पकड़ नहीं पा रहा था। संदेह की दृष्टि से चारों ओर देख रहा था। सहसा सामने की दीवार पर

नजर जाते ही देखा—विदेही गुरुजी की मूर्ति प्रकट हो गयी है । आँखें बन्द कर मैंने उन्हें प्रणाम किया । उन्होंने मुस्कराते हुए हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया । भरी अदालत में गुरुजी का इस तरह आविर्भाव मेरे निकट एक अकल्पनीय घटना थी । मुकदमे की जटिलता समझ में आ गयी । इस प्रकार सत्य की विजय हुई ।

"इसी प्रकार एक बार रात को अपने घर एक मुकदमे का फैसला लिख रहा था । अचानक देखा, गुरुदेव तांत्रिक वेष धारण किये सामने खड़े हैं । उनकी आँखों से अपूर्व आभा प्रकट हो रही है । तुरत उन्हें प्रणाम किया । उन्होंने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया । इस प्रकार अक्सर गुरुदेव की कृपा-वर्षा मुझ पर होती रही ।"

जिन दिनों शिवचन्द्रजी काशी में थे, उन दिनों देश-विदेश के विद्वान् तंत्र-सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने आते थे । आप सभी को भारतीय तंत्र के बारे में जानकारी देते रहे ।

कुमारखाली गाँव के समीप बंगाल के ख्यातिप्राप्त बाउल लालन फकीर रहते थे । हमेशा एकतारा बजाते हुए आशु कवियों की तरह बाउल गीतों की रचना करते थे । इनका आना-जाना शिवचन्द्रजी के यहाँ बराबर जारी था । एक मुसलमान का कट्टर हिन्दू-परिवार के यहाँ आना-जाना गाँव के लोगों को पसन्द नहीं था । लेकिन लोग जबानी विरोध करने पर भी शिवचन्द्रजी को कोई नुकसान नहीं पहुँचा पाते थे । इस मामले में शिवचन्द्रजी बहुत खुले दिल के थे । कांगाल हरिनाथ ने शिवचन्द्रजी के पिता से दीक्षा-मंत्र लिया था और दूसरी ओर वे शिवचन्द्रजी के प्राथमिक शिक्षक थे, इसलिए इस परिवार में उनका आना-जाना जारी था ।

इन्हीं कांगाल हरिनाथ का जब निधन हुआ तब शिवचन्द्रजी ने उनके शव में कंधा लगाया था जिसके कारण कुमारखाली के कट्टर ब्राह्मणों के दल ने नाराज होकर इनकी घोर निन्दा की थी ।

तारापीठ के साधक श्री वामा खेपा[१] की ख्याति उन दिनों बंगाल में ही नहीं, अन्य प्रान्तों में फैल गयी थी । अनेक लोग आपकी कृपा पाने के लिए आपके पास आते थे । कुछ लोग तंत्र-विद्या सीखने की गरज से आते थे । शशधर बनर्जी नामक एक साधक इसी उद्देश्य से बाबा के पास गया । बाबा ने कहा—"मैं इस दिशा में तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकता । मेरी सलाह मानो तो कुमारखाली के शिवचन्द्रजी के निकट जाकर अपनी इच्छा प्रकट करो । वे तुम्हें वास्तविक सलाह देंगे । उनके बताये सिद्धान्त पर साधना करने पर सफलता मिलेगी ।"

इसी प्रकार एक बार आपके निकट दरभंगा-नरेश आये । तांत्रिकों के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी । उनका विश्वास था कि सिद्ध तांत्रिक असंभावित चमत्कार कर सकते हैं । इस सिलसिले में वे वामा खेपा के पास आये ।

वामा खेपा ने कहा—"मैं ठहरा मूर्ख आदमी । तारा माँ का प्रसाद खाकर पड़ा रहता हूँ । अनुष्ठान आदि कुछ नहीं जानता । आप भारत के महान् तांत्रिक शिवचन्द्र की शरण में जाइये । वे उच्चकोटि के साधक हैं ।"

इस सलाह को पाकर दरभंगा-नरेश शिवचन्द्रजी के पास आये । बातचीत से उन्हें ज्ञात हो गया कि ये बहुत बड़े विद्वान् हैं । इनके साथ आप श्मशान में एक अर्से तक साधना करते रहे ।

---

१. देखिये 'भारत के महान् योगी', प्रथम खण्ड ।

शिवचन्द्रजी कितने उच्चकोटि के साधक थे, इस बात का उदाहरण एक घटना से मिल जाता है। कहा जाता है कि एक बार आप सर्वमंगला देवी का अनुष्ठान तांत्रिक विधान से कर रहे थे। आपके साथ फल-फूल और एक पात्र में कच्चा दूध रखा था। भोग निवेदन करने के बाद आप ध्यानस्थ हो गये।

पता नहीं, कहाँ से दो काले भयंकर विषधर आये। सबसे पहले उन्होंने भोग में रखे दूध का पान किया। इसके बाद फन काढ़कर कुछ देर झूमते रहे। इधर शिवचन्द्रजी आँखें बन्द कर 'जय माँ-जय माँ' कहते रहे। एकाएक दोनों साँप शिवचन्द्रजी के बदन से लिपटकर कुछ देर तक फन काढ़े लिपटे रहे। बाद में चुपचाप चले गये। साधक को इस घटना की जानकारी नहीं हुई।

साँपों के चले जाने के बाद उसके जूठन दूध को वे पी लेते। प्रत्यक्षदर्शी लोग उक्त दूध को पीने के लिए मना करते, फिर भी वे सर्वमंगला देवी का प्रसाद समझकर पी जाते थे।

कभी-कभी आर्थिक कठिनाई के कारण दूध का प्रबंध नहीं कर पाते तब हँसते हुए कहते—"कल अगर तारा माँ की कृपा नहीं हुई तो केवल करेमू का साग भोग में दूँगा।"

नेपालचन्द्र साहा पास के गाँव में रहता था। वह शिवचन्द्रजी का भक्त था। उसका भतीजा सख्त बीमार पड़ा। इलाज चलता रहा, पर दिन-ब-दिन हालत खराब होती गयी। व्याकुल होकर वह शिवचन्द्रजी के पास आकर रोने लगा—"ठाकुर, मेरे भतीजे की हालत बहुत खराब है। कृपया एक बार चलकर उसे प्राणदान दे दीजिए।"

शिवचन्द्रजी सारा रहस्य समझ गये। बोले—"सब तारा माँ की कृपा है। उसे पुकारो, बेटा।"

"मैं यह सब नहीं जानता। मुझे अपने भतीजे का जीवन-दान चाहिए।"

लाचारी में शिवचन्द्र को अनुष्ठान करना पड़ा। बालक स्वस्थ हो गया। लेकिन ईश्वरीय विधान में दखल देने का दण्ड शिवचन्द्रजी को भोगना पड़ा। अचानक एक दिन उनके पैर में काँटा गड़ गया। यही काँटा उनके लिए मृत्यु का काँटा बन गया। मार्च, सन् १९११ के दिन वे कुमारखाली गाँव को शोकमग्न कर चले गये।

●

महायोगी गोरखनाथ

"अलख निरंजन ।"

दरवाजे पर यह आवाज सुनते ही गृहिणी ने भीतर से कहा—"जरा ठहर जाओ, बाबा। अभी आयी ।"

थोड़ी देर बाद वह भिक्षा लेकर बाहर आयी। उसकी उदास शक्ल देखते ही बाबा ने पूछा—"क्या बात है बेटी ? इतनी उदास क्यों हो ?"

पास ही एक पड़ोसिन खड़ी थी। उसने कहा—"शादी हुए कई वर्ष हो गये, अभी तक माँ नहीं बन सकी, लोग अपशकुन के भय से इसका मुँह नहीं देखते, इसीलिए बेचारी उदास रहती है ।"

बाबा ने कहा—"चिन्ता मत कर बेटी। लो, यह भभूत खा लेना। भगवान् शिव की कृपा होगी तो तुम शीघ्र सुसंतान की जननी बन जाओगी ।"

भभूत देने के बाद बाबा चले गये। गृहिणी भभूत लेकर खड़ी रही। तभी पड़ोसिन ने कहा—"भीख माँगनेवाले बाबा के भभूत से भला बच्चा होता है। बच्चे तो भगवान् की देन हैं। बिना उनकी कृपा के कुछ नहीं होता ।"

गृहिणी को बात लग गयी और क्रोध में आकर उसने उस भभूत को घर के पीछे घूर में फेंक दिया। उसने बाबा के भभूत पर विश्वास नहीं किया।

समय गुजरता गया। रमता योगी वही बाबा पुनः गृहिणी के दरवाजे पर आये तो वही उदास चेहरा देखा तो चौंककर पूछा—"बेटी, तेरा लड़का कहाँ है ?"

"लड़का ?" महिला चौंकी।

बाबा ने कहा—"आज से बारह वर्ष पहले मैंने तुम्हें भभूत देते हुए कहा था कि इसे खा लो। तुम एक सुसंतान की जननी बनोगी ।"

महिला ने कहा—"पड़ोसियों के व्यंग्य करने पर मैंने उसे घूर में फेंक दिया ।"

बाबा ने कहा—"जहाँ तुमने फेंका है, वहाँ मुझे ले चलो ।"

महिला बाबा को घूर के पास ले आयी। बाबा ने आवाज दी—"अलख निरंजन ।"

इस ध्वनि को सुनते ही घूर में से एक गौरवर्ण का तेजस्वी बालक निकला और बाबा के पास नतमस्तक खड़ा हो गया। महिला विस्मय से अवाक् रह गयी। जब तक वह कुछ कहती, उसके पहले ही बाबा बालक को साथ लेकर अन्तर्धान हो गये।

बाबा थे—योगिराज मत्स्येन्द्रनाथ और बालक था—गोरखनाथ। घूर में जन्म लेने के

कारण गुरु मत्स्येन्द्रनाथ ने बालक का नाम गोरक्षनाथ रखा था। यह घटना रायबरेली जिले के अन्तर्गत जायस नामक कस्बे में हुई थी। मराठी भाषा में लिखित 'नवनाथ भक्तिसार' में इसी तरह की घटना का उल्लेख है। कहा जाता है कि जायसवाली कहानी को मराठी भाषा में उल्लेख किया गया है।

'नाथ-सम्प्रदाय' के संस्थापक योगिराज गोरखनाथ के जन्मस्थान, संवत्, पिता-माता आदि का सही विवरण प्राप्य नहीं है। नाथ-सम्प्रदाय के सन्त उन्हें सतयुग, द्वापर, त्रेता और कलियुग चारों का मानतें हैं। काश्मीर से सिंहल और असम से काठियावाड़ तक उनके बारे में तरह-तरह की कहानियाँ प्रचलित हैं। अधिकांश लेखक उन्हें ११वीं या १२वीं शताब्दी का मानते हैं। नाथ-सम्प्रदाय के संत या भक्त लोग जनश्रुतियों के आधार पर उन्हें सहस्रों वर्ष का व्यक्ति मानते हैं। यह केवल कल्पना की बात है। यह ठीक है कि हठयोगी पुरुषों की आयु लम्बी होती है, पर अब तक कोई भी संत २५० वर्ष के ऊपर जीवित नहीं रहा। अगर यह बात सत्य होती तो हमारे ऋषि-मुनियों को 'जीवेम शरदः शतम्' वर माँगने की आवश्यकता नहीं होती।

मत्स्येन्द्रनाथ के बारे में कहा गया है—"पूर्व मध्ययुग में शैवधर्म नये रूप और नये आयाम में विकसित हो रहा था जिसे कालान्तर में नाथ-सम्प्रदाय या नाथ-पंथ अथवा हठयोग और सहजयान-सिद्धि कहा गया। इस सम्प्रदाय में नौ नाथों को दिव्य पुरुष के रूप में माना गया है। इसके पहले नाथ स्वयं शिव थे। दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मत्स्येन्द्रनाथ अथवा मच्छन्दरनाथ ने इस सम्प्रदाय का प्रचार किया। उनका जन्म बंगाल के एक धीवर-परिवार में हुआ था। उन्होंने बंगाल, असम आदि विभिन्न स्थानों की यात्राएँ कीं और तत्पश्चात् 'योगिनी कौल' नामक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। 'कौल ज्ञाननिर्णय' और 'अकुलवीर तंत्र' नामक उनके ग्रंथों में 'योगिनी कौल' सिद्धान्त की विस्तृत चर्चा की गयी है। इस सिद्धान्त के अनुसार शिव का नाम 'अकुल' है तथा शक्ति का 'कुल'। दोनों अन्योन्याश्रित हैं। इन दोनों के संयोग से सृष्टि होती है। मत्स्येन्द्रनाथ की यह साधना वज्रयानी बौद्धों की साधना से साम्य रखती है। इसीलिए मत्स्येन्द्रनाथ को 'अवलोकितेश्वर' के अवतार के रूप में स्वीकार किया गया है और तिब्बत में उन्हें सिद्ध लुईपाद के रूप में माना गया है।

"मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ को १०वीं-११वीं शताब्दी का माना गया है। नाथ-पंथ के प्रचार-प्रसार में आपका सशक्त योगदान है। इन्होंने भारत के संत्रस्त सामाजिक और धार्मिक जीवन को नवीन प्रवाह प्रदान किया। रावलपिण्डी जिला जो आजकल पाकिस्तान में है, उनका जन्मस्थान बताया गया है। गोरखनाथ से सम्बन्धित ऐसे अनेक स्थान पाकिस्तान में हैं। गोरखनाथ का टीला झेलम जिले में स्थित है, गोरख हटरी पेशावर शहर में है, गोरख की धूनी बलूचिस्तान की लालबेला रियासत में है।

"योगमार्ग, गोरक्षसिद्धान्त संग्रह जैसे ग्रंथों में अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार 'शिव' ही परमतत्त्व है। जब उसकी इच्छा होती है तब वह शक्ति के रूप में परिवर्तित हो जाता है। शक्ति की पाँच स्थितियाँ हैं—(१) निजा (परम शिव में लीन), (२) परा (प्रत्यक्ष होने की कला), (३) अपरा (अभिव्यक्ति की स्थिति), (४) सूक्ष्मा (अभिमान का उदय)

और (५) कुण्डली (अभिमान की चेतना की क्रिया)। इसी प्रकार शिव के पाँच रूप हैं— अपर, परम, शून्य, निरंजन और परमात्मा।

"वस्तुतः गोरखनाथ के कारण नाथ-सम्प्रदाय का शीघ्रता से विकास हुआ। यही नहीं, गोरखनाथ से सम्बन्धित अनेक चमत्कारिक कहानियाँ भी प्रचलित हुईं तथा यह विश्वास किया जाता है कि उनका नाम लेने से सिद्धि प्राप्त हो जाती है। वे अपनी उच्च साधना से आध्यात्मिक शिखर पर पहुँच गये। नेपाल, तिब्बत, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, पंजाब, बंगाल, असम आदि प्रान्तों में उनके देवत्व के सम्बन्ध में अनेक अनुश्रुतियाँ फैलीं। उन्हें ब्रह्मा, विष्णु, शिव जैसे देवताओं से ऊपर स्वीकार किया गया था तथा समाज में उनका उच्च स्थान था।

"उनके हठयोग और सहजयान योग का तत्कालीन समाज में तीव्रता से प्रसार हुआ जिसने भारत के सामाजिक और धार्मिक जीवन को आन्दोलित किया। उनके सिद्धान्तों में प्राचीन शैवों, आजीवकों, वज्रयानी बौद्धों आदि के मतों और सिद्धान्तों का अनुपम समन्वय है। अनंगवज्र या रमणवज्र जैसा उनका बौद्ध नाम भी मिलता है। गोरखनाथ ने महात्मा बुद्ध की तरह मध्यम मार्ग का अनुगमन किया। उन्होंने बौद्ध और हिन्दू तांत्रिकों की अनैतिक क्रियाओं का तथा आदर्शवाद के आध्यात्मिक सूक्ष्मीकरण और यौगिक क्रियाओं की अतिरंजना का कड़ा विरोध किया।"[१]

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री का कथन है—"मत्स्येन्द्रनाथ का प्रसिद्ध ग्रंथ कौलग्रंथ अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वे बौद्ध नहीं थे। दरअसल नाथ साधकों के परम श्रद्धेय गुरु के रूप में प्रतिष्ठित होकर भी मत्स्येन्द्रनाथ बौद्धों के उपास्य देवता बन गये थे और इस दिशा में उन्हें असामान्य मर्यादा प्राप्त हुई है। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है।"[२]

महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराजजी भी यही मानते हैं—"गोरखनाथ के कायाबोध ग्रंथ में उन्हें पशु हत्याकारी के रूप में चित्रण किया गया है। पशू-हत्या से सम्बन्धित व्यक्ति बौद्ध नहीं हो सकता।"

डॉ० कल्याणी मल्लिक ने इस दिशा में एक नये तथ्य का उल्लेख किया जो किसी हद तक उचित है। आपका कहना है—"मत्स्येन्द्रनाथ के बारे में यह प्रसिद्ध है कि वे गोरख के गुरु तथा कनफटा-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक हैं। पाशुपत शैव संन्यासी के रूप में वे नेपाल गये थे, इसलिए शिव विग्रह नेपाल में है।"[३]

कुछ विदेशी लेखकों ने नाथ-सम्प्रदाय को कापालिक तथा अघोरी-सम्प्रदाय से सम्बन्धित माना है। वस्तुतः कापालिक और अघोरी अलग-अलग उपासक होते हैं। यह ठीक है कि इन दोनों के आचार-व्यवहार में विशेष अन्तर नहीं है। इन दोनों सम्प्रदायों में अनाचार काफी हद तक बढ़ गया था। उनकी इन क्रियाओं को सही रूप देने के लिए 'नाथ-सम्प्रदाय' की सृष्टि हुई थी। जैसा कि इसके आगे डॉ० जयशंकर अपने वक्तव्य में प्रकट कर चुके हैं।

पण्डित गंगाशंकर मिश्र ने भी इस बात पर प्रकाश डाला है—"मिस्टर कुवस ने लिखा है कि 'गुरु गोरखनाथ ने अघोर-पन्थ पुनः चलाया है।' पर यह ठीक नहीं जान पड़ता।

---

१. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृष्ठ ७११-१३। डॉ० जयशंकर मिश्र।

२. बौद्धगान ओर दोहा, पृष्ठ १६। म० म० हर प्रसाद शास्त्री।

३. नाथ सम्प्रदायेर इतिहास, डॉ० कल्याणी मल्लिक।

गोरखनाथ के सम्बन्ध में बहुत मतभेद है। लोग प्रायः उनका जन्म बारहवीं शताब्दी मानते हैं। उनका सम्प्रदाय नाथ-सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। कनफटे योगी भी उसी सम्प्रदाय के हैं। पर उनके सम्प्रदाय में अघोराचार की झलक नहीं है।"[१]

डॉ० रांगेय राघव का विचार है कि "गोरखनाथ के काफी पूर्व नाथ-सम्प्रदाय की उत्पत्ति हो गयी थी। बचपन से ही इन पर घुमक्कड़ नाथ सिद्धों का प्रभाव पड़ा था।"[२]

जो लोग ईसा की प्रथम शताब्दी से लेकर १३वीं शताब्दी तक गोरखनाथ की उपस्थिति मानते हुए इतिहास तथा घटनाओं के आधार पर प्रमाण देते हैं, वे भ्रम में हैं। वस्तुतः नाथ-सम्प्रदाय का विकास पाशुपत-सम्प्रदाय से हुआ है। बुद्ध के पूर्व भारत में ब्राह्मण-धर्म का संक्रमण-काल था, इसलिए मानव-जगत् को शान्ति-सद्भाव देने के लिए जब बुद्ध ने संदेश देना प्रारंभ किया तब लोग बौद्ध धर्म के प्रति आकृष्ट हुए और इस तेजी से यह धर्म फैला कि समस्त एशिया में इसका विस्तार हो गया। बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद इस धर्म के अनुयायियों में अनाचार बढ़ने लगा। तंत्र-मंत्र का प्रवेश होने के कारण लोग बौद्ध धर्म से विमुख होने लगे। ठीक इसी समय शैव धर्म का पुनः तेजी से विकास हुआ। शैव-धर्म का ही एक अंग पाशुपत-सम्प्रदाय था। महाभारत-काल के पहले ही इस धर्म का विकास हो चुका था। इसका उल्लेख पुराणों में भी है।

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है—"हर्ष के स्कन्धावार में पाशुपत साधु भी एकत्रित थे। प्रथम शताब्दी ईस्वी के बाद से मथुरा और समस्त उत्तर भारत में पाशुपत शैवों का प्रचार हो गया था। शंकराचार्य ने पाशुपत-दर्शन का खंडन किया है।"[३]

"वायुपुराण और लिंगपुराण के अनुसार पाशुपत-मत का उद्‌भव लकुलिन नामक ब्रह्मचारी द्वारा हुआ था, जो शिव का अवतार था। (अध्याय ३३, वायुपुराण, अध्याय २४, लिंगपुराण)। जिस समय वासुदेव कृष्ण उत्तरी भारत में अपना धर्म-प्रचार कर रहे थे, उस समय पश्चिमी भारत में कायावरोहण नामक स्थान पर लकुलिन का जन्म हुआ था।"[४]

"महाभारत के शान्तिपर्व के ही एक अन्य भाग में 'शिवसहस्रनाम' प्रसंग में कहा गया है कि स्वयं भगवान् शिव ने पाशुपत-सिद्धान्त को प्रकट किया था जो कुछ अंशों में वर्णाश्रम-धर्म के अनुकूल और कुछ अंशों में प्रतिकूल था।

"'सर्वदर्शन-संग्रह" नामक ग्रंथ में आया है कि लकुलिन ने लोगों को पाशुपत-योग सिखाया था। इस लकुलिन को शिव का अवतार और कृष्ण का समकालीन माना गया है।"

"पाशुपतों का उल्लेख साहित्य और शिलालेखों में बराबर होता रहा है। इससे सिद्ध होता है कि पाशुपत लोग शैवों का एक प्रमुख सम्प्रदाय बने रहे।"

"दसवीं से तेरहवीं शती तक मैसूर के अनेक शिलालेखों में लकुलिन और उसके पाशुपतों

---

१. मनन मनोरंजन, भाग-१, पं० गंगाशंकर मिश्र।

२. गोरक्षनाथ, डॉ० रांगेय राघव।

३. हर्षकालीन भारत, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृष्ठ ११०।

४. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृष्ठ ७०५।

का उल्लेख हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि समस्त काल में पाशुपतों का दक्षिण भारत में अस्तित्व था।"[१]

कहने का आशय यह है कि डॉ० कल्याणी मल्लिक के विचार वास्तव में सही हैं। बौद्ध तांत्रिकों, अघोरियों और कापालिकों के बढ़ते प्रभाव को कम करने तथा दिशाहीन लोगों को त्राण देने के लिए नाथ-सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा हुई। नाथ-सम्प्रदाय के संस्थापक पाशुपत-सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इनके आराध्य देवता शिव हैं।

गोरखनाथ का जन्मस्थान सर्वश्री मोहनसिंह, टेसीटरी, ग्रियर्सन, जयशंकर मिश्र, रांगेय राघव आदि विद्वान् रावलपिण्डी में मानते हैं। जिस गाँव में बाबा गोरखनाथ ने जन्म लिया था, उस गाँव का नाम बाद में गोरखपुर कर दिया गया। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा डॉ० रांगेय राघव गोरखनाथजी को ब्राह्मण-वंश का मानते हैं। गोरखनाथजी पहले वज्रयानी थे, यानी बौद्ध थे। तारानाथ के अनुसार मुसलमानों के आने पर अपने को शैव कहकर राज्य-क्रोध से बच गये। तिब्बती बौद्ध इन्हें धर्मत्यागी के रूप में घृणा की दृष्टि से देखते हैं। दूसरी ओर सम्मान भी करते हैं। इससे स्पष्ट है कि उनका नाम सहजयान सूची में है।"

जो योगी कान नहीं फड़वाते, वे औघड़ कहलाते हैं। नाथ शब्द में 'ना' का अर्थ है—अनादि रूप और 'थ' का अर्थ है—(भुवनत्रय को) स्थापित करना।

नाथ-सम्प्रदाय के कनफटों को दर्शनी साधु कहा जाता है। दर्शनियों में जो बिलकुल नग्न रहते हैं, वे मद्य, मांस खाते हैं। कान की मुद्रा से यह नाम दिया गया है। कानवाली मुद्रा धातु या हाथीदाँत की होती है। मुद्राधारी 'कुण्डल' और 'दर्शन' दोनों नामों से ज्ञात हैं। दर्शन का सम्मान अधिक है। कुण्डल को 'पावित्री' भी कहते हैं। लेकिन गोरखनाथ भांग, मद्य, मांस से दूर रहते थे।

गोरखनाथ के पश्चात् इस सम्प्रदाय में जालन्धरनाथ, चौरंगीनाथ, गहिनीनाथ, भर्तृहरि, कृष्णपाद, चर्पटीनाथ, गोपीचन्द, निवृत्तिनाथ, गोगापीर, गम्भीरनाथ आदि महान् योगी आये। इन लोगों ने अपने योगैश्वर्य के द्वारा साधारण लोगों को ही नहीं, सुधीजनों को भी प्रभावित किया। बाबा गंभीरनाथ के अधिकांश भक्त बंगाल में हैं।

नाथ-सम्प्रदाय के महान् योगी संत ज्ञानेश्वर का आज तक महाराष्ट्र में व्यापक प्रभाव है। नित्य हजारों श्रद्धालु आलन्दी स्थित उनके समाधिस्थल की पूजा करते हैं। संत ज्ञानेश्वर अपने बड़े भाई योगी निवृत्तिनाथ के शिष्य थे। निवृत्तिनाथ के गुरु गहिनीनाथ थे।

× × ×

गोरखनाथजी अपने बारे में कहते हैं—

आदिनाथ नाती मछीन्द्रनाथ पूता।
निज तत निहारे गोरष अवधूता॥

—गोरखबानी, पद ३७।

---

१. शैव मत- डॉ० यदुवंशी।

अर्थात् मैं आदिनाथ (शिव) का नाती और मत्स्येन्द्रनाथ का पुत्र हूँ। इसी गोरखबानी में एक जगह गोरखनाथ दूसरी बात कहते हैं—

अवधू ईश्वर हमारैं चेला भणीजै मछीन्द बोलिए नाती।
निगुरी पिरथी परलै जाती ताथैं हम उल्टी थापना थापी॥

अर्थात् शिव मेरे शिष्य हैं और मत्स्येन्द्रनाथ मेरे नाती हैं। यहाँ कबीरदास की तरह उल्टी वाणी गोरखनाथ ने प्रस्तुत कर दी

वस्तुतः गोरखनाथ महान् योगी के साथ-साथ शैव-धर्म के श्रेष्ठ प्रचारक थे। संपूर्ण भारत में उन्होंने नागरिकों को पुनः अपनी यौगिक शक्ति के द्वारा शिव-भक्त बनाया।

बंगाल के मुसलमान कवि फैजुल्ला के 'गोरख-विजय' काव्य से एक घटना का पता चलता है। गुरु मत्स्येन्द्रनाथ कदली देश[1] (सिंहल—स्त्री-राज्य) में गये थे जहाँ उन्हें शिवोदिष्ट ज्ञान प्राप्त हुआ था। लेकिन यह काल्पनिक बात है।

अधिकतर लोग यह मानते हैं कि बाबा गोरखनाथ एक बकुल वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ थे। आकाश-मार्ग से सिद्ध कृष्णपाद जा रहे थे। उनकी नजर इन पर पड़ी, तभी अपने योग-बल से बाबा गोरखनाथ ने उन्हें नीचे उतारा।

कृष्णपाद ने कहा—"आप यहाँ ध्यान लगाये बैठे हैं और उधर आपके गुरु कदली वन में सौलह सौ सेविकाओं द्वारा सेवित महारानी कमला और मंगला के साथ विहार कर रहे हैं। महाज्ञान भूल चुके हैं। उनकी आयु के केवल तीन दिन शेष रह गये हैं।"

बाबा गोरखनाथ ने कहा—"तुम्हारे गुरु की इससे भी खराब हालत है। गौड़ के राजा गोपीचन्द ने उन्हें मिट्टी में गड़वा दिया है।"

एक-दूसरे के गुरु का विवरण सुनकर दोनों अपने-अपने गन्तव्य स्थान की ओर रवाना हो गये। गोरखनाथ के साथ लंग और महालंग नामक दो शिष्य भी गये। तीनों ब्राह्मण के वेष में कदली वन में आये। गोरखनाथ का रूप देखकर महल की एक दासी इन पर आसक्त हो गयी। उसकी जबानी ज्ञात हुआ कि मत्स्येन्द्रनाथ यहाँ हैं, पर महल में कोई पुरुष नहीं जा सकता।

उसी समय एक नर्तकी महल की ओर जाती हुई दिखाई पड़ी। तुरत गोरखनाथ नर्तकी का रूप धारण कर सभा में जा पहुँचे। अपने योगबल के द्वारा मृदंग से बोल निकालने लगे—'जाग मछीन्द्र गोरख आया।'

मृदंग के माध्यम से उन्होंने मत्स्येन्द्रनाथ को सूचित किया कि कृष्णपाद से सूचना पाकर मैं आपकी सेवा में आया हूँ। आप नारियों के चक्कर में क्यों फँस गये ? आप अपने 'काम-बिकार' को त्याग दीजिए।

---

१. कदली देश के बारे में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। कुछ लोग सिंहल को कदली देश मानते हैं जहाँ कभी स्त्री-राज्य था। लेकिन प्राप्त विवरणों से यह स्पष्ट है कि असम का प्राग्ज्योतिषपुर ही कदली देश है। कल्हण ने राजतरंगिणी में लिखा है कि ललितादित्य प्राग्ज्योतिषपुर स्थित स्त्री-राज्य पर विजय प्राप्त करने गया था। फैजुल्ला ने भी सिंहल को माना है और इसी आधार पर आजादी के पूर्व एक फिल्म का निर्माण हुआ था।

शिष्य की वाणी सुनकर मत्स्येन्द्रनाथ को होश आया। दोनों ही व्यक्ति अलक्ष्य भाव से गायब हो गये और आकाश-मार्ग से गिरनार पर्वत पर उतरे जहाँ एक कुटिया थी। वहाँ मत्स्येन्द्रनाथ पहले से ही सशरीर उपस्थित थे। शिष्य-मण्डली उनके पास बैठी थी। गोरखनाथ यह दृश्य देखकर चकित रह गये। उन्होंने शिष्यों से जब पूछा तब पता लगा कि गुरुजी तो यहाँ कई वर्षों से उपस्थित हैं। यहाँ से कहीं गये नहीं।

यह जनश्रुति है कि गोरखनाथ के अहं को नष्ट करने के लिए मत्स्येन्द्रनाथ ने स्त्री-राज्य में लीला अभिनय किया था। पन्द्रहवीं शताब्दी में इसी जनश्रुति के आधार पर विद्यापति ने 'गोरक्ष विजय' नाटक लिखा था।

नेपाल में मत्स्येन्द्रनाथ का काफी महत्त्व है। यहाँ के नागरिक मत्स्येन्द्र-यात्रा-उत्सव मनाते हैं। कहा जाता है कि एक बार नेपाल-नरेश ने मत्स्येन्द्रनाथ के अनुयायियों पर बहुत अत्याचार किया था। इससे नाराज होकर उन्होंने नवनागों को समेट लिया था। इस वजह से नेपाल में बारह वर्ष पानी नहीं बरसा। लोग नेपाल छोड़कर भागने लगे। चारों ओर हाहाकार मच गया। राजा को अपनी भूल मालूम हुई। उन्होंने एक दूत मत्स्येन्द्रनाथ के पास भेजा। गुरु को देखते ही गोरखनाथ आसन से उठ खड़े हुए और नवनाग मुक्त हो गया। इसके साथ ही वर्षा हुई। इस उपकार के कारण मत्स्येन्द्रनाथ का उत्सव मनाने की प्रथा प्रारंभ हुई। नेपाल में मत्स्येन्द्रनाथ को अवलोकितेश्वर कहा जाता है।

नेपाल में बाबा गोरखनाथ जहाँ साधना करते रहे, वह गुफा आज भी मौजूद है। इसे गोरखनाथ की सिद्ध गुफा कहा जाता है। उज्जैन में भी गोरखनाथ तथा भर्तृहरि की गुफाएँ हैं, जहाँ साधक लोग जाते हैं और श्रद्धालु पूजा करते हैं। इसके अलावा, काठियावाड़, शाक द्वीप, गोरखपुर, गोरखमण्डी (पाटन) में भी गोरखनाथ की पूजा होती है।

त्रिपुरा के राजा तिलकचन्द्र की ख्याति उन दिनों पूरे बंगाल में थी। इनकी पुत्री का नाम शिशुमति था। बाबा गोरखनाथ यात्रा करते हुए त्रिपुरा में आये तो शिशुमति को देखते ही चौंक उठे। तिलकचन्द्र से उन्होंने कहा—"मैं इस लड़की को दीक्षा दूँगा।"

तिलकचन्द्र ने कहा—"बाबा, यह तो शिशु है। योग-साधन यह क्या करेगी ?"

गोरखनाथ ने कहा—"मैं इसके भविष्य को देख रहा हूँ और आप वर्तमान को। आपत्ति मत करिये।"

शिशुमति को दीक्षा देकर गोरखनाथ ने उसका नाम रखा—मयनामति।

मयनामति के पति थे—माणिकचन्द्र। मयनामति के पुत्र का नाम था—गोविन्दचन्द्र। माणिकचन्द्र के निधन के बाद गोविन्द का जन्म हुआ था। कहा जाता है कि माणिकचन्द्र के निधन के बाद मयनामति काफी घबड़ा गयी थी। राज्य का शासन तथा पेट में पलते बच्चे की देखरेख करना था। उन्हीं दिनों अचानक गोरखनाथ आविर्भूत होकर बोले—"तुम्हें परेशान होने की आवश्यकता नहीं है। तुम दोनों कार्य सकुशल सम्हाल लोगी। मैं आशीर्वाद देता हूँ, तुम सफल हो जाओगी। लेकिन एक बात याद रखना। जब तुम्हारा बालक किशोर बन जाय तब उसे भी नाथ-सम्प्रदाय में दीक्षित करा देना। आगे चलकर यह बालक नाथ-सम्प्रदाय का महत्त्वपूर्ण साधक बनेगा।"

बालक जब अठारह साल का हो गया तब उसका विवाह हुआ और उसके बाद ही

गोविन्दचन्द्र नाथ-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गया। संपूर्ण बंगाल में बाउल फकीर गोपीचन्द्र और मयनामति के गीत गाते हुए भीख माँगते हैं। तत्कालीन कई लोकगीतों के कवियों ने इन गीतों को गाँव-गाँव में फैलाया है।

कहा जाता है कि राजा भर्तृहरि भी बाबा गोरखनाथ के शिष्य थे जो रानी पिंगला के विरह में व्याकुल होकर गोरखनाथ की शरण में आये थे। उत्तर भारत के योगी आज भी सारंगी बजाते हुए गाते हैं—"भिक्षा दे माई पिंगला।"

गेरुए रंग का धोती-कुर्ता और सिर पर पगड़ी बाँधे रहते हैं। शहर और गाँव सर्वत्र इनकी सारंगी बजती है।

सिलवाँ लेवी ने लिखा है—"गोरखा-जाति और गोरखा-राज्य के रक्षक के रूप में गोरखनाथ को महापुरुष माना जाता है और उनकी पूजा की जाती है।"

नेपाल में गोरखा नामक एक लड़ाकू जाति है जिनके परिवार के अधिकांश सदस्य सैनिक बनते हैं। इन लोगों का कहना है कि गोरखनाथजी हमारे यहाँ बारह वर्ष तक तपस्या करते रहे। तपस्या-भूमि का नाम 'गोरखा' है। इन्हींके नाम पर बसे स्थान के कारण गोरखा-जाति की उत्पत्ति हुई है।

बंगला-साहित्य के प्रसिद्ध आलोचक श्री दिनेशचन्द्र सेन ने लिखा है—'गोरक्ष विजय' से यह भी पता चलता है कि कालीघाट (कलकत्ता) की काली देवी की प्रतिष्ठा गोरखनाथ के द्वारा हुई है। वर्त्तमान समय में गोरखनाथ के नाम पर स्थापित गोरखपुर की ख्याति सर्वत्र है जहाँ बाबा गोरखनाथ लम्बे अर्से तक तपस्या करते रहे।

जिस प्रकार बाबा के जन्म तथा जन्मस्थान का पता नहीं चलता, ठीक उसी प्रकार उनके तिरोधान का पता नहीं लग सका। नाथ-सम्प्रदाय के लोगों का विचार है कि बाबा अमर हैं। अभी तक उनकी योग विभूति कभी-कभी प्रकट होती है।

●
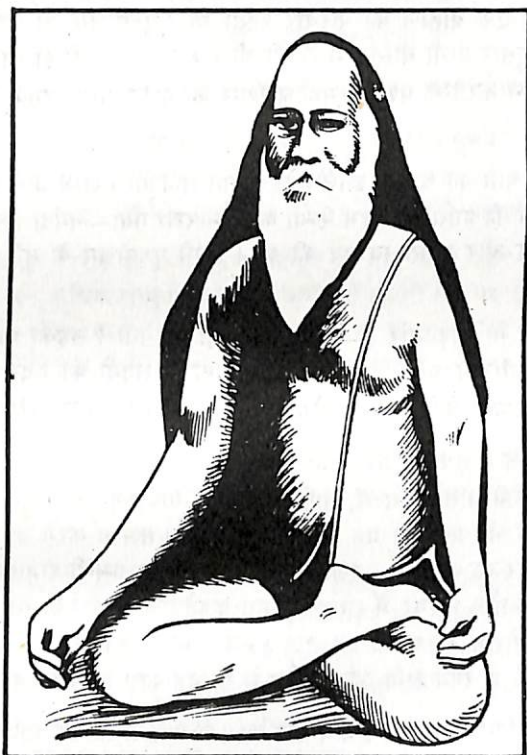
बालानन्द ब्रह्मचारी

बालानन्द ब्रह्मचारी

मध्यप्रदेश की सांस्कृतिक नगरी उज्जैन की ख्याति से सभी परिचित हैं। इस नगर में पुरुषोत्तम नामक एक ब्राह्मण का परिवार रहता था। पुरुषोत्तम की पत्नी का नाम लक्ष्मी था। नाम के अनुसार पत्नी वास्तव में लक्ष्मी थी। पति-पत्नी दोनों ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे। शिप्रा नदी में स्नान करने के पश्चात् महाकालेश्वर का दर्शन करना इनके दैनिक कार्यक्रम का एक अंग था।

दुःख इसी बात का था कि इनके कोई संतान नहीं थी। लम्बे अर्से के बाद इस दम्पति को एक कन्यारत्न की प्राप्ति हुई। इस कन्या का नाम रखा गया—नर्मदा। नर्मदा अपूर्व सुन्दरी, आकर्षक आकृति और शान्त स्वभाव की थी। उसने पुरुषोत्तम के सूने घर को आलोकित कर दिया।

पिता-माता के लाड़-प्यार में पलकर वह बड़ी हो गयी। लड़की पराया धन होती है। विवाह के बाद ससुराल चली जायगी—इस कल्पना से लक्ष्मी का हृदय घबड़ा जाता था। इधर पुरुषोत्तम अपनी बेटी के लिए योग्य वर की तलाश में अलग परेशान थे।

पत्नी के मन में नया विचार जागा। वह चाहती थी कि दामाद ऐसा मिले जो घरजमाई बनकर रहे या कहीं पास-पड़ोस में, ताकि नर्मदा माँ-बाप की निगाहों से दूर न जा सके। ब्राह्मण देवता को भी पत्नी की यह बात पसन्द आयी। तलाश करने पर एक ऐसा वर उन्हें मिल भी गया। वर का नाम था—वंशीलाल। पंजाब के ज्वालामुखी क्षेत्र का निवासी, सारस्वत ब्राह्मण, भारद्वाज गोत्र। नगर में उसका अपना कहनेवाला कोई नहीं था। सौम्य तथा पंडित था। लड़का पुरुषोत्तम को पसन्द आ गया। नर्मदा का विवाह हो गया। विवाह के पश्चात् वंशीलाल ससुराल में रहने लगा और उज्जैन में ही महाकाल के मंदिर का पुजारी बन गया।

नर्मदा पर पिता-माता का प्रभाव पड़ा था। बचपन से ही वह धार्मिक प्रवृत्ति की थी। देव-द्विजों के प्रति आस्था थी। उसे केवल एक ही बात का कष्ट था। विवाह हुए कई वर्ष बीत गये, पर अभी तक वह माँ नहीं बन सकी थी। मुहल्ले की संतानवती महिलाओं को देखती तो उसके हृदय में एक टीस-सी उत्पन्न हो जाती। फलतः यदा-कदा पड़ोसियों के बच्चों को कंठ से लगाकर ही अपने मातृत्व की प्यास बुझाती।

सहसा एक दिन उसने स्वप्न में देखा—श्री गोपालकृष्ण उसके सामने खड़े हैं, बालरूप में। उसके पास आकर बोले—"नर्मदा, चिन्ता मत करो। मैं शीघ्र ही तुम्हारी कोख से जन्म लूँगा।" यह बात सुनकर नर्मदा चौंक उठी और जाग गयी। देर तक वह अपने स्वप्न के बारे में सोचती रही।

दूसरे दिन नर्मदा ने पति को अपने देखे गये सपने की कहानी सुनायी। पत्नी की बातें सुनकर वंशीलाल ने कहा—"महाकालेश्वर तुम्हारी मनोकामना पूरी करें।"

इस घटना के एक वर्ष बाद परिवार में एक शिशु ने जन्म लिया। बालक का नाम रखा गया—पीताम्बर। यह घटना सन् १८३३ ई० की है। एक अर्से के बाद संतान होने के कारण माँ का सारा प्यार शिशु पर केन्द्रित हो गया था। पीताम्बर भी पूरी तरह मातृभक्त बन गया था।

एक दिन जब वह स्नान कर चुका तब माँ अपने काम में व्यस्त रही। घर की नौकरानी गमछा लेकर उसका बदन पोंछने को आयी तो पीताम्बर ने कहा—"मैं तुमसे बदन नहीं पोंछवाऊँगा।"

नौकरानी अवाक् होकर बोली—"क्यों ? मैंने क्या किया ?"

पीताम्बर ने कहा—"मैं अपनी माँ का बेटा हूँ। वही मेरा बदन पोंछेगी। तुम जाओ।"

नर्मदा पास ही बैठी काम कर रही थी। अपने बेटे की बातें सुनकर पुलकित हो उठी। तुरत पास आकर वह पीताम्बर के अंग पोंछने लगी। इस तरह कई बातें वह माँ से ही करवाने की जिद करता था। माँ को अपने पुत्र की इन सेवाओं से आनन्द मिलता था।

माँ के दुलार के कारण पीताम्बर जरा नटखट हो गया था। पढ़ने-लिखने की अपेक्षा खेलकूद में उसका मन अधिक लगता था। कभी-कभी माँ डाँटती थी, पर स्नेह के कारण तुरत नरम पड़ जाती थी। एक बार देर से घर लौटने पर माँ सचमुच बेहद नाराज हो गयी। डाँटती हुई बोली—"दिनभर केवल खेलना। न पढ़ना न लिखना, और न घर का कोई काम करना। क्या साधु बनकर भीख माँगेगा ?"

अपने नाती का भविष्य जानने के लिए नाना ने जन्म-कुण्डली बनवायी थी। उसमें लिखा था कि जातक भविष्य में गृहत्यागी होकर संन्यास-धर्म अपनायेगा। इस बात को नर्मदा भुला नहीं पा रही थी।

इन्हीं दिनों पीताम्बर को एक नया शौक पैदा हुआ। वह दिनभर मदारियों के साथ चक्कर काटता रहता और साँपों को वश में करने के लिए मंत्र सीखता था। यहाँ तक कि कभी-कभी साँपों के साथ खेलता भी था। उसकी इस आदत से माँ भयभीत हो उठी। उसने वंशीलाल से कहा—"जरा पीताम्बर को देखो। वह पढ़ता-लिखता नहीं। दिनभर न जाने कहाँ-कहाँ चक्कर काटता फिरता है। साँपों से खिलवाड़ करता रहता है। ले-देकर हमारा एक ही तो लड़का है। कहीं कुछ हो गया तो क्या होगा ?"

वंशीलाल ने कहा—"लड़का बड़ा हो रहा है। अधिक कड़ाई करने से कोई लाभ नहीं है। बुद्धि का विकास होने पर सब अपने-आप ठीक हो जायगा। अधिक कड़ाई करोगी तो घर छोड़कर भाग जायगा। उसकी जन्मपत्रिका की बाते क्यों भूल जाती हो ? एक न एक दिन उसका वियोग हमें सहन करना ही पड़ेगा। मनुष्य अपने मिथ्या कर्तृत्व के अभिमान से ही सुख-दुःख भोगता है। संतान के प्रति तुम्हारा स्नेह उसकी रक्षा करेगा। जीव ही जीव का भक्ष्य है, जीव जीव की रक्षा नहीं करता। जन्म, मृत्यु, संयोग, वियोग आदि ज्ञान मानव की अज्ञानता से ही उत्पन्न होते हैं।"

पति के लम्बे भाषण को सुनकर नर्मदा चुप रह गयी। उसने सोचा—पता नहीं, लड़के के भाग्य में क्या बदा है।

धीरे-धीरे पीताम्बर नौ वर्ष का हो गया। शुभ दिन देखकर वंशीलाल ने उसका उपनयन-संस्कार करने का निश्चय किया। उस दिन सबेरे से ही वंशीलाल के घर में निमंत्रित व्यक्तियों की भीड़ आने लगी। इनमें कुछ साधु-संत भी थे। उपनयन के पश्चात् कंधे पर भिक्षा की झोली लेकर पीताम्बर ने अपनी माँ के पास जाकर व्रत-भिक्षा की माँग की। उस समय पुत्र की प्रशान्त और सौम्य आकृति को देखकर नर्मदा अपने आँसुओं को रोक नहीं सकी। यह दृश्य देखकर उपस्थित लोग नर्मदा पर असंतुष्ट होकर बोल उठे—"इस मौके पर तुम्हें रोना नहीं चाहिए।"

लेकिन नर्मदा का हृदय लोगों की नाराजगी को स्वीकार करना नहीं चाहता था। उसे रह-रहकर लड़का 'गृहत्यागी संन्यासी बनेगा' वाली बात याद आ रही थी। कुछ देर बाद अपने को संयत कर उन्होंने व्रत-भिक्षा दी।

उपनयन होने के तीसरे दिन नर्मदा देवी ने पीताम्बर से कहा—"बेटा, आज तुम्हें ब्रह्मचारी भेस त्याग करना है और शिप्रा नदी में दण्ड को प्रवाहित करना है।"

माँ की बात मानने से पीताम्बर ने इनकार कर दिया। उन्होंने पूछा—"यज्ञ सूत्र रखूँगा और बाकी सब क्यों बहा दूँगा ? आधा त्याग और आधा ग्रहण, यह कैसी व्यवस्था है ? मैं इसी भेस में रहकर भगवान् का मंत्र कंठस्थ करूँगा और वेद-पाठ करूँगा।"

अन्त में माँ को कहना पड़ा—"तुम्हें एक बार ब्रह्मचारी-भेस त्यागना पड़ेगा, फिर जब इच्छा हो तब ग्रहण कर लेना।"

इस शर्त पर पीताम्बर राजी हो गये और उन्होंने माँ की आज्ञा का पालन किया।

उपनयन के पश्चात् एक दिन पीताम्बर अपने उस उस्ताद के यहाँ गये जिससे साँप का मंत्र सीखा था। उस्ताद धारा नगरी में रहते थे। वहाँ जाकर दो-तीन दिन नगर-दर्शन करने के बाद पीताम्बर ने उनसे कहा—"अब आप मुझे कोई नया मंत्र सिखा दीजिए।"

उस्ताद ने कहा—"तुम्हारा उपनयन हो गया है। अब तुम नियमित रूप से वेद-मंत्र, गायत्री-जप और संध्यावन्दन करते रहना। नर्मदा नदी को माता समझना। इसी नर्मदा नदी के किनारे एक पुण्यात्मा महापुरुष तुम्हारे निकट गुरु के रूप में आविर्भूत होंगे और तुम्हें महामंत्र देंगे। अब तुम इस वक्त अपने घर जाओ और नर्मदा माता का दर्शन करो। उज्जैन से चालीस कोस दूर बाड़ोवा नगर के खेइरीघाट से अपनी यात्रा आरंभ कर नर्मदा माता के किनारे-किनारे पद-यात्रा करते रहो।"

धारा से लौटने के बाद पीताम्बर कई दिनों तक अपने घर थे। बाद में एक दिन चुपचाप रात के वक्त बाड़ोवा नगर की ओर चल पड़े। मार्ग में भीख में जो प्राप्त होता, उसीसे अपना पेट भरते थे। गौर वर्ण किशोर संन्यासी को देखकर अधिकतर लोग आग्रह के साथ भोजन कराते थे। उन दिनों राह चलते अतिथियों को भोजन कराना, प्यासे को पानी पिलाना, शरणागत की रक्षा करना, मानव-धर्म समझा जाता था।

पुत्र के अचानक गायब हो जाने के कारण नर्मदा देवी बहुत व्याकुल हो गयीं। वंशीलाल के प्रबोध-वाक्यों से उन्हें किंचित् सांत्वना मिली, पर शान्ति नहीं मिली। दूसरी ओर वंशीलाल

ने सोचा—पुत्र होकर पीताम्बर मेरे लिए मार्गदर्शक बन गया। व्यर्थ ही मैं गृहस्थी की चक्की पीसता जा रहा हूँ। वैराग्य ही एकमात्र भगवद्-भक्ति का मार्ग है। इन्हीं बातों का चिन्तन वे लम्बे अर्से तक करते रहे।

कुछ दिनों बाद वास्तव में गृहस्थी के पचड़े से दूर होकर वंशीलाल ने भी संन्यास ग्रहण कर लिया। अब वे दिन-रात भगवान् शिव की आराधना में लग गये। कई वर्ष बाद वे शिव-लोक चले गये। पति के निधन के पश्चात् कई वर्ष तक नर्मदा देवी पैतृक निवास में रहती हुई पूजा-पाठ करती रहीं। लेकिन साथ ही उन्हें अपना अकेलापन खटकता रहा। आखिर एक दिन वे अपने पुत्र की तलाश में उज्जैन से चल पड़ीं।[1]

इधर पीताम्बर बाड़ोवा से खेइरीघाट आये। यहाँ से सिद्धनाथ तक चालीस कोस पैदल आये। मार्ग में ओंकारनाथ का भयंकर जंगल था। कहा जाता है कि सिद्धनाथ महादेव काफी प्राचीन हैं। उस पार ऋद्धनाथ का मन्दिर है। नर्मदा माता का नाभि-स्थान होने के कारण ऋद्धनाथ की ख्याति है। अधिकांश साधु-महात्मा इसी स्थान से नर्मदा की परिक्रमा प्रारंभ करते हैं।

यहाँ आने पर बालक पीताम्बर को ध्यानानन्द ब्रह्मचारी ने अपने यहाँ शरण दी। बालक में उग्र वैराग्य देखकर गनपत चैतन्य ब्रह्मचारी तथा ध्यानानन्द ब्रह्मचारी प्रभावित हुए। उन्होंने निश्चय किया कि बालक को संन्यास देना चाहिए। पीताम्बर को दंड, कमंडलु, मृगचर्म, कौपीन, कटिसूत्र आदि देने के बाद कुछ नियमों का पालन करने की आज्ञा दी।

१. पंचकेश धारण करना।
२. छत्र और पादुका का प्रयोग मत करना।
३. स्त्री-जाति को माता समझना।
४. कुमारी लड़कियों को नर्मदा माता समझना।
५. गुरु के अलावा अन्य व्यक्ति के हाथ का भोजन ग्रहण मत करना।
६. नित्य नर्मदा माता और शिव की पूजा करना।
७. भोजन तैयार करने के बाद अग्नि में आहुति देकर भोजन करना।
८. कमर से अधिक नर्मदा के पानी में मत उतरना।
९. नर्मदा माता को कभी पार मत करना।
१०. नर्मदा माता के तीर से अधिक दूर रात मत गुजारना।
११. सिले हुए वस्त्र मत पहनना।
१२. किसी गृहस्थ के घर रात्रिवास मत करना।
१३. गाँवों से भीख माँगकर खाना।
१४. अगर कोई भूखा व्यक्ति दिखाई दे तो पहले उसे भोजन देकर तब भोजन करना।

इन चौदह उपदेशों को देने के बाद उन्हें नर्मदा माता की परिक्रमा करने के लिए रवाना

१. बालानन्द ब्रह्मचारीर संक्षिप्त जीवन-कथा।

किया गया। साथ में गौरीशंकरजी महाराज थे। नर्मदा-परिक्रमा कितनी तितिक्षापूर्ण यात्रा है, इसे भाषा के माध्यम से समझाना कठिन है। वस्तुतः यह बड़ी कष्टदायक यात्रा है। यात्रा के पूर्व भोग लगाकर नर्मदा माता की पूजा होती है। भोग देने को स्थानीय भाषा में 'कड़ाई' कहा जाता है। प्रत्येक ढाई महीने बाद 'कड़ाई' का नियम पालन करना पड़ता है। इस यात्रा में उपदेश के अनुसार छाता, जूता, सिले हुए वस्त्रों का प्रयोग नहीं होता। शाम को हविष्यान्न ग्रहण किया जाता है। यात्रा के समय सर्वदा इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि किसी भी सूरत में नर्मदा को पार नहीं करना चाहिए वर्ना यात्रा खंडित हो जाती है। वैसी दशा में पुनः नये सिरे से 'कड़ाई' कर यात्रा करनी पड़ती है। नौ वर्ष के पीताम्बर को इस परिक्रमा-यात्रा में कुल बारह वर्ष लग गये।

नित्य प्रातःकाल बिस्तर से निकलने के बाद प्रातःक्रिया समाप्त करते। बाद में संध्या पूजन करने के पश्चात् गाँव में जाकर भिक्षा माँगते। लोगों के दरवाजे पर जाकर वे कुछ माँगते नहीं थे। केवल 'हर नर्मदे हर' की आवाज लगाते। इस आवाज को सुनते ही गृहस्थ बाहर आकर ब्रह्मचारी को भिक्षा देता था। भिक्षा में प्राप्त सामग्री वे साथ चल रहे संतों को बाँट देते थे।

आखिर एक दिन अन्य संतों के साथ वे भुड़िया बाबाजी के आश्रम में पहुँचे। भुड़िया बाबा सिद्ध महात्मा थे। उन्होंने बालक पीताम्बर से तरह-तरह के प्रश्न पूछे। इसके बाद बोले—"वत्स, तेरी मनोकामना पूर्ण होगी। तुम्हारे गुरु तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनसे तुम्हें शीघ्र दीक्षा प्राप्त होगी।"

इस समाचार को सुनकर पीताम्बर पुलकित हो उठा। उसने पूछा—"महाराज, मेरे गुरुदेव कहाँ प्रतीक्षा कर रहे हैं, अगर आप बता दें तो मैं उनके श्रीचरणों में जाकर प्रणाम करूँ।"

भुड़िया बाबा ने कहा—"वे गंगोनाथ के पास ही हैं।"

गुरु का पता लगते ही पीताम्बर का हृदय व्याकुल हो उठा। अगर उसके पास दो पंख होते तो उड़कर वह तुरत गुरु के पास पहुँच जाता। आखिरकार लम्बा रास्ता पार कर पीताम्बर गंगोनाथ पहुँचा। वहाँ उसे सिद्ध महापुरुष ब्रह्मानन्द ब्रह्मचारी के दर्शन हुए। ब्रह्मचारीजी बेल के पेड़ के नीचे एक कुटिया में रहते थे। कुटिया के भीतर अहरह धूनी जलती रहती थी। वहाँ घी का एक दीपक भी जल रहा था।

पीताम्बर की प्रार्थना सुनने के बाद ब्रह्मानन्दजी उससे तरह-तरह की बातें पूछने लगे। उसके उत्तरों से प्रसन्न होकर उन्होंने कहा—"तुम्हें इसी श्रावण मास की पूर्णिमा को दीक्षा दूँगा।"

दीक्षा देने के पूर्व ब्रह्मानन्दजी ने अपनी भिक्षा की झोली दिखाते हुए कहा—"इस झोली में ऋद्धि और सिद्धि दोनों हैं। इस झोली को लेकर जाओ और गाँव के लोगों से भिक्षान्न संग्रह करो। प्राप्त सामग्री से तुम्हें गाँव के निवासियों तथा नर्मदा-परिक्रमा करनेवाले सभी संतों को भोजन कराना पड़ेगा। मैं भी इसी झोली को लेकर गंगोनाथ आश्रम के लोगों को भोजन कराता हूँ।"

गुरु के आदेशानुसार पीताम्बर झोली लेकर भिक्षा माँगने निकल पड़ा। इस बालक की

तेजस्वी मूर्ति देखकर गाँव के लोग बहुत प्रभावित हुए। बड़े शौक और उत्साह से उन लोगों ने आटा, चावल, दाल, तरकारी आदि सामग्री प्रचुर मात्रा में दी जिसे लेकर वे आश्रम में आये। उन लोगों ने यह भी कहा—"दीक्षावाले दिन हम लोग आश्रम में नर्मदा माता का प्रसाद ग्रहण करेंगे।"

भिक्षा से वापस लौटने के बाद पीताम्बर ने यह समाचार ब्रह्मानन्दजी को सुनाया। सुनकर गुरुदेव प्रसन्न हो गये।

निश्चित दिन ब्रह्मानन्द ने पीताम्बर को दीक्षा देकर उनका संन्यासी नामकरण किया—बालानन्द ब्रह्मचारी। ब्रह्मानन्द महाराज तथा उनके शिष्य बालानन्द दोनों ही जगद्गुरु शंकराचार्य के जोशीमठ अन्तर्भुक्त 'आनन्द' आख्यायुक्त नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे।

एक बार बालानन्द ब्रह्मचारी ने अपने गुरुदेव के सामने यह इच्छा प्रकट की कि मैं संन्यास लेना चाहता हूँ। शिष्य की बातें सुनकर ब्रह्मानन्द ब्रह्मचारी ने कहा—"इस कलिकाल में पूर्ण रूप से संन्यास-धर्म का पालन करना कठिन कार्य है। ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर हमें सभी निष्काम कार्य करने का अवसर मिलता है। संन्यास लेने का मतलब शिखा-सूत्र त्यागकर नाना प्रकार के संतों से, अबाध गति से मिलना-जुलना पड़ेगा। इससे उच्छृंखलता और अशुचिता आने की संभावना रहती है। पूर्ण ज्ञान आने के पूर्व ही अज्ञान स्थिति में कर्म त्याग हो जाता है तब योग और ज्ञान दोनों के ही नष्ट हो जाने का भय रहता है।"

दीक्षा देने के बाद बालानन्द ब्रह्मचारी ने अपने गुरु से पूछा था—"गुरुदेव, दीक्षा देने के बदले गुरु-दक्षिणा के रूप में क्या दूँ ?"

ब्रह्मानन्द महाराज यह बात सुनकर प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा—"वत्स, तुम्हारा कथन उचित है, पर बदले में कुछ लेने के लिए मैंने तुम्हें यह मंत्र नहीं दिया है। यह ठीक है कि गुरु से दीक्षा लेने पर उसे गुरु-दक्षिणा देनी पड़ती है। लौकिक प्रथा के अनुसार शिष्य धन, वस्त्र, अन्न आदि दक्षिणा के रूप में देता है परन्तु वास्तव में यह दक्षिणा नहीं है। सिद्धि में ही गुरु-दक्षिणा है, इसलिए तुम तपस्या करो और गुरु-प्रदत्त सिद्ध बीज मंत्र से सिद्धि प्राप्त करो। तुम्हारी दी हुई सामग्री प्रतिदिन मैं संचय करता रहूँगा। यही मेरी गुरु-दक्षिणा होगी।"

गुरुदेव की बातें सुनकर बालानन्द ब्रह्मचारी आनन्द से गद्गद हो उठा। तुरत उनके चरणों पर अपना मस्तक रख दिया। ब्रह्मानन्द महाराज ने उसे उठाते हुए कहा—"वत्स, तुमने ठीक वस्तु गुरु-दक्षिणा के रूप में दी है। शरीर में मस्तक ही श्रेष्ठ स्थान है। इसी स्थान पर एक सहस्रदल कमल है, वहीं गुरुदेव विराजमान हैं। तुम नित्य प्रातःकाल सहस्रकमलदल में गुरुदेव का ध्यान करना। आज से तुम्हारा तन, मन, धन, गुरुदेव का हुआ—इस बात को सर्वदा याद रखना। जब कोई कार्य करने के लिए जाओ तब अपने गुरु का ध्यान अवश्य करना। सर्वदा यह सोचना कि वे तुम्हारे साथ हैं। ऐसी धारणा बना लेने पर तुममें विवेक-बुद्धि उत्पन्न होगी। तुम्हारे आत्माभिमान का विनाश होगा और तब इस विश्व में एकमात्र गुरुदेव ही दिखाई देंगे। तभी तुम्हें अपनी साधना में सिद्धि प्राप्त होगी।"

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

इसके साथ ही उपस्थित साधुओं ने "हर नर्मदे हर" की ध्वनि की। इस प्रकार लोगों का भण्डारा समाप्त हुआ। अब बाल ब्रह्मचारी का नाम 'बालानन्द ब्रह्मचारी' हो गया।

इसके अनन्तर बालानन्द ब्रह्मचारी को पठन-पाठन में लगाया गया। गौरीशंकर ब्रह्मचारी आपको शिक्षा देने लगे। गौरीशंकर महाराज तथा ध्यानानन्द महाराज निरन्तर उन्हें अध्यात्म-दर्शन का ज्ञान देने लगे। लगभग आठ माह तक अध्ययन करने के बाद बालानन्द ब्रह्मचारी अपने शिक्षा-गुरु गौरीशंकर महाराज के साथ पुनः नर्मदा माता की परिक्रमा करने के लिए चले गये।

गौरीशंकर महाराज सिद्ध पुरुष थे। आपके पास स्थानीय लोग कभी-कभी अपने बीमार सदस्य को लेकर आते थे। उनका उद्देश्य था कि बाबा कोई जड़ी-बूटी दें ताकि रोगी स्वस्थ हो जाय। गौरीशंकर महाराज आगन्तुकों को मंत्रपूत कालीमिर्च और भभूत देते थे। इससे रोगी रोगमुक्त हो जाता था। कभी-कभी यह कार्य बालानन्द ब्रह्मचारी को करना पड़ता था।

भ्रमण और अध्ययन के पश्चात् बालानन्द महाराज को हठयोग का ज्ञान कराया गया। हठयोग के समय साधक को अपने दैनिक जीवन में काफी संयम बरतना पड़ता है, क्योंकि इसके बाद ही राजयोग का अभ्यास करना पड़ता है। उन्होंने कहा है—

"हठं विना राजयोगं राजयोगं विना हठः।
न सिद्ध्यति ततः युग्ममालिप्स्यते समभ्यसेत्।"

इन योगों को न तो सर्वसाधारण के सामने करना चाहिए और न इस सम्बन्ध में किसी से कुछ प्रकट करना चाहिए—

"हठविद्या परा गोप्या योगिना सिद्धिमिच्छता।"

अगर योगी हठयोग में पारंगत हो जाय तो वीर्यवान् पुरुष बन जायगा। प्रकट रूप से करने यानी नटों की तरह लोगों के सामने प्रदर्शन करने पर कोई लाभ नहीं होता, बल्कि इससे उसे हानि ही होती है तथा कोई आध्यात्मिक ज्ञान भी प्राप्त नहीं होता।

एक दिन की बात है। बालानन्द महाराज भोजन का प्रबंध करने के बाद ज्योंही खाने के लिए बैठे त्योंही एक वृद्धा आयी और बोली—"बेटा, मैं भूखी हूँ। कुछ खाने को दो।"

बालानन्दजी वृद्धा की बातें सुनकर चकित रह गये। उन्हें गुरु के उपदेशों का ध्यान आया। वृद्धा देखने में अत्यन्त क्षीणकाय थी, पर उसकी आवाज में मधुरता थी जिसका प्रभाव बालानन्द महाराज पर व्यापक रूप से पड़ा। उनकी अन्तर्दृष्टि ने सूचित किया कि वृद्धा कोई साधारण मानवी नहीं है। इसमें जरूर कोई रहस्य है। उन्होंने एक रोटी और कुछ साग देते हुए कहा—"लो माँ, खाओ।"

वृद्धा रोटी लेकर खाने लगी। बालानन्द महाराज उसे एकटक देखते रहे। जब उसकी रोटी समाप्त हो गयी तब उन्होंने एक और रोटी उसकी ओर बढ़ायी। वृद्धा ने कहा—"नहीं बेटा, अब नहीं। तुम्हारे भोजन में कमी हो जायगी।"

ब्रह्मचारीजी ने कहा—"नहीं माँ। तुम भूखी हो। तुम भरपेट खा लो।"

इस अनुरोध पर वृद्धा ने आधी रोटी और लेकर खा गयी। पानी पीने के बाद बोली—"मेरी भूख मिट गयी। तुम्हारा हृदय पूर्ण हो, वासना-तृष्णा मिट जाय। तुम युग-युग जीते रहो।" इतना कहते-कहते वह अदृश्य हो गयी।

वृद्धा का इस प्रकार अन्तर्धान होना बालानन्दजी के लिए चकित कर देनेवाला दृश्य था। उन्होंने अनुमान लगाया कि वह सामान्य महिला नहीं थी। कहीं वह नर्मदा माता तो नहीं थीं ? क्या वृद्धा के रूप में जगदम्बा माता दर्शन देने आयी थीं ? इन्हीं बातों की चिन्ता में वे खो गये। सहसा उनकी नजर सामने रखी डेढ़ रोटियों पर पड़ी। अब उसे खाने की इच्छा नहीं हुई।

रह-रहकर वे उस वृद्धा के बारे में चिन्तन करने लगे। उनके हृदय से स्वतः ध्वनित होने लगा—"माँ, तुम आयी, पर आकर भी अपना रूप नहीं दिखा सकी।"

इस प्रकार वे कुछ देर तक विलाप करते रहे। सहसा कहीं से आवाज आयी—"वत्स, अब तुम कातर मत हो, विलाप मत करो। मेरा प्रसाद जो रोटियाँ सामने हैं—ग्रहण करो। मैं बराबर तुम्हारे हृदय के अनुराग के साथ हूँ।"

इन बातों से बालानन्द महाराज आनन्द से भर गये। नर्मदा माता का प्रसाद ग्रहण करने के साथ ही उनका हृदय अपूर्व क्रान्ति से भर उठा।

बालानन्द महाराज के गुरु ब्रह्मानन्द ब्रह्मचारी अत्यन्त शक्तिशाली योगी पुरुष थे। आपकी ऐसी (ईश्वरी) -शक्ति से महर्षि अरविन्द प्रभावित थे। ब्रह्मानन्द महाराज की आयु काफी लम्बी थी। वे अक्सर कहा करते थे कि उन्होंने अपने जीवनकाल में तीन गायकवाड़ों को गद्दी पर बैठते देखा है। बचपन में मैंने शिवाजी को देखा था। सन् १९०६ में जब देवघर में शिव मंदिर का निर्माण हुआ तब वे परलोकवासी हुए। ऐसे महात्मा स्वरोदय शास्त्र में सिद्ध होते हैं जिन्हें यह मालूम रहता है कि वे कब शरीर छोड़ेंगे। ब्रह्मानन्द महाराज ने हँसते-हँसते अपना प्राण त्याग दिया था।

भारतीय संत पर्यटन को साधना का एक अंग समझते हैं। पर्यटन करते हुए भारत के सभी तीर्थ एवं जाग्रत स्थानों का दर्शन करते हैं। इस दौरान अनेक उच्चकोटि के संतों से मुलाकातें होती हैं। बालानन्द महाराज भी पर्यटन पसन्द करते थे। वे हिमालय पर्वत के एक छोर से दूसरे छोर तक निरन्तर भ्रमण करते रहे, बिना किसी पाथेय के। केवल कौपीन, कमंडल और भिक्षा की झोली साथ रखते थे। गृहस्थों के घर या लोकालय में आना उन्हें पसन्द नहीं था। इस सम्बन्ध में वे कहा करते थे—"जंगल में ही मंगल है। शहरों में मानवों के जंगल में खो जाने में आता है।" इस यात्रा में कितनी मुसीबतें उठानी पड़ती हैं, इसका विवरण निम्नलिखित घटना से मिल जायेगा।

एक बार वे कामाख्या देवी का दर्शन करने के लिए रवाना हुए। मार्ग में हैजे से पीड़ित हो गये। उस समय तक आपका कोई शिष्य या भक्त नहीं बना था। एकाकी, निःसहाय थे। कई दिनों तक अनाहार रहने के कारण भूख से व्याकुल हो उठे। राह से गुजरनेवालों से आप यह अनुरोध करने लगे कि सामने के कुएँ से कई बाल्टी पानी निकालकर मुझ पर छोड़ने की कृपा करें। मेरी झोली में कुछ चावल है। कुएँ की जगत् पर दो ईंटें रखकर लोटे में चावल डाल दो। आसपास के सूखे पत्तों के जलावन से आग जला दो। उबल जाने पर मैं उतारकर खा लूँगा। कोई पथिक मदद कर देता और कोई आगे बढ़ जाता। इस प्रकार पथचारियों की मदद से आप भोजन करते रहे।

आपके बारे में आपके शिष्य श्री प्राणगोपाल मुखर्जी ने लिखा है—"गुरु महाराज पूर्ण

उपासक थे। प्राण के त्रिवेणी-संगम में उनकी पूर्ण प्रतिष्ठा थी। वे थे—कर्मी, भक्त और ज्ञानी। आपने अपने साधना-जीवन में, हठयोग-क्रिया में पारदर्शी बनकर शरीर की समस्त इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की थी। बाद में राजयोग की साधना से मन-बुद्धि पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया था। उनकी बुद्धि सहज मुक्त अवस्था प्राप्त कर चुकी थी। मध्य जीवन में जप-ध्यान के साथ प्राणायाम करते थे। इससे प्राण स्वाभाविक रूप से न्यासाभ्यन्तचारी होता गया और तब स्वर के ऊपर लक्ष्य रखने लगे। इसी एक लक्ष्य पर उनकी अखण्ड स्थिति थी। अक्सर उनके प्राण स्वाभाविक गति से अपने-आप दीर्घ-सूक्ष्म होकर सहज-ध्यान में जुड़ जाते थे। यही कारण है कि उनके निकट बैठे रहने पर व्यक्ति को प्रायः महाध्यान का स्पर्श-बोध होता था।''

श्री प्राणगोपाल मुखर्जी महाराज उनके प्रिय शिष्य तो थे ही, स्वयं भी एक उच्चकोटि के साधक थे। गुरु महाराज के द्वारा बताये प्राणायाम और योग-साधना में वे जीवनपर्यन्त लगे रहे।

भ्रमण करते हुए बालानन्द महाराज एक बार वैद्यनाथ धाम आये। यहाँ स्थित तपोवन पहाड़ का रमणीक स्थान आपको इतना पसन्द आ गया कि वहीं आपने धूनी रमा ली। कुछ ही दिनों के भीतर आपकी योग-विभूति की चर्चा लोगों की जबान पर नाचने लगी। भक्तों की भीड़ बढ़ने लगी। ध्यानगृह और कुटिया का निर्माण हुआ। यहीं आप शंकर की उपासना में निमग्न हो गये। जटाधारी ब्रह्मचारी के अंग-प्रत्यंग से दिव्यज्योति निकलने लगी। भक्तों ने आपको जीवन्त शंकर मानकर श्रद्धा-पूजा करना प्रारंभ किया।[१]

कुछ दिनों बाद आप यहाँ से पुनः भ्रमण के लिए निकल पड़े। आपकी प्रिय भूमि देवतात्मा हिमालय की मिट्टी थी। वास्तव में वे शहर तथा गाँवों में रहना पसन्द ही नहीं करते थे। देश के पीड़ित नागरिकों को देखकर उन्हें कष्ट होता था। इसी चिन्ता में साधना नहीं कर पाते थे। कभी-कभी पर्यटन करते हुए नीचे चले आते थे।

एक बार आप रानाघाट आये। न जाने कैसे वहाँ के मजिस्ट्रेट श्री रामचरण बसु आपसे बहुत प्रभावित हुए। यह दैवसंयोग की बात है। संभवतः गुरु महाराज की कृपा से बालानन्द महाराज के लिए यह संभव हुआ। रामचरण बसु तथा उनकी पत्नी ने आपसे दीक्षा ली। यहीं आपके प्रिय शिष्य पूर्णानन्द ब्रह्मचारी मिले जो दीक्षा लेने के बाद बराबर अपने गुरु बालानन्द ब्रह्मचारी के साथ रहने लगे। व्यक्तिगत सेवा के लिए बालानन्द महाराज को ऐसे सेवक की आवश्यकता थी।

बराबर बालानन्द महाराज की सेवा में रहने के कारण भक्त लोग पूर्णानन्द ब्रह्मचारी को 'छोटे बाबा' के नाम से पुकारने लगे। महाराज के साथ पूर्णानन्दजी हिमालय की यात्रा पर गये थे।

एक बार बालानन्द महाराज आमलीघाट से मण्डाला नगर में आये। उन दिनों आपके साथ हरनामदास नामक एक साधु थे। दोनों ही व्यक्ति नर्मदा के किनारे से चल रहे थे। मार्ग में किसी अंग्रेज का बँगला मिला। यह अंग्रेज जरा कड़े मिजाज का था। इसने इन दोनों

---

१. संन्यासिनी आशापुरी।

संन्यासियों को छद्मवेशी डाकू समझकर सिपाहियों को बुलाया और आदेश दिया कि उन दोनों साधुओं को यहाँ ले आओ।

जब महाराज और हरनामदास वहाँ पहुँचे तब उसने सिपाहियों से इनकी तलाशी लेने की आज्ञा दी। हरनामदासजी के झोले में भिक्षान्न के अलावा अन्य कोई सामग्री नहीं मिली, पर महाराज के झोले में संखिया था। यह देखकर साहब आपे से बाहर हो गया। उसने कहा—"तुम लोग डाकू हो। भोले भाले लोगों को संखिया खिलाकर लूटते हो।"

महाराज ने कहा—"आपका ख्याल गलत है। हम लोग जाड़े के दिनों में सर्दी से बचने के लिए कभी-कभी इसका सेवन करते हैं।"

साहब को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। उसने महाराज से कहा—"मैं विश्वास नहीं करता। मेरे सामने खाओ।"

साहब की बात पर महाराज ने संखिया से आधी रत्ती का एक टुकड़ा खाकर नर्मदा का पानी पी लिया। इसके बाद हठयोग की सहायता से उसे पचा गये और पहले की तरह खड़े होकर मुस्कराने लगे।

महाराज की हठयोग-शक्ति को देखकर साहब चकित रह गया। कहा जाता है कि आगे वह इनका भक्त बन गया था।

नर्मदा की परिक्रमा करते समय जैसे पहले उन्होंने कई जंगल और टीले पार किये थे उसी तरह इस यात्रा को भी पूर्ण किया। कुल मिलाकर लगभग १५०० कोस मार्ग तय करना पड़ता है। इस यात्रा को पूर्ण करने के बाद समुद्र किनारे स्थित सभी तीर्थस्थानों में गये। उन्होंने एक बार स्वयं ही कहा था कि मैं भारत के तीर्थों का तीन-तीन बार दर्शन कर चुका हूँ।

बालानन्द महाराज जिन दिनों देवघर के तपोवन में थे, उन दिनों एक महत्त्वपूर्ण घटना हो गयी थी। रामचरण बसु पुराणदह में ठहरे हुए थे। अचानक एक दिन उन्होंने अपने गुरुदेव को अपने यहाँ लिवा लाने के लिए एक आदमी को भेजा। अपने प्रथम तथा प्रधान शिष्य रामचरण बसु के बुलावे पर उनके घर आ गये।

कुछ देर गुरु-शिष्य आपस में बातचीत करते रहे। बाद में बसु महाशय गुरु के सामने पद्मासन लगाकर बैठ गये और बोले—"महाराज, आज्ञा हो तो मैं जाऊँ ?"

महाराज ने कहा—"हाँ बच्चा, यही चलने का समय है।"

दूसरे ही क्षण गुरुभक्त रामचरण बाबू इष्टनाम लेते हुए गुरु के चरणों पर गिर पड़े।

पर्यटन-काल में एक दिन बालानन्द महाराज को एक पत्र प्राप्त हुआ। गुरुदेव के नाम आनेवाले सभी पत्र छोटे बाबा पढ़कर सुनाते थे। यह पत्र रामचरण की विधवा पत्नी कात्यायनी देवी का था। उन्होंने लिखा था कि मैं अपने पति की इच्छानुसार देवघर के करणीवाद में एक टुकड़ा जमीन खरीदकर एक शिव मंदिर बनवा चुकी हूँ। मेरी इच्छा है कि गुरुदेव अब यहीं आ जायँ। मैं अपने स्वर्गीय पति की इच्छानुसार सब कुछ बनवाकर आपके आने की प्रतीक्षा कर रही हूँ।

इस पत्र को सुनाने के बाद छोटे बाबा आग्रह करने लगे कि अब देवघर में ही आसन

लगाया जाय। किन्तु इस दिशा में कोई उत्साह बालानन्दजी ने नहीं दिखाया। वे हिमालय से नीचे उतरने को तैयार नहीं हुए।

अचानक एक दिन पूर्णानन्द को बुलाकर उन्होंने कहा—"परमात्मा का अजीब खेल है। करणीवाद जाने की तनिक भी इच्छा नहीं है, पर इधर जब भी आसन पर ध्यान लगाता हूँ तब ध्यानाकाश में करणीवाद का दृश्य नाचने लगता है। पता नहीं, कौन मुझे वहाँ जाने के लिए बार-बार आह्वान कर रहा है।"

परमात्मा की अमोघ इच्छा से बालानन्द महाराज को करणीवाद आना पड़ा। संभवतः यह उनके पूज्य गुरु ब्रह्मानन्द तथा उनकी माँ की प्रेरणा थी। जिन दिनों आप करणीवाद में आये, उन दिनों आपकी उम्र छप्पन वर्ष थी यानी यह सन् १८८६ ई० की घटना है।

वैद्यनाथ धाम के करणीवाद में कात्यायनी देवी के मातृस्नेह में आबद्ध हो गये। उनके स्वर्गीय पति श्री रामचरण बसु के नाम पर प्रतिष्ठित "राम निवास ब्रह्मचर्य आश्रम" प्रतिष्ठित हुआ। इसके बाद क्रमशः इस स्थान का विस्तार होता गया। श्री बालानन्द महाराज की अधिष्ठात्री देवी श्री श्री बालेश्वरी देवी की स्थापना हुई। इस देवी का नाम है—श्री श्री बालानन्दस्य ईश्वरीबाला त्रिपुरासुन्दरी। बालानन्द की इष्टदेवी होने के कारण बाला त्रिपुरा-भैरवी है। ज्ञातव्य है कि शंकराचार्यजी की भी यही देवी इष्ट हैं।

परमगुरु ब्रह्मानन्द महाराज के निर्देशानुसार पूर्णानन्द ब्रह्मचारी इस मूर्ति को नेपाल से लाये थे। इस मूर्ति की पूजा-पद्धति बालानन्द महाराज के निर्देशानुसार पूर्णानन्द ब्रह्मचारी करते रहे। श्री श्री बालेश्वरी माता का वाहन कूर्म है। चार हाथ हैं जिनमें वेद, अक्षमाला, अभयमुद्रा और वरमुद्रा है। ललाट पर अर्द्धचन्द्र और शरीर पर जनेऊ है।

बालानन्द महाराज जब यहाँ पूर्ण रूप से स्थापित हो गये तब परमगुरु ब्रह्मानन्दजी भी यहीं आ गये। उधर माँ अपनी खोयी हुई संतान को खोजती हुई एक दिन वैद्यनाथ धाम आ गयी। नौ वर्ष का बालक छप्पन का हो गया था। माँ को पाकर बालानन्द महाराज पुलकित हो उठे। नर्मदा देवी जीवन के अंतिम काल तक तपोवन में रहीं। उनके निधन के पश्चात् वहीं एक समाधि-मंदिर का निर्माण हुआ।

बालानन्द महाराज की एक अन्य शिष्या श्रीमती चारुबाला देवी ने उन दिनों नौ लाख रुपये से विशाल युगल मंदिर बनवाया। उसमें अपने गुरु बालानन्द महाराज तथा इष्ट बाल गोपाल विग्रह की स्थापना की गयी, इसीलिए इस मंदिर का नाम 'युगल मन्दिर' रखा गया। लेकिन स्थानीय लोग इस मंदिर को 'नौलखा मंदिर' कहते हैं।

बालानन्दजी के योगैश्वर्य की ख्याति धीरे-धीरे संपूर्ण बंगाल में फैल गयी। आपके शिष्यों में बंगाली अधिक हैं। संत मोहनानन्द ब्रह्मचारी आप ही के शिष्य हैं। बालानन्दजी साधन-भजन के अलावा स्थानीय लोगों की सेवा करते रहे। लोककल्याण के लिए आपने खैराती दवाखाना, वेद अध्ययन के लिए पाठशाला, ब्रह्मचारियों के लिए रामनिवास ब्रह्मचर्याश्रम, होमकुण्ड, नर्मदा कुण्ड और पूजा मंडप का निर्माण कराया।

अपनी अलौकिक शक्ति से उन्होंने मोहन को उस समय आकर्षित किया जब वे कालेज में पढ़ रहे थे। मोहन चुपचाप एक दिन कालेज से गायब हो गया और बालानन्द महाराज

की सेवा में आ गया।[1] मोहनानन्द ब्रह्मचारी के पिता-माता, मामा (प्राणगोपाल), मामी, चाचा आदि सभी बालानन्द महाराज के शिष्य बन गये थे।

परमहंस रामकृष्णजी ने स्वामी विवेकानन्दजी को अपनी सारी शक्ति देने के बाद कहा था—"आज तुझे अपना सब कुछ देकर मैं फकीर बन गया।" ठीक इसी प्रकार बालानन्द महाराज अपना सब कुछ मोहनानन्द ब्रह्मचारी को दे गये थे। प्रत्यक्षदर्शियों का कहना है कि जिस वक्त श्री बालानन्द महाराज अपना तन छोड़ रहे थे, उस वक्त एक दिव्यज्योति उनके शरीर से निकलकर सामने बैठे मोहनानन्द ब्रह्मचारी के शरीर में प्रवेश कर गयी थी।

महामहोपाध्याय पंडित गोपीनाथ कविराज ने बालानन्द के बारे में अपने संस्मरण में लिखा है—

"ब्रह्मचारीजी अधिकतर देवघर में रहते थे। उनसे मिलने की इच्छा तीव्र हो उठी। उनके तपोवन का पता मालूम था और वहाँ तक पहुँचने का रास्ता जानता था, पर साथी के अभाव में वहाँ जा नहीं सका। मेरे एक रिश्तेदार कम उम्र में संन्यासी बनकर भारत के अनेक तीर्थों का दर्शन कर चुके थे और अनेक साधु-सन्तों को देख चुके थे। आपकी जबानी ब्रह्मचारीजी के बारे में विस्तार से सुना था।

"उज्जैन के सारस्वत ब्राह्मण-वंश में आपका जन्म हुआ था। संन्यास ग्रहण करने के पूर्व आपका नाम पीताम्बर था। गंगोनाथ ब्रह्मानन्द महाराज से दीक्षा लेने के बाद आपका नाम हुआ—बालानन्द। इस प्रकार ज्योतिर्मठ की आनन्द उपाधि प्राप्त कर साधक-वंश के अन्तर्भुक्त हुए।

"सात्त्विक संस्कार आपमें बचपन से ही था। शिप्रा नदी के तट पर उज्जैन स्थित भर्तृहरि और गोरखनाथ की गुफाओं में आपका आना-जाना जारी था। कभी-कभी सन्दीपन मुनि के जंगलवाले आश्रम में जाते थे।

"गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज में जब मैं कार्यरत था तब एक बार बालानन्द ब्रह्मचारी के प्रधान शिष्य श्रीमान् प्राणगोपाल मुखोपाध्याय मुझसे मिलने के लिए काशी आये थे। आप स्वयं एक तपस्वी पुरुष थे। आपसे मुलाकात होने के बाद ब्रह्मचारीजी से मिलने की इच्छा तीव्र हो उठी, पर समयाभाव के कारण मिल नहीं सका।

"सन् १९३५ में बेरी-बेरी से पीड़ित होकर जब हवा-पानी बदलने के लिए शिमूलतला आकर रहने लगा तब शिवरात्रि के दिन शिव-पूजा करने के लिए वैद्यनाथ धाम गया। उन्हीं दिनों वहाँ प्राणगोपाल बाबू से भेंट हुई। गृहस्थाश्रम में रहते हुए वे संन्यासियों जैसा जीवन व्यतीत कर रहे थे। बालानन्द महाराज आपको 'शुक्ल संन्यासी' कहते थे और यही नाम आपका देवघर में प्रसिद्ध था। प्राणगोपाल बाबू मुझे साथ लेकर ब्रह्मचारीजी के पास आये। ब्रह्मचारीजी अस्वस्थ थे। उन दिनों नर्मदा कुण्ड के समीप एक निर्जन स्थान में रहते थे। इस बेमौके पर उन्होंने जिस ढंग से आदर-स्वागत किया, ऐसा कम लोग करते हैं।

"बातचीत के पूर्व मुझे तथा दो अन्य व्यक्तियों को उन्होंने बड़े स्नेह के साथ जलपान कराया। हम लोग फलाहार करने में व्यस्त थे और आप खिलाने का आनन्द ले रहे थे। उनके स्नेहपूर्ण व्यवहार को अनुभव करते हुए हम लोग भी आत्ममग्न हो गये।

---

१. देखिये श्री मोहनानन्द ब्रह्मचारी का विवरण।

"फलाहार के बाद तत्त्वकथा की चर्चा होने लगी। 'स्वरोदय-विज्ञान' के बारे में मैंने कई सवाल किये। ब्रह्मचारीजी ने इस सम्बन्ध में अनेक नये तथ्यों को उदाहरण देते हुए मुझे समझाया। इसके बाद उन्होंने कहा—'कविराजजी, इस बारे में मैं क्या कहूँगा। आपके गुरुदेव[1] इस विषय के विशेषज्ञ हैं। उनकी तरह विज्ञान-अभिज्ञ पुरुष बिरले होंगे। पुरी के दिगम्बर बाबा (तोतापुरी) इस शास्त्र में पारंगत हैं।'

"बाद में अनेक गूढ़ तत्त्वों पर बातें होती रहीं। लौटते वक्त उन्हें सादर प्रणाम कर चला आया। यही मेरी प्रथम और अन्तिम मुलाकात थी।"

कविराजजी के अलावा भारत के अन्य कई सन्त-महात्मा बालानन्द महाराज के आश्रम में आये थे। जब दो संत मिलते हैं तब आपस में अध्यात्म की चर्चा होती है।

अपने शिष्यों को बराबर कहा करते थे—"ज्ञान और कर्म के माध्यम से हम ईश्वर के समीप पहुँचते हैं, यह बात सत्य है, पर भक्ति के बिना ईश्वर को स्पर्श नहीं किया जा सकता। इसके लिए विश्वास और भक्ति आवश्यक है और वह भी अनन्य भक्ति। यहाँ हरिनाम या शिवनाम में कोई भेद नहीं है।"

इसमें कोई संदेह नहीं कि बालानन्द महाराज एक साधक ही नहीं, बल्कि योगी पुरुष थे। जिस प्रकार स्नेहमयी माता अपने बच्चों को नजर से ओझल नहीं होने देती, ठीक उसी प्रकार महाराज अपने शिष्यों का ध्यान रखते थे। यही कारण है कि उनके अधिकांश शिष्य आपके देव ज्ञान में श्रद्धा-भक्ति करते थे। अपने आश्रम में शिष्यों को दीक्षा देने के बाद उनसे जन-सेवा का कार्य लेते थे। जब कभी कोई शिष्य साधना या तीर्थ-दर्शन करने के लिए बाहर जाना चाहता था तब उसे स्नेहमयी माता की तरह मना करते थे। अगर इस पर वह जिद करता तो कहते—"ठीक है। जाओ, पर मुझे छोड़कर दूर मत जाना। शीघ्र आश्रम चले आना। यह याद रखो, जब पेड़ों पर फल पकने लगते हैं तब वह मीठे लगते हैं। उनकी कीमत बढ़ जाती है। लेकिन मानव के बारे में यह बात लागू नहीं होती। मनुष्य जैसे-जैसे बूढ़ा होता जाता है, वह विस्वाद और अनादर की वस्तु बन जाता है। मैं निरन्तर बूढ़ा होता जा रहा हूँ, शायद इसीलिए तुम लोग मेरे पास नहीं रहना चाहते। कहाँ जाओगे ? जहाँ जाओगे, वहाँ कष्ट पाओगे। तब मुझे दुःख होगा। यहीं रहकर साधन-भजन करो। सिद्धि यहीं प्राप्त होगी।"

बालानन्द महाराज को अपना अन्तिम समय ज्ञात हो गया था। उन दिनों वे आहार, औषध, पथ्य, पानी आदि ग्रहण नहीं करते थे। यहाँ तक कि कौपीन तक दूर फेंक दिया था। मई, सन् १६३७ में १०४ वर्ष की अवस्था में वे ब्रह्मलीन हो गये थे।

भक्तों ने प्रणाम किया—

श्री बालानन्दं परमशिवदं,
सद्‌गुरुं त्वं नमामि।

●

---

१. परमहंस विशुद्धानन्दजी।

प्रभु जगद्बन्धु

प्रभु जगद्बन्धु

मुर्शिदाबाद शहर के उस पार गंगा किनारे एक गाँव का नाम है—डाहापाड़ा। इस गाँव के दीनानाथ चक्रवर्ती ने अपनी प्रतिभा के बल पर 'न्यायरत्न' की उपाधि प्राप्त की थी। आपकी पत्नी श्रीमती वामासुन्दरी देवी शीतल चौधरी की कन्या थीं। १७ मई, सन् १८७१ ई० के दिन इस परिवार में एक बालक ने जन्म लिया जिसका नाम रखा गया—जगत्। कई बच्चों को खोने के पश्चात् इस बालक को पाकर चक्रवर्ती-दम्पती आनन्द के सागर में डूब गये।

लेकिन यह आनन्द अधिक दिनों तक स्थायी नहीं रह सका। बालक, जिसका अन्नप्राशन के समय जगद्बन्धु नाम रखा गया था, अभी चौदह महीने का ही था कि माँ चल बसी। पत्नी के बिछोह से दीनानाथ एक प्रकार से विक्षिप्त-से रहने लगे। मातृहीन बालक की देखरेख और जीविका के लिए कार्य करने में उन्हें परेशानी होने लगी। कुछ दिनों बाद अपनी विधवा भतीजी दिगम्बरी के यहाँ जाकर जगत् को सौंप आये।

इस घटना के चार वर्ष बाद पिता दीनानाथ भी सुरधाम चले गये। जगत् पूर्ण रूप से अनाथ होकर अपनी बहन की छत्रच्छाया में रहने लगा।

जगत् बचपन से ही चंचल स्वभाव का था। अपने हमजोलियों के साथ पेड़ पर चढ़ना, नदी में तैरना, बागों में घूमना उसका नित्य का काम था। इसके अलावा उसमें कई और खूबियाँ थीं। वह कभी लड़कियों के साथ नहीं खेलता था। हमजोलियों के साथ न मारपीट करता और न गाली बकता था। जिस प्रकार वह बड़ों का सम्मान करता, उसी प्रकार छोटों से प्यार करता था। उसकी इस आदत के कारण सभी लोग उसे चाहते थे।

समय गुजरता गया। उसे फरीदपुर स्थित एक स्कूल में भर्ती कर दिया गया। जिला स्कूल में अध्ययन करते समय उसकी चंचलता में थोड़ी कमी आ गयी। अब वह अक्सर सुनसान स्थान में जाकर बैठा रहता। अन्यमनस्क की तरह एकटक कहीं देखता रहता। स्कूल में सहपाठियों से रफ्त-जब्त नहीं करता था। स्कूल से लौटकर घर में न रहकर किसी सुनसान स्थान में चला जाता और जहाँ बैठता, वहीं कभी-कभी सो भी जाता था। राह चलते लोग यह दृश्य देखकर उसे कंधे पर लादकर घर ले आते थे।

जिन दिनों जगत् आठवीं श्रेणी में पढ़ रहा था, उन दिनों वार्षिक परीक्षा के दिन एक घटना हो गयी। आदत के मुताबिक कापी में लिखते-लिखते एकटक एक ओर देखने लगा। उसी समय प्रधान शिक्षक श्री भुवनमोहन आये। उसे इस तरह देखते देख उन्होंने सोचा कि अन्य किसीकी कापी से नकल कर रहा है। उसे तुरत परीक्षा हाल से बाहर निकाल दिया गया।

स्कूल से निकलकर जगत् घर न जाकर सीधे स्टेशन चला आया। वहाँ से कलकत्ता होकर राँची चला आया जहाँ उसके चचेरे भाई तारिणीचरण चक्रवर्ती रहते थे। तारिणीचरण ने उसे वहीं के एक स्कूल में भर्ती करा दिया।

राँची आने पर भी जगत् की आदतों में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ। पहले की ही तरह अब भी वह हमेशा खोया-खोया-सा रहता था। अधिकतर निर्जन या अपने कमरे में बैठा रहता। न समय से स्नान करता और न भोजन। स्नान करने में काफी देर लगाता। उसकी इस आदत के कारण घर के नौकर असंतुष्ट रहते। परिवार में अन्य कोई न रहने के कारण नौकर और रसोइया सामान चोरी करते थे। जगत् के आ जाने के कारण उन्हें चोरी करने में भय लगने लगा। उसे यहाँ से भगाने के लिए वे उसे भोजन ठीक से नहीं देते। बाद में जगत् को बेवकूफ समझकर वे दोनों पहले की तरह चोरी करने लगे। लेकिन उन्हें हमेशा इस बात का भय बना रहता कि कहीं किसी दिन तारिणी बाबू से वह हमारी शिकायत न कर दे। ऐसा सोचकर एक दिन दोनों ने सलाह करके उसके भोजन में जहरीली दवा मिला दी। इस भोजन को खाने के कारण जगत् की हालत खराब हो गयी। समाचार पाते ही आफिस से तारिणी बाबू आये। डॉक्टरी सहायता से वह सम्हल गया। रसोइया फरार हो चुका था। नौकर की जब जमकर पिटाई की गयी तब उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। इस घटना के कारण तारिणी बाबू घबड़ा गये। अकेले घर में जगत् को रखना ठीक नहीं है समझकर उन्होंने अपने जीजा प्रसन्नकुमार लाहिड़ी के यहाँ उसे रखवा दिया। लाहिड़ी महाशय ने अपने नगर पाबना के एक स्कूल में उसे भर्ती करा दिया।

पाबना में रहते समय इस पर भगवत्-कृपा हुई। राह चलते किसी संन्यासी को देखते ही वह भूमिष्ठ होकर प्रणाम करता। दूर कहीं से हरिनाम-कीर्तन की ध्वनि सुनते ही उधर दौड़ा चला जाता। बाधा देने पर भी नहीं मानता था। कीर्तन में हरिनाम सुनते-सुनते उसे भाव-समाधि हो जाती थी। ऐसी स्थिति में लोग उसे कंधे पर लादकर घर पहुँचाते थे।

अक्सर ऐसी घटनाएँ होने लगीं तब सुशीलबाबू चिन्तित हो उठे उनकी पत्नी जगत् को डाँटने-फटकारने लगीं लेकिन इसका कोई असर जगत् पर नहीं हुआ। वह कीर्तन की ध्वनि सुनते ही जहाँ रहता था, वहीं से दौड़ता हुआ उस जगह पहुँच जाता था।

एक बार कहीं हरिकीर्तन होगा सुनकर वह जाने की तैयारी करने लगा। उसकी बहन ने उसे पकड़कर एक कमरे में बन्द कर दिया। इधर कीर्तन प्रारंभ हुआ और वह कमरे के भीतर प्रत्येक ताल पर नृत्य करते-करते बेहोश हो गया। खिड़की के बाहर से लोग यह दृश्य देख रहे थे। त्रस्त भाव से लोग भीतर आये। काफी सेवा-शुश्रूषा करने के बाद वह होश में आया।[१]

इसी प्रकार एक बार पाबना शहर में एक स्थान पर 'ध्रुव-चरित्र' नाटक हो रहा था। नाटक में ध्रुव का पार्ट करनेवाला अभिनय के दौरान गाने लगा—'कहाँ हो पद्म पलाश लोचन हरी'। यह गीत सुनते ही जगत् का हृदय व्याकुल हो उठा। कुछ देर तक रस-ग्रहण करने के बाद वह भाववेश में आ गया और देखते ही देखते चेतनाशून्य हो गया।

जगत् की यह स्थिति देखकर खलबली मच गयी। कुछ लोग जगत् की इस आदत से

---

१. बन्धुकथा–श्री सुरेशचन्द्र चक्रवर्ती।

परिचित थे। दर्शकों में डॉ० चन्द्रशेखर काली भी थे। उन्हें भावावेश का यह नाटक ज्ञात हुआ। उन्होंने कहा—'यह बीमारी है। जरा मुझे जाँचने दीजिए।'

जगत् को पकड़कर लोग पास के कमरे में ले आये। डॉक्टर का ख्याल था कि यह स्नायविक रोग है या मस्तिष्क-विकृति के लक्षण हैं। अच्छी तरह जाँचने के बाद उन्हें कोई विकृति नजर नहीं आयी। लोगों ने कहा कि यह भावावेश है। कीर्तन या हरि-भजन सुनते ही जगत् की यह हालत हो जाती है और फिर भजन सुनते-सुनते प्रकृतिस्थ हो जाता है। इसे रंगभूमि में ले आइये। अपने-आप ठीक हो जायगा।

नाटक में एक जगह पुनः ध्रुव हरि-गुण गाने लगा। उसे सुनते-सुनते जगत् होश में आ गया। डॉ० चन्द्रशेखर विस्मय से यह अलौकिक दृश्य देखते रह गये।

पाबना शहर में एक बरगद वृक्ष के नीचे हाराण नामक एक फकीर रहता था। वह अपने-आप बड़बड़ाता, हँसता रहता था। उसकी इस आदत के कारण लोग उसे 'पगला बाबा' कहा करते थे, पर जगत् उन्हें 'बूढ़ा शिव' कहता था। पागला बाबा जगत् को बहुत चाहते थे। दूसरी ओर जगत् भी उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति करता था। उन दिनों जगत् में विचित्र आदतें थीं। वह किसीको स्पर्श नहीं करता था। अगर कोई उसके पास आता तो कपड़े से अपनी नाक ढँक लेता था। कभी-कभी कह उठता था—"तुम लोगों के बदन से अजीब महक आती है जो मुझसे बर्दाश्त नहीं होती। जरा दूर हटकर रहा करो।" लेकिन फकीर से मिलते समय उसे महक नहीं मिलती थी। फकीर के साथ एक ही आसन पर बैठ जाता था। उसकी दुर्गन्ध से भरी कथरी को ओढ़कर एक साथ सो जाता था। दोनों आपस में न जाने कितनी बातें करते हुए रात गुजार देते थे।

इसी पगला बाबा ने एक बार जगत की बहन से कहा था—"देखो दीदी, जगा (जगत्) मनुष्य नहीं है। मैं भी मनुष्य नहीं हूँ, पर जगा राजा है। हम सब प्रजा हैं।"

दीदी उन दिनों इस बात का मर्म समझ नहीं पायी थी। आश्चर्य से पगला बाबा को देखती रह गयी। कई वर्षों बाद दीदी को इस बात की सत्यता ज्ञात हुई थी।

इन घटनाओं के बाद जगत् तीर्थयात्रा करते हुए वृन्दावन में आये। राधाकुंज में आकर वे साधन-भजन करने लगे। यहीं वे कठोर साधना में रत हो गये। एक दिन उनका हृदय राधारानी के दर्शन के लिए व्याकुल हो गया। हृदय में अपूर्व अनुभूति होने लगी। समस्त शरीर रोमांचित होने लगा। रोम-रोम खुल गये। मन आनन्द से परिपूर्ण हो उठा। चारों ओर आनन्द बिखर गया। कुछ ही क्षणों बाद श्री राधारानी के दर्शन हुए। जिस प्रकार वैष्णव कवि हितहरिवंश को बचपन में हुआ था।

श्री राधारानी का दर्शन पाते ही वे संज्ञाशून्य हो गये। काफी देर तक राधाकुंज में इसी स्थिति में पड़े रहे। राधानाम ही उनके लिए ध्यान-मंत्र बन गया। इन्हीं दिनों वैष्णव रघुनाथ गोस्वामी ने इनसे प्रश्न किया था—"प्रभो, आपके गुरु कौन हैं?"

प्रत्युत्तर में आपने कहा—"आप लोगों की वृषभानु कुमारी ने मुझे मंत्र दिया है। वे ही मेरी गुरु हैं।"

श्री राधारानी से मंत्र प्राप्त करने के कारण वे आजन्म 'राधा' नाम का उच्चारण नहीं करते थे। इस नाम को सुनते ही वे भावावेश में आ जाते थे। उनके हृदय के तार-तार में

सनसनी पैदा हो जाती थी। राधारानी के बारे में कोई बात कहनी पड़ती तो कहते—"तुम लोगों की किशोरी।" राधाकुण्ड या राधाकुंज के बारे में कहते—'अमुक कुण्ड' - 'अमुक कुंज'। आगे चलकर एक भक्त उनका शिष्य बना जिसका नाम राधिकारंजन गुप्त था। उसे 'शारिका' कहकर सम्बोधन करते थे। ऐसे ही समर्पित व्यक्तियों के बारे में श्री रूप गोस्वामी लिख गये हैं—

इष्टे गाढ़ तृष्णा राग एइ स्वरूप लक्षण।
इष्ट आविष्टता एइ तटस्थ लक्षण ॥— मध्य २२।८६

श्री राधा प्रेम की अधिष्ठात्री हैं। कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति हैं। वे कृष्ण को विमोहित करती हैं।

ह्लादिनीर सार प्रेम, प्रेम सार भाव।
भावेर परमकाष्ठा - नाम महाभाव ॥
महाभाव स्वरूपा श्री राधा ठाकुराणी।
सर्व्वगुण खानि कृष्णकान्ता शिरोमणि ॥

आठ माह वृन्दावन में रहने के बाद जगत् कलकत्ता आये। इस यात्रा के पूर्व ही वे जगत से प्रभु जगद्बन्धु नाम से प्रसिद्ध हो गये थे। हम सुविधा की दृष्टि से जगत् नाम का ही प्रयोग करेंगे।

सन् १८८८ ई० में लोगों के आग्रह पर वे अपना फोटो खिंचाने के लिए तैयार हुए। यह फोटो १६, बहुबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता स्थित बेंगाल फोटोग्राफर की दुकान पर खींचा गया। उन दिनों आपकी उम्र महज १७ साल थी। इसके बाद जीवन में उनका फोटो नहीं खींचा जा सका। अब तक जितने संस्मरण या जीवनियाँ प्रकाशित हुई हैं, उन सबमें यही फोटो चित्र प्रकाशित है।

वर्तमान समय के हरिजन-आन्दोलन के जन्मदाता प्रभु जगत् ही थे। बंगाल में पिछड़ी जातियों में बागदियों को उच्छृंखल ही नहीं, बल्कि जरायम-पेशे का माना जाता है। फरीदपुर आने के बाद जगत् का ध्यान इस जाति के लोगों की ओर गया। रजनी नामक एक बागदी ने एक दिन जगत् को देखा और वह इस कदर प्रभावित हुआ कि इनके चरणों में अपने-आपको समर्पित करते हुए कहा—"मुझे आत्मोन्नति का मार्ग बताने की कृपा करें।"

जगद्बन्धु ने कहा—"तुम ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करते हुए केवल हरिनाम जपते रहो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।"

उसी दिन से रजनी इस उपदेश पर अमल करने लगा। प्रभु जगद्बन्धु अक्सर उसके घर जाने लगे। रजनी के चरित्र में तेजी से परिवर्तन होने लगा। यह देखकर उसकी जाति के अन्य लोग भी जगत् की शरण में आये। धीरे-धीरे सभी बागदियों को यह दृढ़ विश्वास हो गया कि प्रभु जगद्बन्धु उनके उपास्य देवता हैं। सभी उन्हें देवता समझकर पूजा करने लगे।

जगद्बन्धु के उपदेशों का उन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। अब वे सभ्य-समाज में प्रवेश करने लगे। कभी शहर के लोग इन्हें जरायम-पेशा और उच्छृंखल समझकर घृणा करते थे,

अब वही इनमें हुए परिवर्तन को देखकर चकित रह गये। जो कार्य शासन दण्ड देकर नहीं कर सका था, उसीको बहुत कम समय में जगत् ने कर दिखाया। इस समस्या को लेकर शहर में एक आन्दोलन हुआ और समाचारपत्रों में इसकी चर्चा हुई।

रजनी बागदी का नाम जगत् ने 'हरिदास महन्त' रखा। इसके साथ अन्य अनेक लोगों के नाम रखे गये। हरिदास को दलपति बनाकर बागदियों की एक कीर्तन मंडली बनायी गयी। इस सम्प्रदाय का नाम 'महन्त-सम्प्रदाय' रखा गया। इन लोगों को जगत् ने मृदंग, घण्टा, बिगुल, झाँझ आदि बजाना सिखाकर स्वरचित गीत गाना सिखाया। जब इनकी मंडली सड़कों पर कीर्तन करती हुई निकलती तब ईसाई पादरियों के हृदय में शूल चुभने लगता था। पादरियों का दल इन्हें ईसाई बनाता था। वे भौतिक सुख के लालच में तथा ब्राह्मणों के अत्याचार एवं उपेक्षा से पीड़ित होकर अपना धर्मान्तर कर लेते थे। जगद्बन्धु के इस कार्य से यह धर्म-परिवर्तन रुक गया। पिछड़ी जातियों को इसमें सम्मान और आनन्द मिलने लगा। स्वयं जगद्बन्धु इनके साथ भोज खाने लगे।

सारा पाबना शहर कृष्ण-राधा के नाम से गूँजने लगा—

भज कृष्ण कह कृष्ण लह कृष्णेर नाम रे।
जे जन कृष्ण भजे सेई आमार प्राण रे॥
× × ×
जय राधे राधे कृष्ण कृष्ण हरे राम हरे हरे।
ओई नाम बल बदने सुनाओ काने
बिलाओ जीवेर द्वारे द्वारे॥

पाबना, फरीदपुर आदि अंचलों में गंगा की लहरों की भाँति यह नाम फैलता गया। जगद्बन्धु अछूतों और वन-जाति के लोगों के निकट देवता बन गये। आर्त, पीड़ित तथा मुमुक्षु लोग आकुल होकर जगद्बन्धु के पास आने लगे। नगर में कीर्तन-मण्डली में शामिल होते समय वे सिर से पैर तक अपने को कपड़ों से ढककर एक लकड़ी के बक्स में बैठ जाते। इस दृश्य को देखकर कट्टरपंथी मजाक करते और पिछड़ी जाति के लोग उनका दर्शन करने के लिए व्याकुल हो उठते थे।

जगद्बन्धु के इस कार्य में स्थानीय बालकों को भी आनन्द मिलने लगा। वे दल के दल आपकी शरण में आने लगे। इनके लिए जगद्बन्धु ने आचार-संहिता बनायी। रात्रि चार दण्ड शेष रहते बिस्तर से उठ जाना पड़ेगा। शौच-स्नानादि के पश्चात् उपासना और योग करना पड़ेगा। साथ ही स्कूल का पाठ पढ़ना पड़ेगा। किसीके साथ सोना या बैठना, एक साथ एक ही पात्र में भोजन या जूठा भोजन नहीं करना होगा। इसके अलावा एक-दूसरे को स्पर्श करने का भी निषेध किया गया। राह से गुजरते समय निगाहें नीची रखने का भी विधान था। किसीकी ओर देखना वर्जित था। दूसरों के शरीर का ताप अपने शरीर में न लगे, इसलिए वस्त्रों से आच्छादित रहना भी एक नियम था।

आखिर एक दिन प्रभु जगद्बन्धु कलकत्ता आये। यहाँ आने के कुछ दिनों बाद आपकी दृष्टि रामबागान स्थित डोमों के मुहल्ले पर पड़ी। आपने डोमों के मुहल्ले में अड्डा जमाया

और उन्हें हरिनाम मंत्र से दीक्षित किया।[1] इसके साथ ही कई पतिताओं का उन्होंने उद्धार किया। इनमें प्रमुख थीं—सुरताकुमारी। जगद्बन्धु इन्हें 'सुर-माता' के नाम से पुकारते थे। कीर्तन और श्री गौर गदाधर के जप से सारा मुहल्ला प्लावित हो उठा। इसी डोम-बस्ती में हरिनाम का प्रचार-केन्द्र स्थापित कर जगत् ने श्री चम्पटी को प्रमुख बनाया। उपदेश देते हुए वे कहते—"तारक ब्रह्म ही हरिनाम का उद्धारण मंत्र है। इसका प्रकाश सर्वदा होता है। तुम लोग गाँव-गाँव में जाकर इस नाम का प्रचार करो। हरिनाम से ही सृष्टि की रक्षा होगी। लोगों में निष्ठा और भक्ति उत्पन्न करो। इसीसे हम सबका कल्याण होगा।"

जगत् के बढ़ते प्रभाव को देखकर बड़े-बड़े विद्वान् और मनीषी उनके प्रति आकर्षित हुए। अमृत बाजार पत्रिका के स्वनामधन्य संपादक महात्मा शिशिरकुमार घोष, अन्नदाचरण, महेन्द्रनाथ विद्यानिधि, संन्यासी प्रवर प्रेमानन्द भारती आदि अनेक लोग जगत् की शरण में आये। शिशिरकुमार घोष जगत् की प्रतिभा के बारे में लेख लिखकर तथा प्रेमानन्द भारती भाषणों के माध्यम से प्रचार करने लगे।

इनके कार्यों को देखकर प्रभु जगत् ने कहा था—"उन लोगों से कह दो दीपक की रोशनी से सूर्य को नहीं देखा जाता। सूर्य तो स्वयं ही प्रकाशमान हैं। उसे सारा संसार देखता है।"

प्रेमानन्द भारती इतने प्रभावित हुए थे कि अपनी जटा और काषाय वस्त्र को त्याग दिया था। आपका पूर्वाश्रम का नाम था—श्री सुरेन्द्र मुखोपाध्याय। लोकनाथ ब्रह्मचारी और पाबना के हाराण क्षेपा के आप कृपापात्र थे। बाद में काशी जाकर स्वामी ब्रह्मानन्द भारती से दीक्षा लेकर दसनामी संन्यासियों के दल में मिल गये थे। बाद में जगत् के प्रभाव में आकर उन्होंने वैष्णव का चोला अपनाया। यही प्रेमानन्द भारती आगे चलकर अमेरिका गये और वहाँ हरिनाम का प्रचार करते रहे। न्यूयार्क, कैलिफोर्निया, शिकागो आदि अनेक स्थानों की अमेरिकी जनता को उन्होंने दीक्षा दी थी। साधना निरन्तर जारी रहे, इसके लिए वहाँ 'श्रीकृष्ण होम' नामक एक केन्द्र स्थापित किया था।

अमेरिका में हरिनाम का व्यापक प्रचार करने के बाद जब स्वदेश आये तब आपके साथ कुछ अमेरिकन शिष्य-शिष्याएँ आयी थीं। इनके नाम श्यामदास, गौरीदास, हरिदास, हरिमति जैसे रखे गये थे।

एक दिन कलकत्ता से वृन्दावनधाम की ओर रवाना हो गये। इस प्रकार वे हरिनाम के प्रचार में दौरा करते रहे। पाबना में रहते समय आपने छात्रों का एक दल बनाया था जिसके बारे में पहले कहा जा चुका है। दूर जाकर भी वे अपने छात्रों को भूल नहीं सके। एक छात्र को उन्होंने वृन्दावन से लिखा—

"......ग्रेजुएट बनो। रात को बारह घण्टा पढ़ना। दिन को सोना। अमुक को पढ़ने के लिए कहना। परीक्षा जब तक न हो जाय तब तक निःसंग रहना, कीर्तन मत करना। सभी लोग निशाकाल में अध्ययन करते रहना।"

दूसरे को लिखा—"गणित में कमजोर हो। एक वक्त भोजन करना। रात को केवल जलपान। फलाँ-फलाँ पुस्तकें पढ़ो। कंठस्थ कर लो।"

---

१. बांगलार साधक—श्री गंगेश चक्रवर्ती।

तीसरे को लिखा—"इतिहास से जी मत चुराओ। मन लगाकर पढ़ो। ब्रह्मचर्य का प्रचार करो। डबल प्रमोशन प्राप्त करोगे।"

लड़कों को यह सब पढ़कर आश्चर्य होता कि प्रभु इन दिनों वृन्दावन में हैं, उन्हें हमारी कमजोरियाँ कैसे मालूम हो जाती हैं ? छात्रों में कोई भी एक-दूसरे की शिकायत लिखकर नहीं भेजता था।

एक बार एक लड़के ने कलकत्ता स्थित रामबागान में कीर्तन करते समय प्रभु जगत् के एक भक्त को करताल से मारा था। तुरत उस बालक को उन्होंने फटकारा था। इस प्रकार वे हमेशा अपने भक्तों तथा शरणागत बालकों का ध्यान रखते रहे। यहाँ तक कि कभी-कभी बालकों के जीवन की पाप-कहानी खुलेआम कह देते थे। एक बार बालकों के सामने बातचीत करते समय उनकी नजर एक बालक पर पड़ी। वे उसके पूर्व जीवन की पाप कहानी कहने लगे। सामने बैठे अन्य बालक हँसने लगे और वह बालक लज्जा, क्षोभ और विस्मय से ग्रस्त होकर रोने लगा।

यह देखकर प्रभु जगत् चुप हो गये। एक बालक को अधिक हँसते देख उन्होंने कहा—"तू बहुत हँस रहा है। मैं तेरी सारी बातें जानता हूँ। समझा ?"

उसने कहा—"तो कहिये न। चुप क्यों हैं ?"

प्रभु जगत् उसके पाप-जीवन की घटनाएँ एक के बाद एक कहने लगे। बाद में उन्होंने कहा—"क्यों, ठीक कह रहा हूँ न ? देख, मैं दर्पण हूँ। मेरे पास आने पर व्यक्ति का स्वरूप प्रकट हो जाता है। उसका कुछ भी छिपा नहीं रहता है। तुम लोग सोचते हो कि मैं कुछ जान नहीं पाता ? मैं सभी का सब कुछ जानता हूँ। मैं त्रिकाल की बातें जानता हूँ। इसीलिए कहता हूँ कि निर्जन में बैठकर स्थिर भाव से भगवान् को बताना चाहिए। उनसे प्रार्थना करनी चाहिए। उनके पास बिना गये, बिना बताये, वे भी कुछ नहीं कर पाते। अचल की तरह पड़े रहते हैं। तुम लोग सरल हृदय से निष्ठा के साथ हरिनाम-स्मरण करो। पवित्रता ग्रहण करो। मालिन्य दूर करो। मैं तुम लोगों के मंगल के लिए तुम्हारे पापों का उल्लेख कर देता हूँ।"

यहाँ तक कि बालकों से बहुत दूर रहते हुए भी वे इन्हें पत्र के द्वारा इशारे से निर्देश देते रहे। हर गलत कार्य के लिए चेतावनी देते रहे।

एक बार आप कुछ बालकों को लेकर राजमहल की ओर चल पड़े। चारों ओर ज्योत्स्ना अपनी छटा दिखा रही थी। रात होने के कारण लोगों का आवागमन कम था। मार्ग में प्रभु जगत् बालकों को तरह-तरह की कहानियाँ सुना रहे थे। इसके बाद मार्ग में अचानक रुक गये। उन्होंने सुदूर एक बबूल वृक्ष की ओर हाथ उठाकर दिखाते हुए कहा—"वहाँ जो बबूल का पेड़ दिखाई दे रहा है, तुम लोग वहाँ जाओ और उस वृक्ष के नीचे बैठकर ताली बजाते हुए हरिनाम-कीर्तन करो। मैं जरा विश्रामं करूँगा। जाओ। जब तक मैं तुम लोगों को न बुलाऊँ तबतक यहाँ मत आना।"

प्रभु के आज्ञानुसार बालकों का दल बबूल वृक्ष के पास जाकर कीर्तन करने में तन्मय हो गया। निर्मल आकाश, ज्योत्स्ना से भरा मैदान जगमगा रहा था। कहीं भी बादल का एक टुकड़ा नहीं था, पर देखते ही देखते वृक्ष की डालियाँ ऐसी हिलने लगीं जैसे तूफान आ गया हो। बरसात की तरह उसके पत्ते झरने लगे। इन दृश्यों को देखकर बच्चों को भय अनुभव

नहीं हुआ। कुछ देर बाद जब वृक्ष की एक डाली अपने-आप मरमराकर टूट गयी तब भयवश उन लोगों ने कीर्तन बन्द कर दिया। उनकी निगाहें पीछे की ओर प्रभु जगत् की ओर गयीं तो देखा कि वे ताली बजा रहे हैं। सभी बालक दौड़े हुए उनके पास आये।

जगत् ने पूछा—"तुम लोगों ने कीर्तन क्यों बन्द कर दिया ?"

लड़कों ने सारी कहानी सुनायी। जगत् ने कहा—"अगर तुम लोग कीर्तन बन्द न करते तो एक महात्मा का दर्शन पा जाते। वे अपने उद्धार की प्रतीक्षा में थे। तुम लोगों का कीर्तन सुनकर वे मुक्त हो गये। अगर तुम लोग कीर्तन बन्द न करते तो उनका दर्शन कर लेते।"

बालकों ने कहा—"राम भजिये। हम ऐसे दर्शन से दूर रहना चाहते हैं।"

बाद में सभी बच्चे प्रभु की आज्ञा पाते ही अपने-अपने घर चले गये।

इसी प्रकार की एक घटना कान्दा गाँव में हुई थी। ब्राह्मणकान्दा गाँव में एक रात को जगत् ने सोये हुए भक्तों को जगाकर कहा—"चलो, सब कोई मिलकर इमली के पेड़ के नीचे हरि-कीर्तन करो।"

प्रभु की आज्ञा को कोई अस्वीकार नहीं कर सका। सभी भक्त इमली के पेड़ के नीचे बैठकर कीर्तन करने लगे। संपूर्ण ब्राह्मणकान्दा गाँव कीर्तन-ध्वनि से मुखरित हो उठा। कुछ देर बाद देखा गया कि कीर्तन की लय पर पेड़ की प्रत्येक शाखा नाच रही है और हल्का-हल्का पानी बरस रहा है। इस घटना से प्रभावित होकर कीर्तनिया आत्महारा हो उठे। ऐसी घटना उनके जीवन में कभी नहीं हुई थी। बाद में लोगों ने जगत् से पूछा—"प्रभो, यह कैसा चमत्कार था ?"

उन्होंने हँसकर कहा—"एक तापक्लिश्ट आत्मा तुम लोगों से हरिनाम सुनकर मुक्त हो गया।"[१]

कभी-कभी उच्चकोटि के साधकों के जीवन में मनोरंजक घटनाएँ होती हैं।

मथुरा में एक संभ्रांत ब्राह्मण-परिवार रहता था जिसका दामाद लापता हो गया था। काफी दौड़धूप और अर्थव्यय करने पर भी उसका पता नहीं चला। लोग बहुत दुःखी थे। इधर लड़की दिन-प्रतिदिन जवान होती जा रही थी। उसकी मानसिक यातना बढ़ती जा रही थी।

ब्राह्मण की मित्र-मण्डली भी दामाद की खोज में लगी हुई थी। सभी चाहते थे कि इस परिवार का भला हो जाय। अचानक एक दिन जगत् को वृन्दावन में टहलते देख खोज करनेवालों को संदेह हुआ कि हो न हो यही है जो एक अर्से बाद यहाँ आया है। अपनी खोज पर उन लोगों को बेहद खुशी हुई।

ब्रज की भाषा में सम्बोधन करते हुए एक व्यक्ति ने कहा—"अब हम तुम्हें अच्छी तरह पहचान गये हैं। तुम हमारे खोये हुए दामाद हो। एक अर्से से गायब होकर नकली जामा पहनकर घूम रहे हो। आज हम लोग तुम्हें नहीं छोड़ेंगे।"

अब जगत् डर गये। उन्होंने कहा—"मैं आप लोगों का दामाद नहीं हूँ। आपको भ्रम हुआ है। मैं बंगाली ब्राह्मण का लड़का हूँ। फकीर बनकर तीर्थयात्रा करता हुआ ब्रज में आया हूँ।"

---

१. बन्धुकथा—श्री सुरेशचन्द्र चक्रवर्ती।

लेकिन इस सफ़ाई पर उन लोगों को विश्वास नहीं हुआ। काफी मिन्नत करने पर भी उन लोगों ने इन्हें नहीं छोड़ा। अपने साथ पकड़कर ब्राह्मण-परिवार के घर ले आये। कुछ दूर खड़ी लड़की ने भी कहा—"यही मेरे पति हैं।"

अब लोग तरह-तरह की बातों से जगत् को समझाने-बुझाने लगे। वे लोग जितना समझाते, उतना ही कातर भाव से जगत् कहते कि मैं आप लोगों का दामाद नहीं हूँ। मगर उन लोगों ने जगत् की आपत्ति पर ध्यान नहीं दिया जब कि लड़की अपने पति को पहचान-कर स्वीकार कर रही है तब यह जरूर झूठ बोल रहा है। इसके बाद उन लोगों ने एक कमरे में जगत् को ढकेलकर बाहर से बन्द कर दिया। उस कमरे में वह लड़की पहले से मौजूद थी।

लड़की अत्यन्त विनयपूर्वक जगत् से उलाहना देने लगी। अपने जीवन का दर्द कहते-कहते वह रो पड़ी। ज्योंही वह लड़की आगे बढ़कर उनके चरणों को पकड़ने के लिए आयी त्योंही जगत् ने हाथ के इशारे से दूर रहने का निर्देश दिया।

काफी देर बाद लड़की के अभिभावकों को ज्ञात हुआ कि हम लोगों के सभी प्रयत्न निष्फल हो गये हैं। जब जगत् कमरे के बाहर निकलने लगे तब उपस्थित लोगों ने उन्हें रोका।

जगत् ने अपना नाम बताते हुए कहा—"मेरे बारे में आप लोगों को भ्रम हुआ है। आप लोग राजर्षि वनमाली राय को जानते होंगे। आपमें से कोई उनके पास चला जाय और उन्हें मेरा नाम बताकर बुला लाये। उनके आने पर आप लोगों को यह ज्ञात हो जायगा कि मैं सत्य कह रहा हूँ या नहीं।"

राजर्षि वनमाली राय की ख्याति वृन्दावन में ही नहीं, मथुरा नगरी में भी थी। उनके पास जाकर लोगों ने जगत् का नाम तथा सारी बातें बतायीं।

यह बात सुनते ही राजर्षि वनमाली राय ने कहा—"प्रभु जगद्बन्धु बंगाल के प्रसिद्ध संत हैं। आप लोगों ने उन्हें इस तरह कैद कर गलत काम किया है। जल्द-से-जल्द उन्हें छोड़ दीजिए वर्ना आप लोगों का अकल्याण भी हो सकता है। उनके हजारों भक्त यहीं हैं।"

वनमाली राय की चेतावनी पर लोगों को विश्वास हो गया। इस प्रकार जगत् को वहाँ से मुक्ति मिली।[१]

अप्रैल सन् १९०० की घटना है। आँगन में कुछ बालक बैठे हुए थे। बातचीत के सिलसिले में आपने कहा—"जानते हो? मुझे साधु-संन्यासी समझकर लोग चालाकी से मेरी परीक्षा लेते हैं। सभी इन्द्रजाल चाहते हैं। कहते हैं—'प्रभु, मेरा लड़का सख्त बीमार है, कोई दवा दीजिए।' जब इस तरह के प्रश्नों का मैं कोई जवाब नहीं देता तब वे आँगन में लोटपोट लगाते हुए मन्नत मानते हैं—मेरा लड़का अगर स्वस्थ हो गया तो मैं महोत्सव करूँगा। कोई कहता है—कर्ज से लद गया हूँ, कहीं से रकम दिलाइये। रोजगार में खूब आमदनी हो, ऐसा आशीर्वाद दीजिए। कोई घर-गृहस्थी का सुख चाहता है। जिसे जिस चीज का अभाव है, वह वही आकर माँगता है। मैंने किसीको निराश नहीं किया, सभी को कुछ न कुछ दिया है। लोग सब कुछ माँगते हैं, पर कोई हरिनाम नहीं माँगता और न कोई यह कहता है कि मेरा

---

१. महा महाप्रभु जगद्बन्धु—श्री मतिच्छन्न महेन्द्र।

उद्धार हो जाय । मैं सब कर सकता हूँ । मेरे लिए यह सब तुच्छ बात है । केवल इन्द्रजाल है और इसी इन्द्रजाल के चक्कर में सारा संसार फँसता जा रहा है। ऐसी स्थिति में हरिनाम का प्रचार करना बड़ा कठिन कार्य है । लोग हल्ला-गुल्ला पसन्द करते हैं । मगर तुम लोगों को निराश होने की जरूरत नहीं है । मैं सर्वदा तुम्हारे साथ हूँ । फिर किस बात का डर ? निष्ठा के साथ हरिनाम लेते रहो ।"

प्रभु जगत् स्वतः कोई चमत्कार नहीं करते थे । अपने-आप अलौकिक चमत्कार हो जाता था । रोगाक्रांत व्यक्ति आता और उनसे कृपा की भीख माँगता । वे अभय वाक्य कहते और वह व्यक्ति कुछ दिनों बाद रोग-मुक्त हो जाता । हिस्टीरिया के कई रोगियों को अच्छा होते लोगों ने देखा है ।

वे न कोई मंत्र पढ़ते और न झाड़-फूँक करते थे । यहाँ तक कि कोई दवा या ताबीज नहीं देते थे और रोगी से उनका आमना-सामना होता था । केवल संजीवनी वाणी के द्वारा पीड़ितों के कष्टों को दूर कर देते थे । उनके आशीर्वाद से कितने अक्षम व्यक्ति भी कार्य करने में सक्षम हुए हैं । किसके भीतर प्रतिभा सुप्त है, किसमें कौन-सा दोष है, कौन गलत काम करने जा रहा है, यह सब जैसे वे पारदर्शी शीशे से देखकर बता देते थे । इसके साथ ही उसे सावधान कर देते थे ।

अपने एक भक्त को निर्देश दिया कि राह चलते दृष्टि नीची रखना । इस चेतावनी को सुनकर भक्त जगत् के कक्ष से बाहर आये और अपने घर की ओर चल पड़े । एक मील आने के बाद सहसा उनकी निगाह बारजे पर खड़ी एक वारवनिता पर पड़ी । केवल एक मिनट तक उसकी ओर मुग्ध दृष्टि से देखते रहे । सहसा उन्हें प्रभु जगद्बन्धु की चेतावनी याद आ गयी । बड़ा अफसोस हुआ । विषादभाव से क्षमा-याचना के लिए वापस लौटे । प्रभु के पास आकर प्रणाम किया ।

जगत् ने मुस्कराते हुए कहा—"बाबूजी, इस तरह प्रकृति के रूप को घूरना नहीं चाहिए । मोह सब भुला देता है । यह पाप है । यहाँ तक कि माँ-बहन की ओर देखने की मनाही है—'माता, स्वसा, दुहिता वा नाविविक्ता मनोभवेत् । बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ।' भविष्य में इस बात को हमेशा ध्यान में रखना ।"

एक थे खुदीराम प्रामाणिक । पिछड़ी जाति का एक युवक । उनसे प्रभु जगत् ने कहा—"आज रात को मेरे घर के बरामदे में सोना ।"

प्रभु के इस आदेश को मानकर वह वहीं सो गया । गहरी रात को ताली बजाते हुए प्रभु ने उसे जगाया । अमावस की रात, बाहर वर्षा हो रही थी । प्रभु के इशारे पर नदी किनारे जाकर उसने एक नाव खोली । नाव पर प्रभु सवार हो गये । उनके आदेश पर नाव कुछ आगे वनमाली करके घर के समीप ले आया । प्रभु ने खुदीराम से कहा—"जाओ, वनमाली के यहाँ से कुछ खाने की सामग्री ले आओ ।"

खुदीराम ने कर महाशय के घर जाकर देखा कि सभी गहरी नींद में सो रहे हैं । वह असमंजस में पड़ गया । बार-बार आवाज देने पर कर महाशय बाहर आये । जब उन्हें यह मालूम हुआ कि प्रभु कुछ खाने की सामग्री माँग रहे हैं तब वे परेशान हो उठे । क्या दूँ, कहाँ

से दूँ ? यही सोचने लगे। अचानक उन्हें याद आया कि कुछ दूध अलग से गरम करके सिकहर पर रख दिया गया है। खुदीराम वही दूध लेकर प्रभु के पास आये।

अब नौका किनारे से हटकर मँझधार में चलने लगी। राजापुर मुहाने की ओर। खुदीराम को टूटे डाँड़ से नाव खेने में कठिनाई हो रही थी। उसने कहा—"प्रभो, दोनों डाँड़ टूटे हैं। बड़ी परेशानी हो रही है।"

अब खुदीराम को हटाकर प्रभु स्वयं ही नाव खेने लगे। बरसात का मौसम था। नदी में बहाव अपनी जवानी पर था। नौका राजापुर के श्मशान पर आकर रुक गयी। खुदीराम को नाव पर बैठाकर प्रभो श्मशान में चले गये। प्रभो के आने में देर होते देख खुदीराम श्मशान के आतंक से भयभीत हो उठा। मन ही मन वह हरिनाम जपने लगा। आखिर जब अत्यधिक डर गया तब तीर पर उतर पड़ा। आसपास नजर दौड़ाने पर प्रभु दिखाई नहीं पड़े। कुछ दूर आगे बढ़ने पर खुदीराम ने देखा कि एक जगह से पूर्णिमा की ज्योत्स्ना की तरह प्रकाश छिटक रहा है। संपूर्ण श्मशान प्रभु की अंग-छटा से आलोकित है। यह दृश्य देखकर वह चकित रह गया।

धीरे-धीरे पास आकर उसने कहा—"अकेला नाव पर रहने में मुझे डर लग रहा था। रात समाप्त हो रही है। चलिये, हम वापस चलें।"

प्रभु मुर्दे की एक खाट पर लेटे हुए थे। खुदीराम की बात सुनते ही वे तुरत उठे और नाव पर आकर बैठ गये। बोले—"जरा तेजी से नाव को ले चल।"

खुदीराम ने कहा—'कैसे ले चलूँ प्रभो। दोनों ही डाँड़ टूटे हुए हैं। इससे नाव खेना ही कठिन हो रहा है।"

प्रभु ने कहा—"पतवार की तरह डाँड़ को लगा ले और चुपचाप बैठ जा। आँखें बन्द कर ले।"

प्रभु की आज्ञा पाकर खुदीराम ने एक डाँड़ को पतवार की तरह नाव के पीछे लगाया और आँखें बन्द कर बैठ गया। प्रभु स्वयं एक डाँड़ को नदी में डालकर खेने लगे। नाव तेजी से आगे बढ़ने लगी।

क्षणभर बाद नाव की गति धीमी होने पर खुदीराम ने देखा—नाव मंदिर के किनारे आ गयी है। वह अवाक् रह गया। इधर प्रभु हँसते हुए नदी में स्नान करने लगे।

जगद्बन्धु ज्योतिषियों की तरह न किसीका हाथ देखते थे और न जन्मपत्रिका बनाकर कुछ कहते थे। वे अपने कमरे का दरवाजा बन्द कर बैठ जाते। जिज्ञासु लोग कमरे के बाहर बैठे रहते। ऐसे लोगों के भूत, भविष्य और वर्तमान की बातें इस तरह बताते जैसे वे प्रत्यक्ष रूप से देख रहे हों। लोग विस्मय से चकित रह जाते। अगर कोई छिपाकर गलत काम कर डालता था तो उसे भी प्रकट कर देते थे। साथ ही मधुर संभाषण के जरिये उसे समझाते थे। किसका जीवन किस तरह व्यतीत होगा, इस बारे में बता देते थे। जो लोग उनकी बातों की उपेक्षा करते या मजाक समझते थे, उन्हें आगे चलकर अफसोस होता था।

जगद्बन्धु के बड़े भाई ने अपने एक अनुभव के बारे में कहा है—"जगत् में भविष्य बताने की अन्तर्यामी शक्ति थी। बात उन दिनों की है जब जगत् वृन्दावन में था। उन दिनों मैं फरीदपुर की एक घटना से परेशान था। समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूँ। जगत्

को तार भेजूँ या पत्र। ठीक इसी समय डाकिया ने आकर एक पत्र दिया। यह पत्र जगत् का था। पत्र पढ़कर मैं चकित रह गया। जिस वजह से मैं परेशान था, उसकी मीमांसा इस पत्र में थी। मैंने पत्र पाने के पूर्व तक इस घटना की चर्चा किसीसे नहीं की थी। जगत् को मालूम होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। वह इतनी दूर परदेश में रहते हुए सारी समस्या को कैसे जान गया, इसे लाख सिर पीटने पर भी मैं समझ नहीं सका।"

कुछ दिनों बाद जब जगत् घर आया तब मैंने कौतूहलवश उससे पूछा कि तुम्हें यह बात कैसे मालूम हुई? उसने जवाब दिया—"फकीर ठहरा, दूर रहते हुए भी सब जान जाता हूँ।"

सन् १६१४ के नवम्बर माह की घटना है। अचानक प्रभु जगद्बन्धु को सूखी खाँसी तंग करने लगी जो काफी कष्टदायक थी। उनके सभी भक्त उद्विग्न हो उठे। उपस्थित लोगों में से एक व्यक्ति नगर से डॉ० प्रमोदलाल चौधरी तथा कविराज श्रीशचन्द्र गुप्त को अपने साथ ले आये।

प्रभु जगत् कभी बिस्तर पर सो जाते तो कभी दौरा पड़ने पर उठकर बैठ जाते रहे। रह-रहकर तेज स्वर में खाँसते रहे। दोनों व्यक्तियों ने नाड़ी-परीक्षा की। उन्हें किसी प्रकार का स्पन्दन महसूस नहीं हुआ। कई बार जाँच करने पर भी कोई सूराग नहीं मिला। सबसे बड़े आश्चर्य की बात यह रही कि हृदय की गति में भी कोई स्पन्दन नहीं मिला। बाहर से जिस प्रकार का कष्ट है, भीतर उसका कोई नाम-गंध नहीं है।

दिन इसी प्रकार गुजर गया। शाम के वक्त एक अन्य डॉक्टर को बुलाया गया। अब तीनों व्यक्ति जाँच करने लगे। इस बार भी कुछ समझ नहीं पाये। कविराजजी ने मुस्कराते हुए पूछा—"कहिये डॉक्टर साहब, कुछ समझ में आया?"

डॉक्टर ने कहा—"इनकी जाँच कैसे हो? आपने अपनी इच्छा के अनुसार स्पन्दन को बन्द कर रखा है। ऐसी हालत में बीमारी का पता कैसे लग सकता है। दरअसल इन्हें कोई बीमारी नहीं है। हम लोग यहाँ महापुरुष का दर्शन करने आये हैं, वही किया जाय।"

प्रभु जगद्बन्धु भी अन्य संतों की तरह कभी पुरी, कभी नवद्वीप, कभी वृन्दावन तो कलकत्ता, ब्राह्मणकान्दा आदि स्थानों में भ्रमण करते थे। जिस जगह जाते, वहाँ के भक्त आपको घेर लेते। वे सदैव कीर्तन, हरिनाम के अलावा सदुपदेश देते हुए लोगों का कल्याण करते रहे।

वृन्दावन और नवद्वीप आपका प्रिय स्थान था। वृन्दावन में श्यामदास नामक एक वैष्णव साधक थे। प्रभु जगत् से हाल में ही परिचय हुआ है। कहने का मतलब अभी वे प्रभु की प्रतिभा से विशेष प्रभावित नहीं हुए हैं। इधर जगद्बन्धु का मौन चल रहा था। रह-रहकर न जाने कहाँ लापता हो जाते थे।

एक दिन श्यामदास मधुकरी माँगने के लिए निकल पड़े। दूर से उन्होंने देखा कि कुछ गायें खड़ी होकर न जाने क्या लेहन कर रही हैं। आगे बढ़ने पर उन्होंने जो कुछ देखा, उसे देखते ही वे अवाक् रह गये। सोने-सा चमकता हुआ एक पुरुष जमीन पर लेटा हुआ था और गायें उनके शरीर के सौरभ को ग्रहण कर रही हैं यानी अवलेहन कर रही हैं। शायित

पुरुष बड़े स्नेह से गायों पर हाथ फेर रहे हैं। काफी पास जाने पर उन्होंने देखा कि वह पुरुष अन्य कोई नहीं, बल्कि प्रभु जगद्बन्धु हैं।

इस घटना से श्यामदास बहुत प्रभावित हुए। उन्हें लगा, जैसे साक्षात् श्रीकृष्ण का दर्शन उन्होंने किया है। बाद में वे एक दिन महाप्रभु को अपनी कुटिया में आदर-श्रद्धा के साथ ले गये। वहाँ प्रभु जगद्बन्धु ने अनेक अलौकिक विभूतियों का प्रदर्शन किया।

इसी प्रकार एक दिन श्यामदास अपनी कुटिया में बैठे थे। आसपास कोई नहीं था, पर उनकी कुटिया में चन्दन चर्चित तुलसीदल बार-बार गिर रहे थे। समझते देर नहीं लगी कि यह महाप्रभु की कृपा है।

एक दिन प्रभु तालाब में स्नान कर रहे थे। पास ही खड़े श्यामदास यह दृश्य देख रहे थे। देखते ही देखते पानी में न जाने कहाँ गायब हो गये। ऊपर जमीन पर एक छोटा बालक इधर-उधर किलकारियाँ मारता हुआ दौड़धूप कर रहा है। गुफा के पास आते ही वह बालक भी लापता हो गया। दूसरे ही क्षण उन्होंने देखा कि उनके सामने एक ज्योतिर्मयी मूर्ति खड़ी है।[१]

बातचीत के सिलसिले में एक दिन महाप्रभु ने भक्तों से कहा—"इस दुनिया में सबसे अधिक सुखी गधे हैं। दिन समाप्त हो जाने पर उन्हें घास खाने का अवसर मिलता है। गृहस्थ दिन-रात बाल-बच्चों को पालने में इतना व्यस्त रहता है कि उसे हरिनाम जपने का अवसर नहीं मिलता।

"इतनी चीजों के रहते सूअर केवल विष्ठा खाते हैं। इसी प्रकार पाखण्डी लोगों की निगाह कुविषयों की ओर लगी रहती है। सूअर का गू और पाखण्डियों का कु।

"ऊँट काँटेदार वृक्ष खाता है। इससे उसका मुँह क्षत-विक्षत हो जाता है, फिर भी वह खाना बन्द नहीं करता। उसी प्रकार संसारी व्यक्ति बार-बार संसार की माया से मोहित रहता है। उसकी गृहस्थी की प्यास मिटती नहीं। वह हरिनाम नहीं जपता।"

प्रभु जगद्बन्धु शिष्य बनाना पसन्द नहीं करते थे। उनका कहना था—"मनुष्य गुरु-मंत्र कान में कहता है, पर जगद्गुरु मंत्र प्राण को सुनाता है।" इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रभु जगत् समाज की पिछड़ी जातियों, वन-जाति, अवहेलित तथा अस्पृश्य लोगों के बीच जाकर उन्हें हरिनाम सुनाते थे। उनके साथ भाईचारे का व्यवहार करते थे। यही कारण है कि वे जन-जन में लोकप्रिय हो गये थे।

सन् १९२१ ई० के आश्विन मास में उनका तिरोधान हो गया। अपने अगणित भक्तों को शोक-सागर में डुबोकर वे सदा के लिए लीन हो गये।

●

---

१. बन्धुकथा।
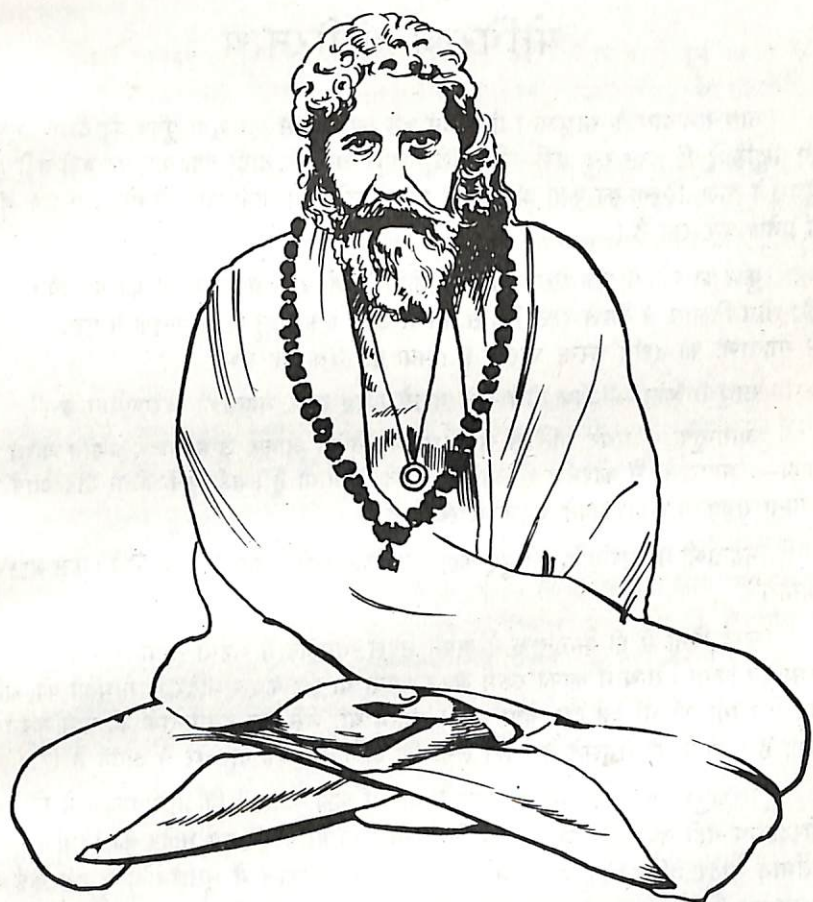
योगिराज गंभीरनाथ

योगिराज गंभीरनाथ

नाथ-सम्प्रदाय के साधुओंने एक दिन बड़े आश्चर्य से एक युवा पुरुष को देखा—गुलाब की पंखुड़ियों की तरह रंग, बड़ी-बड़ी आँखें, गंभीर आकृति, दाढ़ी सफ़ाचट, पर बड़ी-बड़ी मूँछें, घुँघराले बाल, सिल्क का कुर्ता और चद्दर गले में लपेटे, मस्तानी चाल से गोरखनाथ के मंदिर में प्रवेश कर रहा है।

कुछ शक्लों में एक ऐसा आकर्षण होता है जो राह चलते लोगों को प्रभावित करती हैं। लोग विस्मय से देखते रहते हैं। सामने से आते एक साधु से आगन्तुक ने पूछा—"बाबा, मैं महन्तजी का दर्शन करना चाहता हूँ। क्या इस वक्त यह संभव है?"

साधु ने कहा—"आप सीधे चले जाइये। वह उधर महन्तजी विराजमान हैं।"

आगन्तुक ने मंथर गति से महन्तजी के निकट आकर उन्हें सादर प्रणाम करते हुए कहा—"महाराज, मैं काश्मीर से आपकी शरण में आया हूँ। बड़ी कृपा होगी यदि आप मुझे अपना सेवक बनाकर अपने चरणों में स्थान दें।"

महन्तजी ने आशीर्वाद देते हुए कहा—"थके हुए हो। आज विश्राम करो। कल बातचीत होगी।"

चन्द दिनों में ही आगन्तुक ने अपने मृदुल व्यवहार से महन्त बाबा गोपालनाथजी को प्रभावित किया। साथ में काफी रकम लेकर आया था। न केवल मंदिर के साधुओं को, बल्कि बाहरी लोगों को भी वह दान देता रहा। लगता था, जैसे इस नवागन्तुक को दान करने का नशा है। लोगों को समझते देर नहीं लगी कि आगन्तुक बड़े परिवार से आया है।

गोरखपुर स्थित गोरक्षनाथ मंदिर के बारे में कहा जाता है कि प्राचीनकाल में योगिराज गोरक्षनाथ यहीं तपस्या करते रहे, इसलिए उनके योगासन पर इस मंदिर का निर्माण हुआ। वर्तमान मंदिर ऐतिहासिक मंदिर नहीं है। मुगल-शासनकाल में मुसलमानों ने इसे कई बार ध्वस्त कर दिया था। इनमें अलाउद्दीन और औरंगजेब प्रमुख थे। बाद में वर्तमान मंदिर का निर्माण बुद्धनाथ नामक एक योगी ने कराया। मंदिर के निर्माण के पश्चात् यहाँ अनेक परिवर्तन होते गये। महन्त तथा सिद्ध महात्माओं की समाधि पर मठ का निर्माण हुआ है। मंदिर के महन्त गोरक्षनाथ के प्रधान सेवक होते हैं। साधु तथा गृहस्थ आम तौर पर उन्हें गोरक्षनाथ के पद पर प्रतिष्ठित समझते हैं और उसी तरह उन्हें सम्मान देते हैं।

बाबा गोपालनाथ ने सम्प्रदाय के नियमानुसार आगन्तुक को संन्यास देते हुए उन्हें 'नाद' और 'सेली' पहनाया। बाद में उन्हें औघड़-सम्प्रदाय में शामिल कर लिया। इस घटना के कुछ दिनों बाद देवीपाटन में बाबा शिवनाथ ने 'कनफट', कर कानों में कुण्डल पहनाया। इस

प्रकार आगन्तुक नाथ-सम्प्रदाय का अन्तिम चिह्न धारण कर नाथ-सम्प्रदाय का संन्यासी बन गया।

गोरक्षनाथ-मठ में प्रवेशकाल से लेकर दीक्षा के दिन तक आगन्तुक बहुत गंभीर मुद्रा में दिन व्यतीत करता रहा। प्रश्नों के उत्तर में संक्षेप में जवाब देकर अधिकतर मौन रहता था। आगन्तुक के इस रूप को देखकर गोपालनाथ ने अपने नये शिष्य का नाम रखा—गंभीरनाथ।

अक्सर गुरुभाई और उत्सुक सामान्य नागरिक जब गंभीरनाथ से पूर्व जीवन के बारे में प्रश्न करते तो यही उत्तर मिलता— "इन सब प्रपंचों से क्या वास्ता ? मैं गुरुदेव गोपालनाथजी का शिष्य हूँ, यही मेरा वास्तविक परिचय है।"

महन्तजी की जबानी इतना पता चला था कि गंभीरनाथजी काश्मीर के जम्बू जिले के निवासी हैं। गाँव में उनका आज भी घर है। लेकिन वे अपने घर या परिवार से हमेशा उदासीन रहे। घर से चलकर वे श्मशान चले आते थे। वहाँ नाथ-सम्प्रदाय के एक संन्यासी रहते थे। उनसे बराबर उपदेश ग्रहण करते रहे और अध्यात्म की चर्चा करते रहे। संन्यासी के ज्ञान और व्यक्तित्व से गंभीरनाथ इतने प्रभावित हुए कि एक दिन उनसे दीक्षा देने की प्रार्थना की।

उक्त संन्यासी ने कहा—"मैं तुम्हें दीक्षा नहीं दे सकता। तुम्हें दीक्षा देनेवाले गुरु गोरखपुर में हैं। तुम वहाँ गोरक्षनाथ मंदिर में जाकर वहाँ के महन्तजी से दीक्षा लो। योगिराज परमगुरु गोरक्षनाथजी की कृपा से तुम भविष्य में एक महान् योगी बन जाओगे।"

संन्यासी के सुझाव को शिरोधार्य करके योगिराज अपने गुरु की खोज में गोरखपुर आये, जहाँ उन्हें दीक्षा के साथ-साथ संन्यास-नाम गंभीरनाथ की प्राप्ति हुई। आप यहाँ अत्यन्त निष्ठा के साथ गुरु की सेवा करते रहे। शेष समय में भजन किया करते। साधारण लोगों को योगाभ्यास में पर्याप्त समय लगता है, पर जिनके पूर्वसंस्कार अच्छे होते हैं, वे बहुत जल्द साधना-मार्ग में अग्रसर हो जाते हैं। इसके लिए उन्हें विशेष श्रम नहीं करना पड़ता।

गंभीरनाथजी आगे चलकर अपने शिष्यों तथा भक्तों से कहा करते थे—साधुओं के प्रति भक्ति करना, उनकी सेवा करना आप लोगों का कर्त्तव्य है। लेकिन अज्ञात चरित्रवाले साधुओं से दूर रहना चाहिए। वैराग्यविहीन वैरागी, भोगी संन्यासी, कपट-योगी आजकल प्रत्येक मठ और अखाड़े में हैं जो साधन-भजन के नाम पर केवल रोटी तोड़ते हैं और अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। ऐसे लोगों से दूर रहने में ही कल्याण है।

बाबा गोपालनाथ आपके स्वभाव और सेवा से बड़े प्रसन्न थे। इन्हें पुजारी का कार्यभार दिया गया। लेकिन मठ में कपट-योगियों की कमी नहीं थी। इससे आपकी साधना में व्याघात पहुँचता था। आपका मन मठ के वातावरण से उखड़ गया। एक दिन चुपचाप पैदल ही काशी की ओर रवाना हो गये। दो दिन भूखे-प्यासे सफर करते रहे। मार्ग में किसीने यह नहीं पूछा कि बाबाजी, कहाँ प्रस्थान कर रहे हैं ? आइये, मेरे यहाँ भोजन ग्रहण कर लीजिए। गंभीरनाथ ने सोचा—अगर मेरी साधना का प्रभाव होगा तो भगवान् स्वतः कोई उपाय करेंगे, वर्ना लक्ष्य तक पहुँचना ही है।

तीसरे दिन अचानक एक परिचित ब्राह्मण मिला। यह ब्राह्मण गोरक्षनाथ-मठ का भक्त

था और बाबा गंभीरनाथ के स्वभाव से भलीभाँति परिचित था। उसने इनके थके चेहरे को देखकर बड़े आग्रह के साथ अपने यहाँ ले जाकर उन्हें भोजन कराया। प्रभु की कृपा हो गयी समझकर उस ब्राह्मण को आशीर्वाद देकर वे काशी रवाना हो गये।

यहाँ गंगा तट पर एक निर्जन स्थान पर आसन जमाकर वे अपनी साधना में रत हो गये। यहाँ लगभग तीन वर्ष तक थे। कहा जाता है कि इन तीन वर्षों में वे अध्यात्म के शिखर तक पहुँच गये थे। योगैश्वर्य की ओर से उदासीन रहने पर भी उन्हें यह प्राप्त हो गया था। यह मानी हुई बात है कि लोकालय में ऐसे साधकों की ओर लोगों की दृष्टि आकर्षित होती है और लोग व्यक्तिगत लाभ उठाने के लिए साधक के पास आकर उसे तंग करने लगते हैं।

गंभीरनाथ के साथ भी ऐसी घटनाएँ होने लगीं। वे अपनी साधना में बराबर निमग्न रहना चाहते थे और इधर आम लोग विघ्न डालने लगे। फलस्वरूप एक दिन आप चुपचाप इलाहाबाद स्थित झूसी में आ गये। यहाँ इन्होंने एक निर्जन गुफा देखकर आसन लगाया। गंगा किनारे स्थित यह गुफा उन्हें बेहद पसन्द आयी। यहाँ मुकुटनाथ नामक एक योगी मिले जो आपकी हर तरह से सेवा करते रहे। झूसी में आप दो वर्ष तक साधना करते रहे। कहा जाता है कि यहीं आप ब्रह्मवित् हुए थे।

झूसी में रहते समय आपने निश्चय किया कि परिव्राजक के रूप में तीर्थों का दर्शन किया जाय। यह कार्य सभी साधक करते हैं। आप झूसी से चलकर नर्मदा नदी के किनारे आये। मत्स्यपुराण में नर्मदा नदी के बारे में कहा गया है—"गंगा कनखल में तथा सरस्वती कुरुक्षेत्र में विशेष रूप से पवित्र है, पर नर्मदा गाँव एवं जंगलों में भी पवित्र है। सरस्वती का पानी मनुष्य को तीन दिन में, यमुना का पानी सात दिन में और गंगा का पानी स्नान करने पर ही पवित्र बना देता है। लेकिन नर्मदा का पानी दर्शन करने से ही मानव पवित्र हो जाता है।"

ज्ञातव्य रहे कि प्राचीनकाल के अधिकांश ऋषि तथा तपस्वी नर्मदा के किनारे साधना करते हुए मुक्ति प्राप्त कर चुके हैं। नर्मदा-परिक्रमा का अर्थ है—नर्मदा के उद्‌गम-स्थल से समुद्र तक और समुद्र से उद्‌गम-स्थल तक एक ही किनारे से आना-जाना पड़ता है। न केवल उन्होंने नर्मदा-परिक्रमा की, बल्कि कैलास, मानसरोवर, ज्वालामुखी आदि तीर्थस्थानों में भी गये। बाद में अपने शिष्यों को जो इस यात्रा पर जानेवाले थे, उन्हें मार्ग के बारे में तरह-तरह के निर्देश देते रहे।

नर्मदा नदी के किनारे चलते-चलते एक बार आप एक निर्जन कुटिया में ठहर गये। इस कुटिया में एक ब्रह्मचारी रहते थे। उस वक्त वे मौजूद नहीं थे। गंभीरनाथ इस कुटिया में तीन दिन विश्राम करते रहे। वे नित्य देखते कि न जाने कहाँ से एक बड़ा साँप फन उठाये आता और कुछ देर एकटक उन्हें देखता। इसके बाद उनकी प्रदक्षिणा कर वापस चला जाता था। किसी साँप को इस तरह का व्यवहार करते उन्होंने कभी नहीं देखा था। साँप के जाते ही वे स्वयं समाधिस्थ हो जाते थे।

तीसरे दिन कुटिया का स्वामी ब्रह्मचारी आया। बातचीत के सिलसिले में ब्रह्मचारी ने कहा—"यहाँ एक महात्मा साँप के रूप में निवास करते हैं।"

तब गंभीरनाथ ने सारी घटना सुनायी। ब्रह्मचारी ने अवाक् होकर कहा—"मैं यहाँ पिछले बारह वर्ष से कुटिया बनाकर उनकी प्रतीक्षा में हूँ और आज तक उनके दर्शन नहीं कर सका। इधर आप आगन्तुक के रूप में आकर तीन दिन में ही दर्शन कर चुके। वास्तव में आप बड़े भाग्यवान् हैं।"

गंभीरनाथ ने ब्रह्मचारी से यह नहीं पूछा कि आखिर उक्त महात्मा सर्प के रूप में यहाँ क्यों हैं ? उनसे तुम्हारा क्या रिश्ता है ? आखिर तुम बारह वर्ष से क्यों उनकी प्रतीक्षा कर रहे हो ? वह सर्प मेरी प्रदक्षिणा क्यों करता रहा ? दरअसल गंभीरनाथ मौन रहना अधिक पसन्द करते थे।

इसी बीच गंभीरनाथ को पता लगा कि उनके गुरुदेव गोपालनाथजी समाधि ले चुके हैं। उनके प्रथम शिष्य बलभद्रनाथ आजकल वहाँ महन्त बन गये हैं। महन्तजी के अनुरोध पर गंभीरनाथ गोरखपुर आये और यहाँ लगभग एक माह तक निवास करते रहे। परन्तु मठ का कोलाहल उन्हें रास नहीं आया। प्रारंभ से ही निर्जनता उन्हें पसन्द थी। उन्हें साधना के अलावा अन्य किसी बात में कभी रुचि नहीं हुई।

उपयुक्त स्थान की तलाश में वे गया आये और यहाँ के ब्रह्मयोनि पहाड़ पर स्थित कपिलधारा में उन्होंने आसन जमाया। यह स्थान उन्हें काफी पसन्द आया। यह वह स्थान है, जहाँ बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ था। चैतन्य महाप्रभु का गया में हृदय प्लावित हुआ था। महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी यहीं साधना करते रहे। कभी वे पेड़ के नीचे और कभी किसी सामान्य गुफा में साधना करते रहे। साथ में एक कम्बल और खर्पर था। तन पर एक कौपीन, हाथ में दण्ड। दो माह बाद एक योगी सेवा में आया। उनका नाम था—नृपतिनाथ। नृपतिनाथ के पहले अक्कू नामक एक कुर्मी युवक गंभीरनाथ के लिए सामान्य सेवा करता था। जंगल से सूखी लकड़ियाँ लाकर उनके लिए धूनी सजा देता था। इस प्रकार दो सेवकों के सहयोग से बाबा गंभीरनाथ साधना में लगे रहे। बीच में कुछ दिनों के लिए काशी और गोरखपुर आये थे। लौटते वक्त शुद्धनाथ नामक एक सेवक आपके साथ गया आ गया। इस प्रकार आप तीन सेवकों के साथ कपिलधारा में रहते रहे।

यहाँ दो अन्य गृहस्थों का उल्लेख करना आवश्यक है। इनमें पटना के मोतीलाल घोष और गया के माधोलाल पण्डा थे। माधोलाल पण्डा बाबा गंभीरनाथ की कृपा से अत्यन्त प्रभावित हुए थे। एक बार आप एक जटिल मुकदमे में फँस गये। इस मुकदमे में घर की सारी पूँजी समाप्त हो गयी। जीतने की कोई आशा नहीं थी।

मुसीबत के वक्त लोगों को भगवान् और साधु-संन्यासियों की याद आती है। माधोलाल गंभीरनाथ की ख्याति सुन चुके थे। दीनभाव से बाबा के पास आकर उनकी सेवा करने लगे। गंभीरनाथ कभी अलौकिक-शक्ति का प्रयोग नहीं करते थे। वे मन ही मन माधोलाल की स्थिति पर गौर करते रहे। एक दिन उन्होंने देखा—माधोलाल बहुत ही दुखी और मायूस है। बाबा गंभीरनाथ ने सहसा कहा—"अच्छा ही होगा, बेटा। दुखी होने की जरूरत नहीं।"

बाबा का आशीर्वाद फलीभूत हुआ। हाईकोर्ट में माधोलाल विजयी घोषित हुए। उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि इस जीत के पीछे बाबा का आशीर्वाद है वर्ना जीतने की कोई आशा नहीं थी। अब तक माधोलाल स्वार्थवश सेवा करते रहे। इस घटना के बाद वे निष्काम-भाव से सेवा करने लगे।

कुछ दिनों बाद माधोलाल ने बाबा के आगे प्रस्ताव रखा कि यहाँ एक योग-गुफा निर्माण करने की आज्ञा प्रदान करें। बाबा की स्वीकृति मिलते ही पहाड़ पर योग-गुफा का निर्माण हुआ। बाहर एक वेदी बनायी गयी। वेदी के बीच में एक बेल का पेड़ लगाया गया। बाबा ने वेदी पर कई त्रिशूल गड़वाये। इस गुफा में बाबा लगभग १२-१३ वर्ष तक साधना करते रहे।

जिन दिनों बाबा गया में साधना करते रहे, उस समय प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी ने अपने शिष्यों से कहा था—"बाबा बड़े प्रेमिक और शक्तिसम्पन्न साधक महात्मा हैं। हिमालय के नीचे आपकी तरह कोई महात्मा नहीं है। पहाड़ पर न जाने कितने हिंस्र बाघ-साँप आदि जानवर हैं, पर बाबा की शक्ति से वे इतने मुग्ध हैं कि कोई अनिष्ट नहीं करते।"

कुलदानन्द ब्रह्मचारी ने जो उन दिनों गया के ब्रह्मयोनि पहाड़ पर साधना कर रहे थे, कहा है—"हिमालय के नीचे इन दिनों इनकी तरह शक्तिशाली महापुरुष कोई नहीं है। आप क्षणभर में सृष्टि-स्थिति-प्रलय कर सकते हैं।" महापुरुष सच्चिदानन्दजी के शब्दों में—"वे साक्षात विश्वेश्वर हैं।" रामदास काठिया बाबा, भोलानन्द गिरि आदि तत्कालीन अनेक संतों ने आपकी साधना की प्रशंसा की है।[१]

गंभीरनाथ में एक और विशेषता थी। बचपन से ही वे सितार बजाते थे। श्री नवकुमार विश्वास ने लिखा है—"आकाशगंगा के आश्रम में हम लोग सोये हुए हैं। चारों ओर सन्नाटा है। बाहर चाँदनी फैली हुई है। अक्सर रात के एक या दो बजे सितार बजाते हुए भजन गाने की आवाज आने लगती। गोसाईजी (विजयकृष्ण गोस्वामी) कहते—'लो, सुनो। बाबा गंभीरनाथ कितने मीठे स्वर में भजन गा रहे हैं।' कभी-कभी भजन सुनते ही आधी रात को अकेले दौड़े चले जाते थे। डेढ़-दो घण्टे बाद वापस आ जाते थे। उधर बाबा सितार बजाते, भजन गाते हुए, इस पहाड़ से उस पहाड़ पर चले जाया करते थे।"

श्री बरदाकान्त बनर्जी गया शहर के प्रसिद्ध वकील और विजयकृष्ण गोस्वामी के शिष्य थे। आपने लिखा है—"बाबा असीम क्षमताशाली थे। उनमें पर्याप्त योगैश्वर्य था, पर वे कभी इसका प्रदर्शन नहीं करते थे। हमेशा अपने को छिपाकर रखते थे। उनके स्वभाव और व्यवहार को देखकर कोई यह कल्पना नहीं कर सकता था कि आप शक्तिशाली योगिराज हैं। मैंने प्रत्यक्षरूप से ३-४ घटनाओं को देखा है।

"एक बार गया के लखपति वकील हरिहरनाथ का एकमात्र पुत्र मृत्युशय्या पर था। उनके पिता ने मेरे पास एक आदमी भेजकर कहलवाया कि एक बार बाबा को ले आइये। अगर वे न आ सकें तो कोई जड़ी-बूटी दें अथवा अपना चरण-रज दें। आज तक मैंने कभी किसी महापुरुष से इन सब मामलों में कोई प्रार्थना नहीं की है। लेकिन मृत्युशय्या पर पड़े इस बालक के लिए मुझे बाबा के पास जाना पड़ा। बाबा के यहाँ जाकर मैंने अत्यन्त विनीत भाव से प्रार्थना की। बाबा उनके यहाँ जाने के लिए राजी नहीं हुए। फलतः मैंने उनसे चरण-रज देने की प्रार्थना की। इस बात को उन्होंने स्वीकार कर लिया। कुछ रज लेकर उनके पैरों में पोता और उसे लाकर वकील साहब को दे दिया। चलते समय बाबा से आशीर्वाद देने के लिए कहा तो बाबा ने कहा—'क्लेश दूर हो जायगा। दो-तीन रोज में शान्ति होगी। वह अच्छा हो जायगा।' कहने की आवश्यकता नहीं कि तीसरे दिन बालक पूर्णरूप से स्वस्थ हो

१. महात्मा बाबा गंभीरनाथ—श्री नवकुमार विश्वास।

गया । यह बाबा के चरण-रज का प्रभाव था, वर्ना वह कब तक तड़पता या परलोकवासी ही बन जाता, कौन जाने ।

"एक बार एक गृहस्थ तन-मन-धन से बाबा की खूब सेवा करता रहा । वह बहुत दिन से सुनता आ रहा था कि बाबा में असीम अलौकिक शक्ति है । गुरुदेव ने कभी किसीके सामने इस बात का उल्लेख नहीं किया है । उसके मन में तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई कि गुरुदेव कुछ अलौकिक शक्ति का प्रदर्शन दिखायें । अतः बच्चों की तरह अत्यन्त दुलार दिखाते हुए अपनी प्रार्थना प्रकट कर दी ।

"बाबा शिष्य के मनोभाव को समझकर बोले—'आज तुम्हें योगिगुरु बाबा गोरक्षनाथ की एक कहानी सुनाता हूँ । जिन दिनों योगिगुरु बाबा गोरक्षनाथ योग-साधना में निमग्न थे, उन दिनों एक ब्राह्मण उनकी लगातार अनेक वर्षों तक सेवा करता रहा । वह नित्य उन्हें पायस खिलाता रहा । ब्राह्मण की सेवा से योगिगुरु संतुष्ट थे । उस ब्राह्मण की इच्छा थी कि वह योगिगुरु का योगैश्वर्य देखेगा । मौका समझकर एक दिन उसने नाथजी से निवेदन किया । सेवक के अभिमान को चूर्ण करने तथा सेवा-अपराध से मुक्त करने के लिए, पहले दिन से आज तक जितना दूध और चावल उन्होंने ग्रहण किया था, सारी सामग्री अलग-अलग करके उगल दिया ।'

"इस कहानी को सुनते ही उक्त शिष्य की बुद्धि खुल गयी । वह समझ गया कि इस कहानी के जरिये बाबा ने भर्त्सना की है । सेवा करने के बाद बदले में कुछ माँगना भयंकर अपराध है—इस बात को उस दिन वह समझ गया । आत्मग्लानि से भर जाने के कारण बाबा के चरणों पर गिरकर रोने लगा ।

"बाबा ने उसे सांत्वना देते हुए कहा—'तुमने जान-बूझकर या घमण्ड के कारण यह प्रार्थना नहीं की है, मगर आगे ऐसा मत करना, इसके लिए मैंने यह चेतावनी दी है ।' "

बरदा बाबू ने अपने अनुभवों का उल्लेख करते हुए लिखा है—"एक दिन मेरी तीव्र इच्छा हुई कि बाबा के पास जाकर उनका सितार बजाना सुनूँ । इस इच्छा को लेकर मैं बाबा के पास एक दिन सबेरे गया । मैंने उनसे कोई निवेदन नहीं किया । थोड़ी देर बाद एक खटिया पर बैठने के साथ उन्होंने अपने सेवक से सितार ले आने की आज्ञा दी । उनके सितार-वादन से मैं मुग्ध हो उठा । मेरे मन की कामना पूरी हो गयी । प्रणाम करने के बाद मैं वहाँ से चला आया ।

"एक दिन की घटना याद आती है । मैंने सुना था कि बाबा चाय अच्छी बनाते हैं । एक दिन सबेरे पहुँचा । मैंने अपनी इच्छा को प्रकट नहीं किया । उन दिनों आश्रम में उस वक्त चाय नहीं बनती थी । मेरे बैठने के साथ ही बाबा ने गरम पानी चढ़ाकर चाय बनाने की आज्ञा दी । चाय तैयार होने पर उन्होंने सेवक से कहा—'बाबू को लाकर दो ।' सेवक पीतल के गिलास में लाया तो उन्होंने कहा—'नहीं, ले जाओ । पत्थर के गिलास में ले आओ ।' इस घटना से स्पष्ट हो गया कि महात्मा लोग भी साधारण गृहस्थों का कितना ध्यान रखते हैं ।"

तीर्थयात्रा के सिलसिले में बाबा गंभीरनाथ राजस्थान के उदयपुर शहर में गये । आपके साथ ८-१० साधु थे । वहाँ एक निर्जन मैदान में धूनी जलाकर कई दिनों तक डेरा डालकर

रहें। यहाँ एक विचित्र घटना हो गयी थी। एक दिन भयंकर रूप से वर्षा हुई। सारा शहर, खेत, मैदान पानी से भर गया। लेकिन बाबा जहाँ अन्य साधुओं के साथ मौजूद थे, वहाँ पानी नहीं बरसा। यह चमत्कार देखकर स्थानीय लोगों ने समझा कि आप एक महापुरुष हैं। धीरे-धीरे यह बात फैलती चली गयी। दर्शन करने के लिए अनेक लोग आने लगे। बात उदयपुर-नरेश के पास पहुँची।

चाहे भक्ति की वजह से या कौतूहलवश या अपने स्वार्थ के लिए उन्होंने बाबा को राजमहल में आमंत्रित किया। बाबा ने निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया। राजा की ओर से काफी कोशिश की गयी, पर कोई फल नहीं निकला। फलस्वरूप राजा उपहार-सामग्री लेकर बाबा का दर्शन करने के लिए चल पड़े। निष्किंचन संन्यासी के लिए राज-दर्शन स्वीकृत नहीं है। राजा साहब आ रहे हैं सुनकर बाबा तुरत अपने सहयोगियों को लेकर काश्मीर रवाना हो गये।

योगिराज गंभीरनाथ केवल एक बार अपनी इच्छा से एक गृहस्थ के घर गये थे। वह अन्य कोई नहीं, उनका प्रथम निष्काम सेवक अक्कू था। अक्कू के बारे में पीछे उल्लेख किया जा चुका है। यहीं उन्होंने अपनी अलौकिक शक्ति का प्रयोग किया था। अक्कू ही नहीं, उसका सारा परिवार साधु-सेवा करना अपना धर्म समझता था। आर्थिक दृष्टि से अक्कू का परिवार दरिद्र था। अक्कू और उसका भाई मेहनत-मजदूरी करके पूरे परिवार का भरण-पोषण करते थे।

इन दिनों अक्कू मृत्युशय्या पर है। जब लोगों ने अनुभव किया कि अब बचने की कोई आशा नहीं है तब उसे श्मशान ले जाने का निश्चय किया गया। तभी लोगों ने सोचा कि जीवन भर अक्कू बाबा की सेवा करता रहा। इसकी सूचना उन्हें दे दी जाय। अक्कू का भाई मुन्नी रोता हुआ बाबा के पास पहुँचा और कहा कि अक्कू भैया चल बसे हैं। आप हम कृपा करिये।

बाबा निश्चल नहीं रह सके। उन्होंने मुन्नी से कहा कि अक्कू को श्मशान अभी मत ले जाओ। तुम चलो, मैं आता हूँ। इसके बाद वे अक्कू के घर आये। मृत अक्कू को स्पर्श कर उन्होंने उसके मुँह में पानी डाला। मृत अक्कू के शरीर में जीवन लौट आया। इसके बाद उसे खिचड़ी खिलाकर बाबा वापस आ गये। थोड़ी देर बाद अक्कू स्वस्थ हो गया।

बाबा ने अपने नियमों का यहाँ उल्लंघन किया। उन्हें लगता था जैसे अक्कू की सेवा का ऋण उन पर है। बाबा के पहले ही अक्कू का निधन हो गया। बाद में बाबा जब गोरक्षनाथ-मठ के महन्त बने तब वे अक्कू के पुत्र को दस रुपया मासिक भिजवाते रहे। गोरखपुर आने-जाने के संपूर्ण व्यय के अलावा कम्बल, कपड़ा आदि से सहायता करते रहे।

गया पर्वत पर जहाँ बाबा के भक्तगण आते थे, वहीं कुछ दुष्ट प्रकृति के लोग भी आते थे। एक दिन कुछ बदमाश आये और आश्रम पर ढेला फेंकने लगे। बाबा गोकुलनाथ ने चीखकर कहा—"कौन ढेला फेंक रहा है ?"

बाबा नृपतिनाथ भी बाहर आये और शोरगुल सुनकर बाबा गंभीरनाथ आसन से उठकर बाहर आ गये। उन्होंने ढेला फेंकनेवालों से कहा—"तुम लोग ढेला क्यों फेंक रहे हो ? आश्रम में जो कुछ है, उसे सहर्ष ले जा सकते हो।"

गुरुदेव की आज्ञा होते ही नृपतिनाथ ने आश्रम का दरवाजा खोल दिया। चोर झेंपते हुए चावल, दाल, बरतन, कम्बल आदि सारा सामान उठा ले गये। जाते समय बाबा को प्रणाम करते हुए आशीर्वाद माँगा। बाबा ने करुण स्वर में कहा—"तुम लोग अभावग्रस्त हो, यह जानता हूँ। दस-पन्द्रह दिन बाद आना। आज जो कुछ ले जा रहे हो, उस वक्त भी यही सब सामान मिलेगा। बेकार का उपद्रव मत करना।"

चोर सारा सामान लेकर चले गये। दूसरे दिन माधवलाल पण्डा आये। वे बरतन तथा अन्य सामग्री आश्रम में दे गये। इस घटना के बाद भी चोरों का गिरोह अक्सर आता रहा और दया के सागर बाबा उनके अभाव की पूर्ति करते रहे। दूसरी ओर आश्रम के अभाव की पूर्ति माधोलाल करते रहे। इस क्रम से असंतुष्ट होकर बाबा ने गया परित्याग करने का निश्चय किया। माधोलाल ने सम्मति नहीं दी। उन्होंने कहा—"बाबाजी, ये गरीब बेचारे कितना लेंगे ?"

इस स्थान में रहते समय एक बाघ अक्सर वहाँ आता था। वह कुछ देर तक बाबा के सामने बैठा रहता और फिर उनकी प्रदक्षिणा कर चला जाता था। एक दिन जब बाबा अनेक भक्तों से घिरे बैठे थे तब वह आकर सामने बैठ गया। उपस्थित भक्तों की हालत खराब हो गयी। डर के कारण कुछ लोग खिसकने लगे। यह देखकर बाबा ने कहा—"डरने की कोई जरूरत नहीं। आप एक साधु हैं। बाघ के रूप में यहाँ आते हैं।"

बाबा से आश्वासन पाकर लोगों का भय दूर हुआ। बाबा रेशमी वस्त्रों का उपयोग नहीं करते थे। उनका कहना था कि रेशम के कीड़ों का नाश करके ये वस्त्र बनाये जाते हैं। अगर कोई रेशमी वस्त्र उन्हें देता था तो वे उसे अस्वीकार नहीं करते थे। भक्त से लेकर दूसरों को दान कर देते थे।

कुछ दिनों बाद प्रयाग में कुंभ मेला लगा। देश के विभिन्न स्थानों से साधु तथा श्रद्धालुओं की भीड़ इलाहाबाद में एकत्र होने लगी। योगिराज गंभीरनाथ भी नाथ-सम्प्रदाय के साधुओं के साथ वहाँ मौजूद थे। पता नहीं, किस कारण से नागा संन्यासियों का दल उत्तेजित होकर नाथ-सम्प्रदाय के संन्यासियों को मारने लगा। देखते ही देखते कई लोगों के सिर फट गये और कुछ घायल होकर बेहोश हो गये। नागाओं का दल मारपीट करते हुए गंभीरनाथजी के पास तक आ गया। इधर नाथ योगीगण संख्या में कम रहने के कारण पीटे जा रहे थे और रह-रहकर चीख रहे थे।

गंभीरनाथ आसन पर समाधिस्थ हो गये थे। अचानक भयंकर चीख-पुकार सुनने के कारण उनकी समाधि भंग हो गयी। सामने का दृश्य देखकर वे तेज आवाज में बोल उठे—"बस, शान्त हो जाओ। शान्ति-शान्ति।"

इतना कहना था कि अत्याचारियों का क्रोध क्षणभर में गायब हो गया। वे मंत्रमुग्ध की भाँति वापस चले गये। इस घटना की चर्चा पूरे मेले में होती रही।

कुछ दिनों बाद गोरखपुर-मठ में अशान्ति उत्पन्न हो गयी। वहाँ से नाथपंथी संन्यासी आकर बाबा से शिकायत करने लगे। लाचारी में बाबा को वहाँ जाना पड़ा। तत्कालीन महन्त सुन्दरनाथ की भूमिका अच्छी नहीं थी। वे मठ की आमदनी अपने घरवालों तथा गुण्डों के पीछे खर्च करते रहे। सज्जन साधुओं का समूह धीरे-धीरे मठ से हटता चला गया। ऐसे ही

अवसर पर उन्हें आना पड़ा। यहाँ आकर बाबा ने गया के वकील बरदाकान्त को तत्काल गोरखपुर आने के लिए पत्र लिखा।

बरदाकान्त उन दिनों वकालत का पेशा छोड़कर विजयकृष्ण गोस्वामी के गंडेरिया आश्रम में रहते थे। पत्र पाते ही वे तुरत गोरखपुर आये। यहाँ आने पर उन्हें सारी घटनाएँ ज्ञात हुई। आश्रम की जायदाद को लेकर मनमुटाव चल रहा था। इस झगड़े को समाप्त करने के लिए हरिद्वार, गिरनार आदि स्थानों से नाथ-सम्प्रदाय के संत आये हुए थे। गोरखपुर के संभ्रान्त नागरिकों को बुलाकर एक सभा का आयोजन किया गया। सभा में सभी लोग अपने विचार प्रकट कर रहे थे, पर बाबा गंभीरनाथ मूक गाय की तरह शान्त बैठे रहे।

दूसरी ओर विपक्ष के लोग उत्तेजित स्वर में अनाप-शनाप बकते चले जा रहे थे। बहरहाल, सारी बातें तय हो गयीं और एक मसौदा तैयार हो गया। इस मसौदे की रजिस्ट्री दूसरे दिन हो गयी।

एक बार मठ में ब्राह्मण-भोजन का आयोजन किया गया। जितने लोगों को निमंत्रित किया गया था, उससे अधिक लोग आये। यह दृश्य देखकर प्रबंधकर्ताओं की हालत खराब हो गयी। खाद्य पदार्थों की कमी निश्चित रूप से होगी। दूसरी ओर किसी ब्राह्मण को बिना भोजन कराये वापस भेजना उचित नहीं है। कोई उपाय न सूझने पर लोग दौड़े हुए बाबा के पास गये और उन लोगों ने सारी कहानी सुनायी।

आसन्न संकट को समझकर बाबा ने एक नये चद्दर को खोलकर उसे देते हुए कहा—"खाद्य सामग्री को इस चद्दर से ढक दो और एक ओर से सामान निकालकर परोसते जाओ।"

अन्त में देखा गया कि सभी ब्राह्मणों को भोजन कराने के बाद भी काफी सामान बच गया है।

इसी प्रकार एक बार लोगों को आम खिलाने का आयोजन किया गया। इस बार भी लोगों की अपार भीड़ हुई। मठ में जितने आम थे, उससे पूरा नहीं होगा। बाजार से मँगाने का वक्त भी नहीं था। सभी परेशान हो उठे। समाचार बाबा के पास पहुँचा। उन्होंने आदेश दिया कि सभी आम इस खाट के नीचे रख दो। सब आम जब आ गये तब उसे चद्दर से ढक दिया गया। इसके बाद एक किनारे से आम निकालकर लोगों को खाने के लिए दिया गया। सभी लोगों को खिलाने के बाद भी काफी आम बच गये।

बाबा के पास अद्‌भुत लोग आते रहते थे। इनमें कालीनाथ ब्रह्मचारी स्मरणीय व्यक्ति हैं। आप विक्रमपुर के निवासी थे। नाम था—कालीकिशोर चक्रवर्ती। पुलिस-विभाग में पहले नौकरी करते थे। इस नौकरी से तंग आकर आपने त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद सद्‌गुरु की तलाश में घर से निकल पड़े। घूमते हुए गया में बरदाकान्त वकील के यहाँ आये। यहीं उनकी बाबा से मुलाकात हुई। बाबा ने इन्हें उपदेश देकर काशी भेज दिया।

बाद में बाबा जब गोरखपुर आये तब वे भी काशी से यहाँ आ गये। यहाँ वे तन-मन से बाबा के सेवक बन गये। आपकी सेवा उल्लेखनीय है। जिस प्रकार माँ अपने शिशु का हर वक्त, हर क्षण ध्यान रखती है, ठीक उसी प्रकार आप बाबा का ध्यान रखते थे। इधर बाबा अपने बारे में एक प्रकार से उदासीन थे।

कालीनाथ ब्रह्मचारी भोजन बनाने में कुशल थे। हर तरह की चीजें बनाकर बाबा को

खिलाया करते थे। अगर कभी बाबा किसी वस्तु को खाने में आपत्ति करते तो वे जबर्दस्ती करके खिलाते थे। कभी-कभी इस तरह बाबा को समझाते जैसे वे नन्हे शिशु हों। कभी नाराज होकर कड़ी बात भी कहते या स्वयं उपवास कर जाते। कालीनाथ के डर से बाबा आहार करते थे। बाबा के भोजन के समय उस कक्ष में कोई नहीं रहता था। कालीनाथ अपने कमरे में बैठा गप लड़ा रहा है। अचानक याद आया कि फलाँ तरकारी में यदि हरी मिर्च मिलाकर खाया जाय तो स्वाद अच्छा होगा। तुरत वह हरी मिर्च लेकर वहाँ पहुँच जाता। बाबा को कब किस चीज की जरूरत होगी, इस ओर से कालीनाथ बराबर सतर्क रहते थे। बाबा के लिए अपने हाथ से बिछौना सजाते थे। बाबा का कोई कार्य नौकरों के जिम्मे नहीं छोड़ते थे। ऐसी सेवा बाबा का कोई भक्त या शिष्य नहीं कर सकता था। मगर उनमें एक दोष था। वे बहुत जल्द उखड़ जाते थे। उनकी इस आदत के लिए बाबा उन्हें अद्‌भुत सजा देते थे। कुछ दिनों के लिए आश्रम त्याग करने का आदेश देते थे। यह आदेश कालीनाथ के लिए जेल की सजा के बराबर था। वे बाबा की सेवा से दूर नहीं रहना चाहते थे। अक्सर ऐसी सजा पाने पर कहते—"इस बार मुझे क्षमा कर दीजिए। आपसे दूर रहना मेरे लिए संभव नहीं है।"

बाबा ने अपनी यौगिक-शक्ति का प्रदर्शन नहीं किया है, परन्तु उनके विशिष्ट भक्तों में चमत्कार जरूर हुए हैं।

बांगलादेश में नोआखाली जिले के एक गाँव में एक बालक रहता था। बचपन से ही वह धार्मिक प्रवृत्ति का था। मगर साधु-महात्माओं के सम्पर्क में आने को कौन कहे, कभी उनसे उसने उपदेश भी नहीं सुना था। अचानक एक दिन स्वप्न में उसने बाबा को देखा और अभिभूत हो उठा। स्वप्न में देखा गया सन्त कौन है और वे कहाँ रहते हैं—इस बारे में उसे कोई जानकारी प्राप्त नहीं हुई। उनके बारे में जानकारी प्राप्त करने की व्याकुलता उसके मन में निरन्तर जाग्रत होती रही।

एक अर्से बाद वह फेनी कस्बे में आया और अपने एक मित्र से इस बात की चर्चा की। बालक की जबानी बाबा के रंग-रूप तथा स्थान के बारे में जानकारी प्राप्त करने के बाद मित्र ने कहा—"शायद वे गोरखपुर के बाबा गंभीरनाथ हैं। तुम चिन्ता मत करो। बाबा के कुछ शिष्य यहाँ हैं। मुमकिन है कि इनमें से किसीके पास बाबा का चित्र हो।"

सौभाग्य से एक भक्त के यहाँ बाबा का चित्र मिला। उसे देखते ही बालक ने कहा—"इन्हींको मैंने स्वप्न में देखा था।"

अब प्रत्यक्ष रूप से उन्हें देखने की व्याकुलता उसके मन में उत्पन्न हुई। फेनी से गोरखपुर जाने का किराया उसके पास नहीं था। उसकी तीव्र इच्छा देखकर लोगों ने मदद दी। तीसरे दिन वह गोरखपुर पहुँचा। उस समय रात के तीन बजे थे। स्टेशन से इक्के पर गोरक्षनाथ-मठ में आया तो देखा—बाबा एक खटिया पर बैठे हैं। पास ही एक लालटेन जल रही है। बाबा को प्रणाम करते ही उन्होंने कुशल समाचार पूछा और उसके लिए सोने का प्रबंध कर दिया। उसे लगा कि इतनी रात को लालटेन जलाकर बाबा उसके लिए प्रतीक्षा कर रहे थे।

इसी प्रकार मैमनसिंह का एक बंगाली बालक जो कि योगियों के सम्पर्क में रहता था, नित्य उनके साथ भजन गाता था। एक दिन ध्यान करते समय उसके हृदयपट पर एक महापुरुष का चित्र उभड़ आया। यह महापुरुष कौन हैं ? क्या वे जीवित हैं ?

कुछ दिनों बाद घटना-क्रम से वह बाबा के एक शिष्य के घर गया। वहाँ उनके चित्र को देखकर चौंक उठा। इन्हीं बाबा की मूर्ति को उसने देखा था। शिष्य से पूछने पर पता चला कि बाबा गोरखपुर में रहते हैं। बालक होने के कारण वह अकेला गोरखपुर नहीं जा सका। कुछ दिनों बाद बाबा के एक भक्त के साथ वह गोरखपुर बाबा के आश्रम में आया।

कुमिल्ला के एक डॉक्टर ने स्वप्न देखा कि वे एक अपरिचित स्थान पर खड़े हैं। अचानक एक महापुरुष उन्हें बड़े स्नेह के साथ बुलाकर एक कमरे में ले गये और वहीं उन्हें दीक्षा दी। यह महापुरुष कौन हैं, कहाँ रहते हैं, कैसे उनसे मुलाकात हो सकती है ? ऐसे अनेक सवाल उनके मन में उत्पन्न होने लगे। गोस्वामीजी के एक शिष्य उनके मित्र थे। एक दिन वे डॉक्टर साहब के यहाँ मिलने आये। उनकी अजीब हालत देखकर वजह पूछी। डॉक्टर ने अपने स्वप्न की कहानी सुनायी।

मित्र महोदय ने कहा—"आप जिस महापुरुष के बारे में वर्णन कर रहे हैं, मेरी समझ से वे गोरखपुर के महात्मा गंभीरनाथजी हैं। आप उनके पास चले जाइये।"

इस सलाह को मानकर डॉक्टर साहब सपरिवार गोरखपुर आये। मंदिर में प्रवेश करने के बाद उन्होंने अनुभव किया कि स्वप्न में इसी स्थान को देखा था। बाबा से दीक्षा लेने के बाद डॉक्टर ने अपने स्वप्न की चर्चा की। बाबा ने कहा—"तुममें जो संस्कार हैं, तुम्हारे साथ मेरा पहले का सम्बन्ध था।"

श्री शारदाकान्त बनर्जी ने अपनी भाँजी के बारे में लिखा है—श्री हरेन्द्र जब दीक्षा लेने के लिए अपनी पत्नी तथा बहन श्रीमती किरण को लेकर गोरखपुर गया था, उन दिनों मेरी बड़ी भाँजी श्रीमती हिरण्मयी देवी दीक्षा ग्रहण करने नहीं जा सकी थी। इस बात का दुःख उसे बराबर बना रहा।

इधर हरेन्द्र जब दीक्षा लेकर गोरखपुर से वापस आया तब एक दिन भोर के वक्त बड़े प्रसन्न भाव से उसने हरेन्द्र से कहा—"पिछली रात को एक सुन्दर सपना देखा है।"

हरेन्द्र ने पूछा—"क्या देखा है ?"

हिरण्मयी ने कहा—"सपने में मैंने यह देखा कि गंगा के उस पार एक पर्णकुटी में गयी हूँ। वहाँ हमारे मामा के गुरु श्रीमद् विजयकृष्ण गोस्वामी मौजूद थे। उनके सामने एक खाली आसन बिछा हुआ था। गोस्वामीजी ने मुझे देखकर पूछा—'क्या चाहिए ?' मैंने कहा—'मैं आपसे दीक्षा लेना चाहती हूँ।' गोस्वामीजी ने कहा—'मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ। बाबा गंभीरनाथ तुम्हें दीक्षा देंगे। वे पाखाने गये हैं। अभी आनेवाले हैं। मैं उनसे कह दूँगा।' बाबा के आने पर गोस्वामीजी ने सारी बातें बतायीं। मेरी दीक्षा हो गयी।"

सारी बातें सुनने के बाद हरेन्द्र ने अपने कमरे से एक फोटो लाकर कहा—"देख तो जिस महापुरुष को तुमने देखा है, क्या यह वही हैं ?"

हिरण्मयी ने कहा—"हाँ, यही हैं।"

आगे चलकर उसे बाबा से दीक्षा के बाद नाम प्राप्त हुआ तो उसने कहा—"स्वप्न में यही नाम मिला था।"

श्री मनोरंजन गुहठाकुरता ने लिखा है—"मेरे एक घनिष्ठ रिश्तेदार थे। इनके पिता ने किसी विशिष्ट साधु से इन्हें दीक्षा दिलाने के लिए तैयारी की थी। इन्हीं दिनों मेरे रिश्तेदार

ने स्वप्न में एक साधु-मूर्ति देखी, वह पिता द्वारा निर्धारित साधु-मूर्ति नहीं थी। आगे चलकर जब उन्होंने बाबा गंभीरनाथ से दीक्षा ली तब उन्होंने कहा कि मैंने अपने स्वप्न में इन्हीं बाबा को देखा था।"

वास्तव में यह सब घटनाएँ 'मिराकेल' नहीं हैं। मनुष्य का हृदय-राज्य जिस प्रकार हमारी दृष्टि में अन्धकारमय है, सभी के निकट ऐसा नहीं है। जिनका चित्त संयत होता है, उनका हृदय-राज्य पर काफी प्रभाव पड़ता है। योगिराज के अनेक शिष्यों को इसी तरह दीक्षा प्राप्त हुई है। कुछ लोग तो अपने जीवनकाल में प्रत्यक्ष रूप से दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सके। बेसहारा लोगों को चमत्कारिक ढंग से यात्रा-व्यय भी प्राप्त हुआ है। योग्य शिष्यों को बाबा अपनी शरण में बुलाते रहे हैं। जब कभी कोई जिज्ञासु स्वप्न की चर्चा करते हुए प्रश्न पूछता तो जवाब देते—"तुम लोगों से मेरा रिश्ता था, तुममें संस्कार था।"

सन् १९१४ में ज्ञात हुआ कि बाबा की एक आँख खराब हो रही है। डॉक्टरों की राय हुई कि इसका आपरेशन करना आवश्यक है। भक्त लोगों के दबाव और अनुरोध पर बाबा कलकत्ता आये।

बाबा कलकत्ता आये हैं, सुनकर महात्मा रामदास काठिया, बाबा के प्रधान शिष्य और हाईकोर्ट के तत्कालीन वकील श्री ताराकिशोर चौधरी (जो आगे चलकर बाबा सन्तदास के नाम से प्रसिद्ध हुए थे।) महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी के कई शिष्य बाबा का दर्शन करने आये। इनके अलावा बाबा के अगणित भक्तों की भीड़ जमा हो गयी।

आपरेशन के दिन से लेकर जितने दिनों तक डॉक्टरों ने उन्हें बिस्तर से उठने नहीं दिया, उतने दिनों को छोड़कर शेष दिनों तक बाबा अपने भक्तों और शिष्यों से घिरे रहते थे। कलकत्ता आगमन के कारण अनेक धर्मप्राण बंगाली भक्तों ने आपसे दीक्षा ली। इसमें कोई संदेह नहीं कि बाबा के मृदु व्यवहार तथा सजगता के कारण अधिकांश बंगाली भक्त श्रद्धा से विगलित रहते थे।

स्वयं बाबा भी अन्तर्यामी प्रभु की तरह प्रत्येक भक्त का ख्याल रखते थे। कब, किसे, क्या चाहिए, वे अपने कमरे में बैठे समझ जाते थे और उसकी पूर्ति तुरत कर देते थे। एक प्रकार से भक्तों के निकट यह चमत्कार ही था। इस प्रसंग में बाबाजी के अन्यतम शिष्य श्री बरदाकान्त बसु ने कई मनोरंजक घटनाओं का उल्लेख किया है।

"एक दिन दोपहर को भण्डारा हुआ। सभी संन्यासी खा-पीकर चले गये। ठीक उसी समय बाबा ने मुझसे कहा—'बरगद के पेड़ के नीचे कुछ उदासी संत बैठे हैं। उन लोगों ने भोजन किया या नहीं, जरा पता लगाओ।' उस दिन स्कूल में छुट्टी थी, इसलिए मैं सुबह से बाबा की सेवा में था। उदासी संतों को बाबा के पास आते नहीं देखा था और न किसीको उनके बारे में कहते सुना था।

बाबा के आज्ञानुसार मैं उदासी संतों के पास आया। पूछने पर पता चला कि वे लोग सुबह नहीं, अभी थोड़ी देर पहले आये हैं। लगभग ग्यारह बजे। आते ही भण्डारे में जाकर प्रसाद ग्रहण कर चुके हैं।

श्री मनोरंजन गुहठाकुरता, श्री चित्तरंजन गुहठाकुरता तीर्थयात्रा करते हुए गोरखपुर में बाबा का दर्शन करने आये। लगातार यात्रा करने के कारण उन्हें कई दिनों से स्नान करने

का अवसर नहीं मिला था। सिर पर तेल नहीं। मठ में तेल माँगने में संकोच हो रहा था। इसी ऊहापोह में थे कि सहसा एक सेवक इन्हें तेल-साबुन दे गया। बंगाली अपने भोजन में मछली जरूर खाते हैं। शाम के भोजन में इन्हें मछली भी खाने को मिली।

गोरखपुर के डॉक्टर श्री कान्तिचन्द्र सेन बाबा के शिष्य नहीं थे, परन्तु भक्त थे। दूसरी ओर बाबा के चिकित्सक भी थे। कान्ति बाबू के घर में जब कोई बीमार पड़ता और एलोपैथी तथा आयुर्वेदिक दवा से अच्छा नहीं होता था तब बाबा कभी भभूत और कभी 'आशापूरी धूप' दे देते थे। इससे रोगी अच्छा हो जाता था।

एक बार कान्ति बाबू की पुत्रवधू प्रसव-काल में तीन दिन तक बेहोश पड़ी रही। मिडवाइफ तथा डॉक्टरी सहायता से कोई लाभ नहीं हुआ। लाचारी थी, कान्ति बाबू बाबा की शरण में आये। बाबा ने थोड़ी भभूत दी। भभूत के सेवन से प्रसव सकुशल हो गया। जच्चा-बच्चा दोनों स्वस्थ हो गये।

इसी प्रकार एक बार कान्ति बाबू का छोटा लड़का सन्निपात का शिकार हुआ। इलाज से लाभ नहीं हो रहा था। दिन-दिन हालत खराब होती गयी। कान्ति बाबू ने बाबा के यहाँ आदमी भेजकर समाचार कहलवाया। बाबा ने आशापूरी धूप दिया। उसके धुएँ से बुखार दूर हो गया। कुछ दिनों बाद लड़का पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया।

एक बार बाबा अपने शिष्यों से घिरे बैठे थे। थोड़ी देर में एक सुसज्जित गाड़ी से एक अपूर्व सुन्दरी महिला उतरी। मंदिर के भीतर जाकर साथ लाये फल-मिष्टान्न रखने के बाद उसने बाबा को प्रणाम किया। प्रणाम भी उसने दूर से ही किया और इसके बाद वापस चली गयी। लोग उस महिला को गौर से देखते रहे।

पास ही बैठे एक शिष्य को लगा कि यह महिला वेश्या थी। वेश्या का मंदिर में प्रवेश! शिष्य के मन की बात बाबा भाँप गये, बोले— "वह वेश्या जरूर है, पर है तो हिन्दू।"

कभी-कभी अपने शिष्यों पर कृपा करके उनकी रक्षा करते थे। जिन दिनों वे कलकत्ता में थे, उन्हीं दिनों उन्होंने एक बंगाली सज्जन को दीक्षा दी। कलकत्ते में उस समय एक और योगी रहते थे जो अपने यौगिक चमत्कार का प्रदर्शन कर रहे थे।

योगिराज का कहना था कि अगर कोई व्यक्ति शान्त चित्त से अपने घर पर उनका आवाहन करे तो वे उसके सामने हाजिर हो जाते हैं। यह एक ऐसा प्रलोभन था जिसके प्रति साधारण लोग सहज ही आकृष्ट हो जाते थे।

एक व्यक्ति ने ध्यान में उनका आवाहन किया। थोड़ी देर में उक्त योगी उनके सामने आकर खड़े हो गये। उन्होंने कहा—"अब मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा।"

यह बात सुनकर वह व्यक्ति डर गया, क्योंकि वह इसके पूर्व ही बाबा गंभीरनाथ से दीक्षा ले चुका था। उसने अपनी स्थिति स्पष्ट की। योगी ने कहा—"मैं पूर्व दीक्षा को नष्ट करके तुम्हें दीक्षा दूँगा।"

इतना कहना था कि उस व्यक्ति ने पीछे कोई है, ऐसा अनुभव किया। पलटकर देखा तो बाबा गंभीरनाथ को देखा, जिनकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। बाबा के उस तेज को सहन न कर पाने के कारण योगी उन्हें प्रणाम कर अन्तर्धान हो गया। थोड़ी ही देर

में बाबा की मूर्ति भी गायब हो गयी। इस प्रकार बाबा अपने शिष्यों की बराबर रक्षा करते रहते थे।

जैसा कि कहा जा चुका है, बाबा कभी अपनी यौगिक शक्ति का प्रदर्शन करना पसन्द नहीं करते थे। संकटग्रस्त व्यक्तियों को वे 'भला होगा' या 'अच्छा होगा' कहकर आशीर्वाद देते थे। इस प्रसंग में एक घटना विचारणीय है।

एक बार वे भक्तों के बीच बैठे थे। किसी अंग्रेजी समाचारपत्र में यह समाचार छपा था कि एक बाबा बिना टिकट रेल से यात्रा कर रहे थे। मार्ग में जाँच होने पर टिकट चेकर ने उन्हें एक स्टेशन पर उतार दिया। इससे बाबा सख्त नाराज हो गये। इंजन के सामने कुछ दूर वे खड़े होकर देखने लगे।

इधर गाड़ी के छूटने का समय हो गया था। ड्राइवर ने गार्ड से इशारा पाकर गाड़ी स्टार्ट की, पर गाड़ी आगे नहीं बढ़ी। नीचे-ऊपर चारों ओर अच्छी तरह जाँच करने के बाद भी इंजन ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। सभी लोग परेशान हो उठे। सहसा एक खलासी की निगाह बाबा पर पड़ी। उसने सोचा—हो न हो, बाबा के कारण ही गाड़ी आगे नहीं बढ़ रही है।

बाद में उन्हें जब गाड़ी पर बैठा दिया गया तब जाकर गाड़ी आगे बढ़ सकी। भक्त लोग इस प्रसंग पर वहाँ चर्चा करते हुए उक्त बाबा की प्रशंसा करने लगे।

तभी बाबा गंभीरनाथ ने कहा—'इस तरह की शक्ति दिखाकर सिद्ध महापुरुष या महायोगी होना सिद्ध नहीं किया जा सकता। इस शक्ति को प्राप्त करना कोई असाधारण बात नहीं है। यह एक विद्या है। कुछ दिनों तक प्रयत्न करने पर यह विद्या प्राप्त की जा सकती है। यथार्थ योगी और महापुरुष इसे तुच्छ समझते हैं।'

बाबा गंभीरनाथ वास्तव में नाथ-सम्प्रदाय के एक ऐसे योगी थे जिन्हें योगिराज गोरखनाथ का एकमात्र प्रतिनिधि कहा जा सकता है। वे स्वयं बाबा गोरखनाथजी को शिव का अवतार समझते थे। उनकी भगवद्गीता के प्रति अपार श्रद्धा थी। अपने भक्तों को यही सलाह देते थे कि सर्वदा भगवन्नाम की साधना करते रहना चाहिए। इस नाम से सारा कष्ट दूर हो जायगा और मोक्ष की प्राप्ति होगी। यह स्मरण रखना कि अपने अहंकार यानी मैं के परित्याग से ही शान्ति और सुख की प्राप्ति होती है।

अपने मधुर व्यवहार से बाबा ने उत्तर प्रदेश और बिहार से कहीं अधिक बंगाल की जनता को प्रभावित किया था।

२० मार्च, १९१७ ई० को बाबा का शरीर खराब हुआ। सेवा करनेवाले भक्तों ने इस बात की सूचना बंगाल के अधिकांश भक्तों को तार द्वारा दे दी। गुरुदेव की अस्वस्थता का समाचार जानकर सभी गोरखपुर आने के लिए व्याकुल हो उठे। इन लोगों के रवाना होने के पहले ही एक और तार पहुँचा—२१ मार्च, बुधवार, सन् १९१७ ई०, त्रयोदशी को सुबह सवा दस बजे योगिराज बाबा गंभीरनाथ ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया।

●
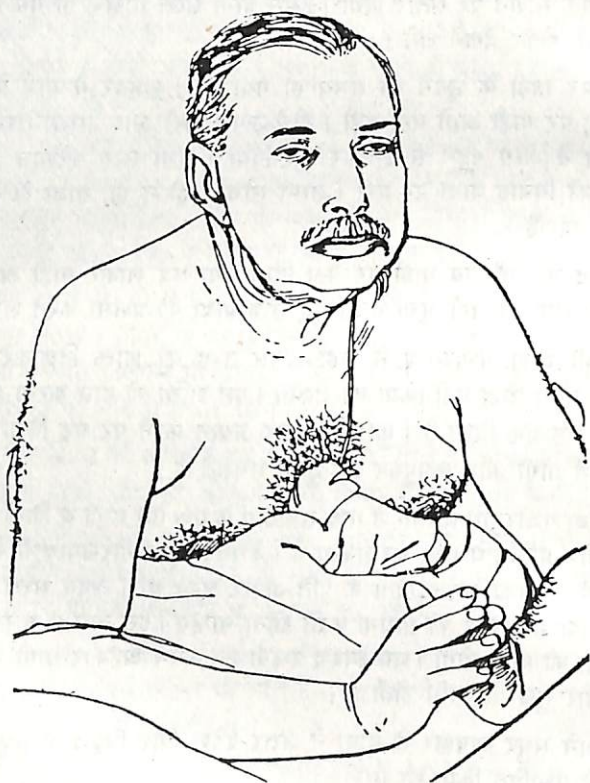
श्री श्री ठाकुर अनुकूलचन्द्र

श्री श्री ठाकुर अनुकूलचन्द्र

"मेरे बच्चो पास आओ। मैं तुम्हें सभी पापों से उद्धार कर तुम्हें प्रभु से क्षमा दिलवाऊँगा। मैं तुम्हें मुक्ति का संदेश देने आया हूँ। तुम्हारे शोक-संतप्त हृदय को शान्ति देने आया हूँ।" आज से २५०० वर्ष पूर्व पश्चिम में ईसामसीह ने यही संदेश तत्कालीन योरोपवासियों को दिया था।

भारत में इसके पूर्व भगवान् बुद्ध ने अपने अनुयायियों को यही संदेश दिया था और बीसवीं शताब्दी में ठाकुर अनुकूलचन्द्र ने।

उन्होंने कहा था—"अगर मेरे आदेशों का पालन करोगे तो तुम वास्तव में मुक्त हो जाओगे। 'सत्य' क्या है, इसे समझ जाओगे। तुम परम पिता के पुत्र हो। शक्तिवान् हो। दुर्बलों का कोई धर्म नहीं होता। पेड़ के नीचे ताली बजाने से जिस प्रकार सभी पक्षी पेड़ पर से उड़ जाते हैं, उसी प्रकार ताली बजाते हुए संकीर्तन करने से पाप-ताप उड़ जाते हैं। कृष्ण नाम से आफत नहीं आती। शब्द ही ब्रह्म है। पृथिवी पर प्राणी का उद्भव शब्द से ही हुआ है। जैसे आजकल हालैण्ड और फ्रांस में संगीत के माध्यम से दूध अधिक मिलता है, जापान तथा योरोप के खेतों में संगीत के माध्यम से अधिक फसल मिलती है, उसी प्रकार नाम करने से मुक्ति मिलती है। नाम ही शब्द ब्रह्म का प्रतीक है, इसीसे सभी का उद्भव हुआ है। नाम में ही विश्व-सत्ता का परिचय है। जिस प्रकार तुम्हारी प्राणशक्ति का तोषण करने पर तुम तृप्त होते हो, उसी प्रकार भगवान् के प्रति अनुराग रखते हुए नाम-संकीर्तन करने से वे तृप्त होते हैं। जितना नाम लोगे, उतना ही सद्गुरु के प्रति सत्ता का वेग बढ़ेगा। इसी प्रकार प्रगति करते रहने पर 'वासुदेवं सर्वमिति' हो जाते हैं। सभी में उसी एक को देखता हूँ और उसी एक को सबमें देखता हूँ।"

अनुकूलचन्द्र केवल उपदेश ही नहीं देते थे, बल्कि वे चमत्कारों के जरिये भक्तों में अपने उपदेशों पर विश्वास भी उत्पन्न कर देते थे।

श्री नगेन्द्रनाथ भट्टाचार्य कथावाचक थे। ठाकुर का भक्त बनने के बाद उन्होंने अपने रोजगार में दिलचस्पी लेना बन्द कर दिया। हर वक्त साधन-भजन करते रहते थे। फलस्वरूप अभाव में गुजर करते थे।

एक दिन सबेरे पत्नी ने आकर कहा—"चुपचाप बैठे हो, रसोई कैसे बनेगी ? बच्चे क्या खायेंगे ?"

"क्यो ?"

"न कोयला, न तेल, न नमक, न अनाज। घर में सोलहो दण्ड एकादशी है। पास में पैसे भी नहीं हैं जो बाजार से ले आऊँ।"

भट्टाचार्य ने शान्तस्वर में कहा—"तो मैं क्या कर सकता हूँ। ठाकुर (अनुकूलचन्द्र) की जो इच्छा है, वही होगा। मैं जैसे कह रहा हूँ, उसी प्रकार ठाकुर के निकट प्रार्थना करो।"

इतना कहने के बाद वे ध्यानस्थ हो गये। थोड़ी देर बाद घर के बाहर से आवाज आयी—"क्या यही नगेन पंडित का मकान है ?"

नगेन्द्र भट्टाचार्य झट बाहर आये तो देखा—कई मजदूरों के सिर पर चावल, दाल, तेल, मसाला, घी, कई कपड़े रखे हुए हैं। महिला ने उनके हाथ में कुछ रुपये देते हुए कहा—"एक जगह आप कथा बाँचने गये थे। यह सब आपका बकाया था। इन्हें सम्हालकर रख लीजिए।"

"मेरा तो कहीं बकाया नहीं है।" इतना कहने के पश्चात् वे वहीं बैठ गये। तभी भीतर से उनकी पत्नी आयी। सारा सामान देखकर वह चकित रह गयी।

बोली—"यह सब कहाँ से आया ?"

भट्टाचार्यजी खोये हुए थे। पत्नी के प्रश्न पर चौंक उठे। फिर धीरे से कहा—"सब ठाकुर की कृपा है।"

पत्नी के जरिये बात पूरे टोले में फैल गयी। लोगों को इस घटना पर विश्वास नहीं हुआ। एक दिन किसीने व्यंग्य किया—"जब ठाकुर की तुम पर इतनी कृपा है तब उनकी कृपा के जरिये अपनी जवान बेटी का विवाह क्यों नहीं कर देते ?"

नगेन्द्र भट्टाचार्य ने कहा—"जब मेरे ठाकुर की इच्छा होगी तब निश्चित रूप में बेटी का विवाह भी हो जायगा। मैं इस ओर से निश्चिन्त हूँ।"

भट्टाचार्य का दृढ़ विश्वास काम आया। कुछ दिनों बाद पड़ोस के गाँव के एक धनवान् लड़के के साथ बेटी का विवाह बिना दहेज के हो गया। अब गाँववालों को विश्वास हो गया कि निःसन्देह नगेन्द्र भट्टाचार्य के गुरुदेव महान् साधक हैं।

भूखे को भोजन देने के अलावा ठाकुर अनुकूलचन्द्र ने अंधे को दृष्टिदान भी दिया है। काशीपुर के निवासी श्री भवानीचरण पाल नदी के किनारेवाली पगडंडी से चल रहे थे। एक तो अँधियारी रात, तिसपर ऊबड़-खाबड़ पगडण्डी। परिचित मार्ग होने के कारण आगे बढ़ते जा रहे थे। अचानक उन्हें लगा जैसे वे राह भूल गये हैं। एक ओर नदी की खाई और दूसरी ओर घना जंगल। डर के कारण गला सूख गया।

एकाएक पीछे से पदचाप की आवाज आयी। चौंककर वे बोल उठे—"कौन है ?"

जवाब आया—"मैं हूँ।"

पास आने पर उन्होंने देखा कि पगडण्डी से स्वयं ठाकुर आ रहे हैं। भवानी बाबू से उन्होंने पूछा—"क्या बात है ?"

भवानी बाबू ने कहा—"बड़ी मुसीबत में फँस गया हूँ। चारों ओर इतना घना अँधेरा है कि कुछ दिखाई नहीं दे रहा है। कैसे घर पहुँचूँगा ?"

"इसमें घबराने की क्या बात है। आराम से चले जाइये।" इतना कहने के बाद ठाकुर ने उनका आलिंगन किया। इसके बाद ठाकुर चले गये। भवानी बाबू आगे की ओर चल

पड़े। कुछ दूर जाते ही उनकी बायीं आँख से ज्योति निकलकर चारों ओर प्रकाश फैलाने लगी। उसी प्रकाश के सहारे वे सकुशल चले आये।

ठाकुर अनुकूलचन्द्र अपने भक्तों तथा शिष्यों को बराबर यही उपदेश देते थे—"नाम-कीर्तन करो। नाम-कीर्तन करने से सारी मुसीबतें दूर हो जाती हैं या कमजोर हो जाती हैं। अगर सुख चाहते हो, शान्ति चाहते हो, स्वास्थ्य चाहते हो तो नाम-संकीर्तन करो। नाम का प्रचार करो। जिसके कारण जन्म लिया है, अगर उसे भूल गये तो अनन्त जीवन में फिर नहीं मिलेगा। अहंकार करना है तो नाम का करना। हनुमान्‌जी की तरह छाती चीरकर नाम दिखाना। मुँह बन्द मत रखो। चिन्ता शक्ति लाघव नहीं होगी। काम में कोई व्याघात नहीं होगा। नाम-कीर्तन करने से अनन्त ब्रह्माण्ड को भी तुम लय कर सकते हो। नाम के जरिये एनर्जी क्रिएट करो। इससे आयु में वृद्धि होगी। अधिक सोना नहीं चाहिए। जिस प्रकार शरीर पर हल्दी पोतने से मगर का डर नहीं रहता, उसी प्रकार सत्य नाम ग्रहण करने पर बेताल पर कदम नहीं गिरते। नाम ही परम ब्रह्म है।"

आगे आप कहते हैं—"एक मुलायम आसन पर पद्मासन लगाकर बैठ जाओ या ऐसे किसी आसन पर बैठो जिसमें आराम मिले। फिर कूटस्थ में मन को डालकर रीढ़ की हड्डी को सीधा करके नाम जपो। इस प्रकार नाम जपते-जपते शब्द प्राप्त करोगे। उस शब्द को स्थिर चित्त से सुनना चाहिए, मन लगाकर सुनो। सद्‌गुरु की तलाश में भटकने की जरूरत नहीं है। नाम के लिए भटकना चाहिए और वह भी मन में विश्वास लेकर। नाम क्या है, यह जानते हो ? यह मन को अन्तर्मुखी करता है। इससे सरल उपाय कुछ भी नहीं है।"

नाम का प्रभाव निम्नलिखित घटना से स्पष्ट हो जाता है। यह सन् १९२१ की घटना है। कलकत्ता के बागबाजार में, काली कृष्ण चक्रवर्ती स्ट्रीट में पन्नालाल मुखर्जी के घर यह घटना हुई थी; जब ठाकुर द्वारा निदेशित नाम का चमत्कार देखने में आया था।

पन्नालाल के घर की एक लड़की ने एक मृत पुत्री का प्रसव किया। गर्भ में ही लड़की मर गयी थी। उसका शरीर विवर्ण हो गया था। गरम तथा ठंढे पानी से स्नान कराने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। नर्स ने कहा —"लड़की मर चुकी है। इसे फेंक दीजिए।"

ठीक उसी समय पन्नालाल की माता ने मृत पुत्री को गोद में लेकर ठाकुर द्वारा प्रदत्त नाम जपने लगीं। नाम जपते हुए वे बार-बार उनके नाम से प्रार्थना करने लगीं—"ठाकुर, यह लड़की मर गयी है, इसके लिए हमें कोई दुःख नहीं है, पर तुम्हारे नाम पर जो कलंक लगाया गया, यह मुझसे सहन नहीं हो सकेगा।"

धीरे-धीरे आधा घंटा बीत गया। मृत पुत्री के संस्कार के लिए लोग कफन वगैरह ले आये। घर में लोग रोने लगे। इसी समय देखा गया कि लड़की के शरीर का रंग बदल रहा है। अभी कुछ देर पहले नीला था जो अब लाल रंग में बदल रहा है। यह देखकर सभी उत्साहित हुए। सभी मिलकर नाम जपने लगे। नाम का स्वर पूरे क्षेत्र में गूँजने लगा। अचानक लड़की रो पड़ी। सभी विस्मय से अवाक् रह गये। यह नाम का प्रभाव था।

इस प्रकार की कई घटनाएँ हुई हैं। ठाकुर के एक भक्त थे—श्रीकान्त सरकार। कठिन रोग से पीड़ित थे। बचने की कोई आशा नहीं थी। शायद इसीलिए वे सपरिवार रातुल से

कुष्टिया चले आये। बड़े-बड़े डाक्टरों को दिखाया गया। होमियोपैथिक इलाज हुआ। गुरु-भाइयों ने उनके जीवन की आशा नहीं छोड़ी। वे बराबर इलाज कराते रहे।

उस रात को वीरेन्द्रनाथ राय मुख्तार, डाक्टर सतीशचन्द्र और उनके सहायक उपेन्द्रनाथ दे रोगी की सेवा कर रहे थे। वे लोग उच्चस्वर में नाम-कीर्तन कर रहे थे। सहसा इन लोगों को ज्ञात हुआ कि रोगी धराधाम छोड़ चुका है। अब क्या किया जाय ? सोचा—यह सूचना सभी को दे दी जाय, फिर यह सोचकर इन लोगों ने विचार बदल दिया कि रात अधिक हो गयी है, अब कल सबेरे इसकी सूचना दी जायगी।

उपेन्द्रनाथ दे ने कहा—"अब हम शान्तिपूर्वक भोर होने तक नाम-संकीर्तन करते रहें। नाम-संकीर्तन से मुमूर्षु व्यक्ति को भी प्राणदान मिल जाता है। शायद ठाकुर की कृपा से चमत्कार हो जाय।"

अन्य दोनों मित्रों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर कीर्तन करने लगे। थोड़ी-थोड़ी देर बाद वे श्रीकान्त बाबू के मुँह में चरणामृत डाल देते थे। भोर के वक्त देखा गया कि श्रीकान्त बाबू की साँस चलने लगी है। नाड़ी का पता लग गया। यह देखकर तीनों व्यक्ति प्रसन्नता से नाचने लगे। उन्हें उस दिन यह ज्ञात हो गया कि नाम का कितना प्रभाव है।

सद्गुरु का बड़ा प्रभाव होता है। यही वजह है कि योगी पुरुष आधार देखकर शिष्य बनाते हैं। अगर शिष्य अपने गुरु के बताये जप-साधन को पूर्ण नहीं करता या उनकी आज्ञा का पालन नहीं करता तो उसे गुरु को ही पूर्ण करना पड़ता है वर्ना शिष्य संकट में फँस जाता है। दूसरी ओर भक्तों और शिष्यों के संकट को दूर करने का अर्थ यह है कि ईश्वर-प्रदत्त नियम में व्यवधान डालना, जिसके कारण गुरुओं को कष्ट झेलना पड़ता है। परमहंस रामकृष्ण को कैंसर, जगद्गुरु शंकराचार्य को भगन्दर तथा विजयकृष्ण गोस्वामी को रोगी बनना पड़ा था। ठाकुर अनुकूलचन्द्र भी कई बार शिष्यों को रोग से मुक्ति दिलाने पर पीड़ित हुए थे।

ठाकुर अपने एक भक्त के यहाँ ठहरे हुए थे। वहीं सतीशचन्द्र गोस्वामी नामक दूसरे भक्त ठाकुर का दर्शन करने आये। प्रणाम करते समय कमर की पीड़ा से कराह उठे। यह देखकर ठाकुर ने पूछा—"क्या बात है, सतीश दादा ?"

सतीशचन्द्र ने ठाकुर के दोनों पैरों को पकड़ते हुए कहा—"अब इस बात की चर्चा मत कीजिए।"

मगर ठाकुर सारी बात समझ गये। इसके बाद दोनों व्यक्ति जलपान करने बैठे और तभी चमत्कार हुआ। जलपान के पश्चात् सतीशचन्द्र गोस्वामी तड़ाक से खड़े हो गये। लगा, जैसे वे कमर-दर्द से पीड़ित ही नहीं थे जब कि ठाकुर की हालत खस्ता हो गयी। कमर-दर्द के कारण वे खड़े नहीं हो पा रहे थे।

उनकी दशा देखकर गोस्वामीजी ने कहा—"मैंने आपसे पहले ही कहा था कि मेरे दर्द की बात न पूछें। मेरा दर्द तो ठीक हो गया, अब आप उस दर्द से परेशान हो गये।"

इसी भवन में रहते समय एक बार वे बुखार से पीड़ित हुए। इलाज से ठीक नहीं हो रहा था। भक्त डा० सतीशचन्द्र जोयारदार ने पूछा—"यह आपको क्या हो गया ?"

"मुझे तपेदिक हो गया है।"

डा० सतीशचन्द्र ने कहा—"यह रोग नाममय शरीर में हो नहीं सकता। उसके सभी विषाणु अपने-आप मर जायँगे।"

ठाकुर ने कहा—"एक व्यक्ति को हुआ था। उसने प्रार्थना की कि यह रोग ले लो, मुझसे सहा नहीं जा रहा है। तुम सहन कर लोगे। उसकी प्रार्थना के कारण यह रोग हो गया।"

इस रोग के कारण वे लगभग तीन माह तक कष्ट पाते रहे। कई जगह हवा-पानी बदलने पर भी स्वस्थ नहीं हुए। अन्त में हिमायतपुर आये तब उनका रोग दूर हुआ। इसी गाँव में आपका जन्म हुआ था।

आपके पिता का नाम शिवचन्द्र चक्रवर्ती और माता का नाम मनमोहिनी देवी था। आपके पिता कुशल प्रशासक, दयालु, परोपकारी, क्षमाशील एवं कर्मठ व्यक्ति थे। अपने इन गुणों के कारण वे अपने इलाके में गण्यमान्य माने जाते थे। छुआछूत या ऊँच-नीच की भावना को वे घृणा की दृष्टि से देखते थे।

कहा जाता है कि अपने मझले लड़के के विवाह के अवसर पर किसी अस्पृश्य जाति के लड़के से पानी माँगकर पी लिया था। उनके इस अपराध के कारण बिरादरीवालों ने इन्हें जातिच्युत करने का निश्चय किया। शिवचन्द्रजी ने अपने विरोध की कोई चिन्ता नहीं की। वे अपने निश्चय पर अटल रहे।

इसी परिवार में अनुकूलचन्द्र का जन्म १४ सितम्बर, सन् १८८८ ई० में हुआ था। दिन था—शुक्रवार। उस दिन बंगाल में 'ताल नवमी' का उत्सव मनाया जा रहा था। मनमोहिनी देवी के गुरु थे—उत्तर भारत के महान् योगी श्री श्री हुजूर महाराज। अनुकूल के जन्म के पहले ही उनका तिरोधान हो गया था। मनमोहिनी देवी ने अपने पुत्र के बारे में हुजूर महाराज के शिष्य सन्त महाराज सरकार को विस्तार से सूचना दी। महाराज के आदेशानुसार माता ने बालक अनुकूलचन्द्र को दीक्षा दी।

अनुकूलचन्द्र के जन्म के पूर्व एक संन्यासी भिक्षा माँगने मनमोहिनी देवी के दरवाजे पर आया था। भिक्षा लेने के बाद उसने कहा—"बेटी, तुम्हारा प्रथम पुत्र महापुरुष होगा। पूर्णानन्द दान करेगा। सत्संग से तुम्हारा भवन कोलाहलपूर्ण बन जायगा।"

दीक्षा देने के साथ ही बालक संज्ञाहीन हो गया। होश में आने पर उन्होंने कहा—"मैंने एक दाढ़ीवाले ज्योतिर्मय पुरुष को अपने चारों ओर खड़ा देखा। जिधर देखता, उधर ही वे दिखाई देते थे। आपने जो नाम सुनाया, इसे तो आपके गर्भ में रहते समय सुन चुका हूँ।"

आश्चर्य की बात यह हुई कि इधर माँ ने अपने बेटे को दीक्षा दी और उसी परम सन्त सरकार ने अपने प्रिय शिष्य श्री आनन्दस्वरूप से कहा—"आज मेरा काम हो गया।" इस कथन के कुछ दिनों बाद वे स्वर्गवासी हो गये।

अन्नप्राशन के समय इनके सामने मिट्टी का ढोंका, पुस्तक और रुपये रखे गये थे। बालक ने मिट्टी का ढोंका और पुस्तक को स्पर्श किया। यह देखकर पंडित ने कहा—"यह बालक आगे चलकर भूस्वामी, त्यागी और विद्वान् होगा।"

इसी अवसर पर माँ ने बालक का नाम अनुकूलचन्द्र रखा। केवल यही नहीं, 'अ नु कू ल' अक्षरों के आधार पर चार पंक्तियों की कविता लिखी—

अकूले पड़िले दीन हीन जने
नुयाइओ शिर कहिओ कथा
कूल दिते तारे सेध प्राणपंणे
लक्ष्य करि तार नाशिओ व्यथा ।

बचपन से ही आप मेधावी थे। हर वक्त हाथ में एक लाठी लेकर घूमते थे। पेड़-पौधे से लेकर हर किसीको जिसे सामने पाते, उसी पर रोब जमाते थे। इनकी इस आदत को देखकर लोगों ने इन्हें 'गाड़ीवान' कहना प्रांरभ किया था।

इसमें कोई संदेह नहीं कि शिशु-अवस्था से ही आपमें अलौकिक प्रतिभा उत्पन्न हो गयी थी। अपनी ऐशी शक्ति के माध्यम से अनहोने काण्ड कर बैठते थे। एक बार आप अपनी माँ तथा नानीमाँ के साथ नाव द्वारा कहीं जा रहे थे। अचानक हवा तेज हो गयी। पद्मा नदी की ऊँची-ऊँची तरंगें उछलने लगीं। नाव और उस पर सवार लोगों की हालत नाजुक हो गयी।

तभी बालक अनुकूल ने माझियों से कहा—"नाव तुरत किनारे लगाओ।"

तीन वर्ष के बालक की चेतावनी काम कर गयी। नाव मँझधार से किनारे आने लगी। नाव में पानी भरता जा रहा था। ज्योंही नाव किनारे लगी त्योंही नाव पानी के बोझ से डूब गयी।

इसी प्रकार एक बार माँ आपको गोद में लेकर अपने पड़ोसी के बीमार बच्चे को देखने गयी। बीमार बच्चे को देखते ही बालक अनुकूल ने कहा—"यह केवल १८ दिन जीवित रहेगा।" बात सही प्रमाणित हुई।

गाँव के मुकुन्दलाल बसु के बाग में बच्चे उपद्रव किया करते थे, जिसके कारण वे नाराज होकर मारने दौड़ते, गालियाँ देते थे। एक दिन बालक अनुकूल ने कहा—"इस लोक के बाग की हिफाजत करने से अच्छा है कि आप परलोक के बाग की हिफाजत करें।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि कुछ दिनों के भीतर वे परलोक में बाग की रखवाली करने चले गये।

मछुओं का तालाब से मछली पकड़ना उन्हें पसंद नहीं था। इसे वे साफ जीव-हत्या समझते थे। अक्सर वे मछुओं से पकड़ी गयी सारी मछलियाँ खरीदकर पुनः तालाब में छोड़ देते थे। लेकिन इससे समस्या हल नहीं हुई। इससे मछुओं को लाभ होता था।

अन्त में एक दिन उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की—"हे ईश्वर, इस तालाब को सुखा डालो।" कुछ ही दिनों के भीतर तालाब सूख गया।

दयालु इतने थे कि किसी गरीब बच्चे को तन ढकने के लिए कपड़े का अभाव देखते तो स्वयं अपने सारे कपड़े उतारकर उसे दे देते और पूर्ण रूप से नंगे होकर घर वापस आ जाते थे।

गाँव की स्कूली शिक्षा समाप्त कर आप पाबना इंस्टिच्यूट में भर्ती हुए। वहाँ से आपने मेडिकल कालेज में दाखिला लिया। उन दिनों पिताजी ने आपको अमूल्य शिक्षा देते हुए कहा था—"तुम्हारे पास अच्छे घराने के लड़के बराबर आते हैं, यह अच्छी बात है। तुम्हें उन

लोगों के स्वागत-सम्मान का ध्यान रखना चाहिए। मेरे कहने का उद्देश्य यह है कि तुम मन लगाकर डाक्टरी पढ़ो। बाद में अच्छे ढंग से रोजगार करो। घर के सभी लोग आराम से खा-पी सकें, पहन सकें, इस ओर ध्यान रखना तुम्हारा कर्त्तव्य है। तुम्हें ठगकर कोई अपना स्वार्थ सिद्ध करे, इसे कभी सहन मत करना। यह लक्ष्य बराबर रखना कि तुम्हारे जरिये लोगों का भला हो। साथ ही यह भी ध्यान रखना कि उपकृत व्यक्ति साँप की तरह डस न ले। उसका उपकार इस प्रकार करना ताकि वह तुम्हें नुकसान न पहुँचा सके।"

अनुकूल ठाकुर ने अपने बचपन के बारे में कहा है—"जब मुझे काफी तकलीफ होती थी तब मैं 'माँ-माँ' कह उठता था। उस वक्त काली माता आतीं। मेरे साथ बातें करतीं, मेरे सिर पर हाथ फेरती थीं। इससे मुझे शान्ति मिलती थी। काली माता को देखने पर मुझे ऐसा आभास होता था जैसे उनमें और मेरी माँ में कोई अन्तर नहीं है। शायद इसीलिए अपनी माता के प्रति मेरा आदर अधिक बढ़ गया था। बचपन में हमारी हालत अच्छी नहीं थी। नौकरों के साथ मैं भी नारियलों का बोझा लादकर चला करता था। सिर पर भारी बोझ रहने के कारण ठीक से चल नहीं पाता था। उस समय कातर स्वर में माँ-माँ कह उठता था और तब सहसा मेरे सिर का बोझ हल्का हो जाता था। मेरी काली माता उस बोझ को अपने सिर पर लाद लेती थीं। मुझे आगे बढ़ने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। मैं यह अनुभव करता कि अब मेरे सिर पर कोई बोझ नहीं है।"

ठाकुर ने अपने बचपन की गरीबी का जिक्र किया है। वास्तव में उन दिनों वे आर्थिक कठिनाइयों से गुजर रहे थे। जिन दिनों आप मेडिकल कालेज में अध्ययन कर रहे थे, उन दिनों आपकी स्थिति काफी खराब थी। दाने-दाने को मुहताज थे। एक मित्र के मेस में कुछ दिनों तक रहने के पश्चात् आप ग्रे स्ट्रीट स्थित कोयले के गोदाम में आकर रहने लगे। कभी फुटपाथ पर तो कभी सियालदह स्टेशन के प्लेटफार्म पर 'हितवादी' अखबार बिछाकर सोते थे। खाने-पहनने का अपार कष्ट आपने सहन किया है। अध्ययन के लिए स्ट्रीट लाइट के नीचे खड़े होकर पढ़ते थे। जाड़े के दिनों में हलवाई की भट्ठी के पास रात गुजारते थे। भूखे पेट सोना और तपती दोपहरी में नंगे पाँव पैदल चलते थे। पुस्तक खरीदना दूर की बात, एक कलम तक नहीं खरीद पाते थे। इस परिस्थिति में भी लोगों की सेवा करते हुए दृढ़ता के साथ जीवन से संघर्ष करते रहे। इन्हें अछूतों से घृणा नहीं थी। इनका कहना था कि "अछूत भी भगवान् के पुत्र हैं। जाति-भेद का निर्माण हमने किया है। कुलियों को सिर पर बोझ उठाते देख मुझे अपार कष्ट होता था। मैंने भी कुली का काम किया है। कुली लोग मुझे बहुत मानते थे।"

आपका विवाह १७ वर्ष की उम्र में हो गया था। आपकी पत्नी का नाम सरसीबाला (षोड़शीबाला) था। जिस दिन आपके विवाह की बात पक्की हुई, उस दिन आपकी नानी ने बतासे से अपना तुलादान करवाकर मुहल्ले में बँटवाया था।

पिताजी जब तक जीवित थे तब तक आपको कोई कष्ट नहीं हुआ, परन्तु उनके निधन के बाद परिवार पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। अत्यन्त धैर्य के साथ आप आनेवाले संकटों से जूझते रहे।

मेडिकल कालेज से पास होकर आप अपने गाँव चले आये। एलोपैथिक के साथ-साथ होमियोपैथी दवाओं का प्रयोग करते रहे। कुछ दिनों बाद आपकी ख्याति चारों ओर फैल

गयी। अब आपने उन गरीब और असहाय लोगों की सेवा शुरू की जिन्हें समाज उपेक्षित दृष्टि से देखता था। उनके इस कार्य से समाजपतियों का दल रुष्ट हो गया। लेकिन आप इस ओर से निर्विकार रहे। इन्हीं लोगों की सहायता से आपने कीर्त्तन-मंडली स्थापित की।

धीरे-धीरे यह मंडली विशाल बन गयी। इनके इस कार्य से माता भी अप्रसन्न हो गयी थी। लेकिन एक दिन जब पुत्र को भावाविष्ट होते देखा तो समझ गयीं कि मेरा पुत्र आध्यात्मिक जगत् में उच्चस्तर तक पहुँच गया है। वे अपनी मंडली लेकर पूरे शहर में कीर्त्तन करते रहे। आपकी संगठन-शक्ति देखकर पाबना शहर के लोग चकित रह गये।

इसी बीच एक घटना और हो गयी। माता तथा परिवारवालों के दबाव के कारण आपने अपनी पत्नी की बहन सर्वमंगला से विवाह किया। षोड़शीबाला को भक्त लोग बड़ी माँ और सर्वमंगला को छोटी माँ कहते थे।

अनुकूल ठाकुर ने नारा दिया—"मेरे पास आओ, चाहे तुम सिक्ख हो या बौद्ध, जैन हो या ईसाई, मुसलमान हो या अछूत, चाहे चाण्डाल हो। मेरे पास आओ, मैं तुम्हें मार्ग बताऊँगा। शान्ति दूँगा। अगर तुम अपना कल्याण चाहते हो तो साम्प्रदायिक भेदभाव भुलाकर एक हो जाओ। तुम्हारे कारण राष्ट्र है। जब तक जन-जीवन सुनियंत्रित नहीं होगा तब तक राष्ट्र दृढ़ नहीं होगा, मानवता का कल्याण नहीं होगा। अपने में आध्यात्मिक चेतना जाग्रत करो। मनुष्य की सेवा करो।"

कभी-कभी भक्तगण अपने गुरु की शक्ति आजमाने के लिए नाटक करते थे। कुछ लोगों को उनकी ऐशी-शक्ति पर सन्देह होता था। एक बार कोकनचन्द्र ने अपने मित्र किशोरीमोहन से कहा—"आज ठाकुर की परीक्षा लेनी चाहिए।"

उस दिन किशोरीमोहन के यहाँ 'नवान्न-भोग' का आयोजन किया गया था। ठाकुर की परीक्षा लेने के लिए दो जगह आसन बिछाकर दोनों स्थानों पर भोग दिया गया। प्रथम भोग पागल हरनाथ (एक योगी पुरुष) के नाम पर तथा दूसरा भोग ठाकुर अनुकूलचन्द्र को समर्पित किया गया। भोग समर्पित करने के बाद दोनों व्यक्ति इस बात की प्रतीक्षा करने लगे कि ठाकुर स्वतः अपना भोग खाने के लिए आते हैं या नहीं। अगर आते हैं तो अपना भोग खायेंगे या नहीं।

काफी देर प्रतीक्षा करने के बाद भी जब ठाकुर नहीं आये तब कोकनचन्द्र उन्हें बुलाने के लिए गये। किशोरीमोहन के घर से ठाकुर के घर की दूरी पाँच मिनट का रास्ता है। कोकनचन्द्र जब ठाकुर के घर पहुँचे तो पता चला कि अभी तुरत वे किशोरीमोहन के यहाँ गये हैं। यह समाचार सुनते ही तेजी से कोकनचन्द्र वापस आ गये। आज वे ठाकुर की शक्ति-परीक्षा करनेवाले थे।

ठाकुर ने कहा—"किशोरी, आज तो काफी इंतजाम किया है। क्या कुछ खिलाओगे ?"

"जरूर खिलाऊँगा।"

"सचमुच खिलाओगे ?"

"हाँ, सचमुच खिलाऊँगा। आइये।"

"अरे, यह तो दो जगह भोग रखा है। कौन-सा खाऊँ ?"

"इसमें से जो पसन्द आये, उसे खाइये।"

"नहीं भाई, तुम नाराज हो जाओगे।"

"हम नाराज नहीं होंगे। आपको जो पत्तल पसन्द आये, उसीका भोग लगायें।"

ठाकुर ने सबसे पहले हरनाथजी को निवेदित पत्तल पर से ढक्कन हटाया। यह देखकर कोकनचन्द्र प्रसन्न हो उठा कि ठाकुर की उस्तादी अब पकड़ लूँगा। इधर ठाकुर ने उस पत्तल पर ढक्कन ढाँकते हुए कहा —"इस पत्तल का भोग नहीं, खाऊँगा, वर्ना तुम लोग नाराज होगे।"

किशोरीमोहन ने कहा—"आप खाइये, हम कुछ नहीं कहेंगे।"

ठाकुर ने हरनाथजी को निवेदित भोग को ढँककर अपने नाम पर निवेदित पत्तल से खाते हुए बोले —"यही मेरा है भाई, यही मेरा है।"

यह दृश्य देखकर दोनों भक्त श्रद्धा से विगलित होकर प्रेमाश्रु बहाने लगे।

उस दिन स्टीमरघाट से लौटते समय एक हलवाई की दुकान पर खजूर का संदेश (एक प्रकार की मिठाई) दिखाई दिया। उन्होंने सोचा—कितनी सुन्दर मिठाई है। ठाकुर को खिलाना चाहिए। वे दोनों संदेश को खरीदकर घर ले आये। घर आते ही पुनः उनके मन में ठाकुर की परीक्षा लेने की इच्छा उत्पन्न हुई।

उन्होंने सोचा कि आज अगर ठाकुर बिना बुलाये मेरे घर आकर, संदेश माँगकर खायेंगे तभी समझूँगा कि वे वास्तव में अलौकिक योगी हैं ....।

मन में यह विचार आते ही उन्होंने दोनों संदेश को एक चित्र के पीछे छिपा दिया। कुछ देर बाद ठाकुर आये। कीर्त्तन करने के बाद वे अपने घर चले गये। यह देखकर किशोरीमोहन को आश्चर्य हुआ कि आज ठाकुर ने संदेश माँगा नहीं और न खाया। आखिर यह कैसे हो गया?

किशोरीमोहन इसी चिन्ता में बैठे थे कि पुनः ठाकुर आये और कहा—"डाक्टर बाबू, जरा मुझे पानी पिला सकते हो?"

डाक्टर ने कहा—"पानी पीना रहा तो घर जब चले गये थे तब वहीं पी लेते। यहाँ क्यों वापस आ गये?"

"नहीं भाई, तुम पानी पिला दो।"

"यहाँ क्यों पानी पिओगे?"

"तुम्हारे यहाँ पानी पीने की इच्छा हुई, इसीलिए वापस आ गया।"

किशोरीमोहन ने एक गिलास पानी दिया। गिलास हाथ में लेकर ठाकुर ने कहा—"खाली पानी पिलाओगे। कुछ दो, उसे खाकर पानी पिऊँ।"

"क्या चाहिए?"

"तुम्हारे घर जो हो।"

"मेरे घर में कुछ नहीं है।"

यह बात सुनकर ठाकुर ने कहा—"ऐसा हो नहीं सकता। जो कुछ हो, ले आओ।"

"कह तो रहा हूँ कि कुछ नहीं है।"

"मीठा वगैरह?"

"मीठा कहाँ है ?"

"अरे वही, संदेश।"

"संदेश कहाँ से आयेगा ?"

"दो संदेश हैं।"

"मेरे पास संदेश कहाँ से आयेगा ? अब पानी पी लो।"

ठाकुर ने कहा—"मेरे हिस्से का खजूर के गुड़ का दो संदेश है। उसे चटपट ले आओ।"

अब डाक्टर किशोरीमोहन चौंके। फिर भी कृत्रिम ढंग से बोले—"संदेश-फंदेश नहीं है।"

अब ठाकुर उनसे लिपटकर दुलार करते हुए चित्र के समीप गिर पड़े। इसके बाद कागज की पुड़िया की ओर इशारा करते हुए पूछा—"इसमें क्या है ?"

"तंबाकू।"

"तंबाकू ? वह भी तसवीर के पीछे ?" कहते हुए उन्होंने उस पुड़िया को निकाला। उसमें संदेश देखते ही खाने लगे।

यह दृश्य देखकर डाक्टर किशोरीमोहन आनन्द से गद्‌गद होकर ठाकुर के चरणों पर गिर पड़े।

बड़े-बूढ़े कहते हैं—'पानी पीजिए छानकर और गुरु बनाइये जानकर।' कुछ शिष्य गुरुओं की प्रतिभा जाँचने के लिए इस प्रकार की घटनाएँ करते हैं, पर सद्‌गुरुओं से छल नहीं किया जा सकता।

सद्‌गुरु की व्याख्या करते हुए ठाकुर ने कहा—"जाँचकर ही सद्‌गुरु बनाना चाहिए। उन्हें भगवान् समझकर पूजा करनी चाहिए। यही वास्तविक पूजा है। सद्‌गुरु का सारूप्यलाभ होने पर भगवान् का सारूप्यलाभ होता है। हमारे यहाँ के गुरु अगर प्रेममय होते, कर्मी होते, उदार होते तो हमारा देश ऐसा न होता। एक बार जो मेरी शरण में आता है, उसे किस बात की चिन्ता ? वह निश्चित रूप से ब्रह्म में लीन होगा। एक बार अगर वह स्पर्श कर लेता है तो प्राण-मन से उसके अज्ञात में उसे स्वर्गराज्य में भेज देता हूँ। बाद में वह मेरा ही सारूप्यलाभ करता है। सत्य के विरुद्ध कमाण्ड करना, सद्‌गुरु के अन्तर से कदापि नहीं हो सकता और न वह 'मिरकेल' करते हैं। अगर वे ऐसा करते हैं तो वे सद्‌गुरु नहीं हैं। भगवान् को पाना कठिन नहीं है। सद्‌गुरु पाना ही कठिन है। समय होने पर सद्‌गुरु मिलते हैं, वे ही भगवान् होते हैं। सद्‌गुरु खोजने की जरूरत नहीं है, बल्कि विश्वास को खोजना चाहिए। जब मुझमें मेरा गुरु हुआ तब मैं सद्‌गुरु हुआ। कूटस्थ में सद्‌गुरु का ध्यान करते-करते मुझमें लय हो जाता है और तब मुझमें समा जाता है।"

अनुकूल ठाकुर इतने लोकप्रिय हो गये थे कि सामान्य-से-सामान्य व्यक्ति भी उनके निकट आसानी से पहुँच जाता था और उनके उपदेशों से प्रभावित हो जाता था। आपके भक्तों में देशबन्धु चित्तरंजनदास, सुभाषचन्द्र बोस की माँ तथा तत्कालीन अनेक कथाकार, कवि, नाट्यकार एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। आपने केवल संतों की तरह उपदेश ही नहीं दिया, बल्कि सामान्यजनों के जीविका-निर्वाह के लिए लघु उद्यमों की स्थापना भी की। यही वजह है कि न केवल देश के लोग, बल्कि अनेक विदेशी भी आपसे दीक्षा लेकर शिष्य बने।

शिष्यों में इस बात का कौतूहल था कि आखिर आप इतने सरल प्रकृति के होते हुए अतिमानव कैसे बने। इस कौतूहल को मिटाने के लिए शिष्यों ने मोहिनीमोहन शास्त्री को बुलाना चाहा। शास्त्रीजी अपने जमाने के प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। ठाकुर के निकट भक्तों ने अपनी इच्छा प्रकट की। उन्होंने कहा कि ठीक है, बुला लो।

पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि शास्त्रीजी कुष्टिया में नहीं हैं। ग्वालन्दो के राजा के यहाँ गये हुए हैं। भक्त लोग उदास हो गये।

इधर राजमहल में रहते समय शास्त्रीजी का मन न जाने क्यों उखड़ गया। हृदय के भीतर से मानो कोई कहने लगा—चलो कुष्टिया—चलो कुष्टिया। राज-परिवार के सदस्यों ने काफी मनाया, पर वे नहीं माने। एक अज्ञात आकर्षण उन्हें बराबर आकर्षित करने लगा।

सहसा उस दिन भक्तों को ज्ञात हुआ कि राजज्योतिषी मोहिनीमोहन कुष्टिया आ गये हैं। तुरत कुछ लोग उनके पास गये और ठाकुर के पास ले आये। भक्तों की इच्छा थी कि मोहिनीमोहन को ठाकुर का हाथ दिखाया जाय। लेकिन ठाकुर इसके लिए राजी नहीं हो रहे थे। काफी अनुनय-विनय करने पर राजी हुए।

ठाकुर ने कहा—"मेरा हाथ देखना चाहते हो, ठीक है। क्या तुम देख लोगे ?"

शास्त्रीजी ने कहा—"आपकी इच्छा होने पर जरूर देख सकूँगा।"

"ठीक है। लो, देखो।" ठाकुर ने अपना हाथ बढ़ाया।

शास्त्रीजी ने ठाकुर का हाथ पकड़कर देखा तो वे भौचक्के रह गये। असाधारण रेखाएँ थीं। अब तक अपने जीवन में हजारों लोगों की हस्तरेखाएँ देख चुके थे, पर ऐसी रेखाएँ किसी हाथ में नहीं देखीं। इसके साथ ही उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि रेखाएँ अपना स्वरूप दनादन बदल रही हैं। अब वे बतायें तो क्या बतायें।

इधर भक्तगण उत्सुकता के साथ शास्त्रीजी की ओर देख रहे थे। अन्त में शास्त्रीजी को कहना पड़ा —"देखिये, मैंने जीवन में अनेक लोगों की हस्तरेखाएँ देखी हैं, पर ऐसा हाथ आज पहली बार देख रहा हूँ। ठाकुर के बारे में कुछ भी कहने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है, क्योंकि आपकी रेखाएँ देखते-देखते इतनी तेजी से बदल रही हैं जो मेरी पकड़ के बाहर हैं। आप लोग मुझे क्षमा करें।"

इधर शास्त्रीजी अपना निर्णय दे रहे थे और उधर ठाकुर मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे।

शास्त्रीजी जब अपने घर लौटे तब मन में अपार श्रद्धा की भावना लेकर लौटे। कुछ दिनों बाद वे स्वयं अस्वस्थ हो गये। काफी दिनों तक इलाज होता रहा, पर बुखार दूर नहीं हो रहा था। आखिर एक दिन किसी भक्त के सुझाव पर वे ठाकुर के पास आये। ठाकुर उनकी पीड़ा को सुनने के बाद बोले —"आइये, आज आपको मैं नहला दूँ।"

उपस्थित सभी लोग घबराये। इतने तेज बुखार में स्नान ? एक तो शास्त्रीजी का शरीर कमजोर है। लेकिन शास्त्रीजी घबराये नहीं। उन्हें ठाकुर के चमत्कार पर दृढ़ विश्वास था।

ठाकुर ने उन्हें खूब नहलाया। स्नान करने के बाद शास्त्रीजी ने कहा—"जो बुखार पिछले एक माह से दूर नहीं हो रहा था, आज वही ठाकुर की कृपा से गायब हो गया। अब मैं आज से भात खा सकूँगा।"

वास्तव में ठाकुर के योगैश्वर्य को समझना कठिन था। कब, कहाँ, कैसे वे भक्तों पर

कृपा करेंगे, कोई नहीं जान पाता था। मुसीबत के वक्त सच्चे हृदय से पुकारिये, बस वे वहाँ देवदूत की तरह हाजिर हो जाते थे।

कुष्टिया से कुछ भक्त नाव द्वारा हिमायतपुर आ रहे थे। शाम के समय रवाना हुए थे। रात को पद्मा नदी में नौका चल रही थी। बरसात का मौसम होने के कारण नदी का पाट पाँच मील तक फैल गया था। हवा के कारण रह-रहकर उत्ताल तरंगें नृत्य कर रही थीं। ठीक इसी समय आँधी आयी। बंगाल में और खासकर पद्मा नदी के इलाके के लिए यह रोजमर्रा की घटना है। देखते ही देखते घना अंधकार हो गया।

मल्लाहों ने कहा—"अब मुश्किल है कि किधर नाव चलायें। नाव इतना चक्कर काट चुकी है कि किस दिशा से आये और किधर जाना है, समझ में नहीं आ रहा है।"

आँधी के झटके के कारण नाव काफी उछल रही थी। मल्लाहों की बातें सुनकर सभी यात्री घबराने लगे। इधर नाव की हालत नाजुक होने लगी। तरंगों के छींटों से नाव में पानी भरने लगा। झटका खाकर लोग एक-दूसरे पर गिरने लगे।

मल्लाहों ने कहा—"खुदा का नाम लो। कयामत आ गयी है। बचना मुश्किल है।"

आसन्न संकट से सभी घबरा उठे। मल्लाहों ने नाव खेना बन्द कर दिया। नौका अपनी इच्छा के अनुसार चलने लगी। नाव पर बैठे भक्त मन ही मन ठाकुर को याद करने लगे।

ठीक इसी समय दूर कहीं से प्रकाश हिलता नजर आया। यात्रियों ने कहा—उस प्रकाश की ओर नाव ले चलो। प्रकाश की ओर से हरि-ध्वनि की आवाजें आ रही थीं। पास आने पर देखा गया कि कमरभर पानी में खड़े ठाकुर लालटेन हिला रहे हैं।

सभी यात्रियों ने सकुशल किनारे उतरकर ठाकुर के चरणों में प्रणाम किया। ठाकुर ने सभी को गले लगाया। लोगों को समझते देर नहीं लगी कि आज ठाकुर की कृपा से ही हम लोगों की जीवन-रक्षा हुई है।

ठाकुर के भक्तों ने उनके उपदेशों का संकलन किया है। लगभग सौ से अधिक पुस्तकें हैं। असमी, बंगाली, हिन्दी और उड़िया भाषा में जीवनी तथा उपदेश प्रकाशित हुए हैं। देवघर में आपका बहुत बड़ा आश्रम है। देश में लगभग १५ लाख से अधिक आपके भक्त हैं।

२७ जनवरी, सन् १९६९ ई० की रात को जब सारा जग सो रहा था, उस समय अनेक भक्त बड़ी उत्कंठा के साथ ठाकुर के बारे में चिन्तन कर रहे थे। बाहर झींगुरों की आवाज से निस्तब्धता भंग हो रही थी। अपशकुन का प्रतीक उल्लू रह-रहकर चीख उठता था। भोर के समय लगभग ४-५५ पर ठाकुर अनुकूलचन्द्र ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया।

इस घटना के दो वर्ष बाद १० मई, सन् १९७१ ई० को बड़ी माँ भी चली गयीं।

●

बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ

बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ

मध्यप्रदेश स्थित ओंकारेश्वर तीर्थ दर्शन करने के पश्चात् बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ अपने भक्तों के साथ बस द्वारा खंडवा आ रहे थे। बस के भीतर कीर्तन हो रहा था। खंडवा से बम्बई मेल पर सवार होकर हबड़ा जाना है। बस ड्राइवर तेजी से गाड़ी चला रहा था। स्टेशन पँहुचने के बाद ज्ञात हुआ कि अब तो गाड़ी के छूटने का समय हो गया है।

बाबा के भक्तों में कुछ यात्री रेलवे के अफसर थे। वे तुरत ड्राइवर के पास पहुँचे और अपना परिचय देते हुए कहा कि गाड़ी को कुछ देर बाद रवाना कीजिएगा। हमारे पास कुछ सामान है, इसके अलावा यात्रियों में कई वृद्ध तथा महिलाएँ हैं।

यह घटना ब्रिटिश शासनकाल की है। उन दिनों नियमों का कड़ाई से पालन होता था। ड्राइवर ने इनके अनुरोध को अस्वीकार कर दिया। लाचारी में लोग बाबा के पास आकर बोले—"इस गाड़ी से हम नहीं जा सकते।"

"क्यों ?" बाबा ने पूछा।

"हम लोगों के साथ सामान काफी है। इन्हें चढ़ाने में काफी वक्त लगेगा। उधर गाड़ी छूटने का वक्त हो गया है। ड्राइवर से हम लोगों ने अनुरोध किया, उसे अनेक प्रकार से समझाया, पर वह मान नहीं रहा है।"

बाबा ने कहा—"उस बेचारे की क्या गलती है। उसे तो अपने कानून के अनुसार चलना है।"

अनुरोध करनेवालों ने कहा—"तब ठीक है। अब हम लोग इसके बादवाली गाड़ी से रवाना होंगे।"

"नहीं, नहीं।" बाबा ने कहा—"हम इसी गाड़ी से चलेंगे। इसके बाद अन्य कोई गाड़ी नहीं है।"

"आपको तो सारी बातें बता दी गयीं, फिर कैसे हम सवार हो सकते हैं ?"

बाबा ने कहा—"इसके लिए तुम लोग चिन्तित मत हो। देखो, यहाँ सीताराम बैठ गया। अब तुम लोग गाड़ी पर सामान रखना शुरू करो। सीताराम को बिना लिये गाड़ी आगे नहीं जा सकती।"

इतना कहकर बाबा सीताराम प्लेटफार्म की बेंच पर बैठ गये। बाबा का आदेश पाते ही भक्त लोग बाबा की जयजयकार करते हुए सारा सामान गाड़ी पर रखने लगे। शेष लोग कीर्तन करते हुए गाड़ी में बैठते गये।

पाँच मिनट को कौन कहे, इस बीच दस-पन्द्रह मिनट बीत गये। गाड़ी टस से मस नहीं

हुई। गाड़ी तथा स्टेशन पर कीर्तन जारी रहा। बाद में एक सज्जन को खब्त सवार हुई तो वे इंजन के पास गये तो उन्हें सूचना मिली कि इंजन में कुछ खराबी आ गयी है। ड्राइवर उस खराबी की तलाश में परेशान है।

सारी बातें सुनकर बाबा सीताराम मुस्कराने लगे। भक्तों में से कई सज्जन ड्राइवर के पास गये और कहा—"आपकी गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती। बाबा ने रोक रखा है। आप बाबा के पास जाकर अनुरोध करिये तभी गाड़ी आगे बढ़ा सकेंगे।"

भक्तों की बातें सुनकर ड्राइवर ने बाबा के पास आकर आज्ञा माँगी। बाबा ने हँसकर कहा—"ठीक है। चलो, चालू करो, अब सीताराम तैयार हो गया।"

सभी गाड़ी पर बैठ गये। आश्चर्य की बात यह हुई कि इस बार ड्राइवर ने ज्योंही हेण्डिल पर हाथ रखा त्योंही गाड़ी चल पड़ी। इसके साथ ही भक्तों का दल हरिनाम-कीर्तन करने लगा।

राम ठाकुर की तरह आप भी नाम-प्रचार करते हुए संपूर्ण भारतवर्ष की यात्रा करते रहे। अपने भक्तों से वे कहा करते थे—"साधना के लिए तुम्हें पहाड़, जंगल या एकान्त में कहीं जाने की जरूरत नहीं। घर में रहते हुए केवल उस परमब्रह्म के नाम को भजते रहो। कीर्तन करो। इसका फल तुम्हें अवश्य मिलेगा। विभिन्न आश्रमों में चक्कर काटने की अपेक्षा अपने घर को आश्रम बना डालो।"

वे नाम के लिए यही मंत्र कहा करते थे—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

बाबा सीताराम अपने भक्तों से बराबर कहते रहे—"सर्वदा नाम जपते रहो। भक्ति से, अभक्ति से, शुचि से, अशुचि से, उठते-बैठते, केवल नाम जपते रहो। नाम ही तुमसे सब कुछ करा लेगा। तुम्हें अपने-आप कुछ नहीं करना पड़ेगा। कलियुग में यही सबसे बड़ा और सरल मंत्र है। एक दिन देखोगे कि इस नाम के कारण तुम कहाँ से कहाँ पहुँच गये हो।"

वस्तुतः नाम जपने के कारण उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई थी, इसीलिए वे अपने भक्तों तथा शिष्यों को यही सलाह देते थे। वे जहाँ कहीं जाते थे, उनके साथ भक्त-मंडली नाम का कीर्तन करती हुई चलती थी।

प्रसिद्ध उपन्यासकार शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय के अनन्य मित्र कविवर नरेन देव मरणासन्न स्थिति में थे। डाक्टरों का ख्याल था कि वे क्रमशः मृत्यु के दरवाजे की ओर बढ़ रहे हैं। इक्यासी वर्ष की उम्र, ऊपर से कारोनारी और सेरिब्राल थ्राम्बोसिस के आक्रमण से पीड़ित थे। रक्तचाप भी अत्यधिक था। पिछले दस-बारह दिनों से 'कोमा' की स्थिति थी। बायाँ अंग सुन्न पड़ गया था। नाक में आक्सिजन की नली, हाथ में सेलाइन ग्लूकोज। रात-दिन देखरेख के लिए दो ट्रेण्ड नर्सें थीं। डाक्टर प्रत्येक घण्टा के बाद आता है। एकमात्र लड़की श्रीमती नवनीता सेन दिल्ली से आ गयी हैं। पत्नी श्रीमती राधारानी के उदास चेहरे पर अश्रुपूरित आँखें। आत्मीय-स्वजनों से घर पूर्ण है। सभी के मन में उत्कण्ठा है कि क्या कविवर अच्छे हो जायँगे ?

ठीक इसी मौके पर वे आये। संन्यासीजी। कविवर के घनिष्ठ मित्र बाबा सीतारामजी।

साथ में कीर्तन करती हुई भक्त-मंडली। कीर्तन करते हुए सभी लोग मकान के अहाते में आये। कीर्तन की आवाज सुनते ही घबराकर नवनीता सेन नीचे उतर आयीं। इस शोरगुल को सुनते ही पिताजी का हार्ट फेल हो जायगा।

भय से काँपती हुई उसने बाबा से निवेदन किया—"गोकि मेरे पिताजी बेहोश हैं, पर भीतर ज्ञान है। आप लोगों के कीर्तन की आवाज सुनकर बेमौत मर जायँगे। इस आवाज को सुनते ही वे यह समझ जायँगे कि उनकी मृत्यु हो गयी है और इसका असर बहुत ही भयानक होगा।"

बाबा ने हँसकर कहा—"कीर्तन नीचे होने दो। चलो, मैं अकेला कवि के पास जाऊँगा।"

गर्मी का मौसम। कमरे की सभी खिड़कियाँ बन्द थीं। पलंग पर कविवर आँखें बन्द किये सो रहे थे। बत्ती के प्रकाश में इतना दिखाई दिया। नाम जपते हुए ज्योंही बाबा ने कमरे में प्रवेश किया त्योंही नर्स दौड़ी हुई आयी—"कमरे में बाहरी लोगों का आना मना है।"

बाबा को समझा-बुझाकर बगल के कमरे में बैठाया गया। नर्स को संदेह हो गया कि यहाँ जब बाबा का प्रवेश हो गया है तब प्रसाद, जंतर-मंतर का पचड़ा जरूर होगा। झाड़-फूँक भी चालू हो जायगी। उसने आकर कहा—"कृपया रोगी को प्रसाद वगैरह मत दीजिएगा।"

कुछ देर बाद बाबा सीताराम कविवर के कमरे में आये और उनके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले —"नरेन, नरेन, नरेन। बात क्या है, बोलो।"

पिछले बारह दिनों से जिस रोगी ने आँखें नहीं खोली थीं, उसकी आँखें अपने-आप खुल गयीं। सिन्दूर के रंग जैसी आँखें—लाल। वे आँखें बाबा के चेहरे पर जाकर टिक गयीं।

बाबा सीताराम ने पूछा—"अब तबीयत कैसी है ?"

कवि नरेन के ओठ हिले। पूरे बारह दिनों के बाद आवाज निकली—"आपने जैसी बनायी है, वैसी ही है।"

"मजाक कर रहे हो ? चलो, उठो।"

कवि की आँखें पुनः बन्द हो गयीं। बाबा सीताराम ने नवनीता से कहा—"घबराने की जरूरत नहीं है। तीन-चार दिन के बाद तेरे पिताजी बिलकुल ठीक हो जायँगे।"

इतना कहने के पश्चात् वे नाम जपते हुए नीचे उतर गये। कुछ देर तक भक्त लोग कीर्तन करने के पश्चात् वापस चले गये।

चौथे दिन कवि नरेन देव वास्तव में अच्छे हो गये। बिना किसीका सहारा लिये वे बाथरूम गये। यह सब देखकर डाक्टर दंग रह गया। उसने कहा—"वास्तव में यह 'मिराकेल' हुआ। शायद अपने विल पावर के जरिये कविजी स्वस्थ हो गये।"

बाबा सीताराम की इस आश्चर्यजनक योग-विभूति का प्रभाव इस परिवार पर पड़ा। सभी बाबा की दिव्य क्षमता के बारे में प्रभावित हुए।

इसी प्रकार एक घटना और हुई थी। बाबा सीताराम की पैतृकभूमि हुगली जिले के डुमुरदह गाँव में थी। इसी गाँव में बाबा के एकनिष्ठ सेवक थे—किंकर पूर्णानन्द। आपके मझले भाई प्रफुल्ल मुखर्जी का अंतिम काल आ गया था। जीवन-मृत्यु से संघर्ष करते हुए

उन्होंने परिवारवालों से कहा—"मैं जानता हूँ कि मेरा अन्तिम समय आ गया है, पर मरने के पहले एक बार बाबा का दर्शन करना चाहता हूँ।"

भाई साहब की इच्छा सुनकर पूर्णानन्द चिन्तित हो उठे। बाबा इन दिनों बंगाल के बाहर हैं। लाचारी में उन्होंने मन ही मन कहा—"बाबा, अपने भक्त की इच्छा पूर्ण करो!"

दिन बीतते गये। हालत खराब होती गयी। एक दिन डाक्टर ने आकर कहा—"रोगी का इलाज असाध्य हो गया है। अधिक-से-अधिक एक सप्ताह तक चल सकेंगे।"

इधर दिन-प्रतिदिन प्रफुल्ल बाबू की आकुलता बढ़ती गयी। डाक्टर की बातें सुनकर परिवार के सभी लोग सन्नाटे में आ गये। ठीक इसी समय ओंकारेश्वर से पत्र आया कि बाबा ने मौन धारण कर लिया है। केवल मौन नहीं हैं, बल्कि अन्न-ग्रहण भी नहीं कर रहे हैं। भोजन के नाम पर केवल सूरन और तुलसी की पत्तियों का रस ले रहे हैं। वह भी दोनों वस्तुएँ मिलाकर एक बड़े चम्मचभर। इन दिनों किसीका अनुरोध स्वीकार नहीं कर रहे हैं। अगर यही हालत रही तो उनकी शरीर-रक्षा नहीं हो सकेगी। इस संकट से केवल माँ बचा सकती हैं। हम सभी का अनुरोध है कि जल्द-से-जल्द बाबाजी की माताजी को ओंकारेश्वर ले आइये, वर्ना हालत बहुत खराब हो जायगी।

यह समाचार पाते ही पूर्णानन्द तुरत बाबा के घर गये। यहाँ आने पर पता चला कि इसी आशय का पत्र यहाँ भी आया है और लोग ओंकारेश्वर जाने को तैयार हो रहे हैं। इस समाचार को सुनते ही पूर्णानन्द ने कहा—"मैं भी आप लोगों के साथ चलूँगा।"

दूसरे दिन कई लोगों को साथ लेकर पूर्णानन्द ओंकारेश्वर रवाना हो गये। यहाँ आने पर लोगों की जबानी पता चला कि बाबा की हालत चिन्ताजनक है। बाबा की माताजी भय से व्याकुल हो उठीं। जिस कमरे में बाबा मौन होकर बैठे थे, उसका दरवाजा बन्द था। दरवाजे के पास जाकर रोती हुई माँ बोली—"बेटा प्रबोध, जल्द बाहर आ, वर्ना मैं इसी दरवाजे पर सिर पटक-पटककर प्राण दे दूँगी।"

माँ के आकुल क्रन्दन से व्याकुल होकर बाबा बाहर निकल आये। माँ अपने प्रिय पुत्र को गले से लगाकर रोने लगी। बाबा का मौन भंग हो गया। उन्हें ग्रहण करना पड़ा। इस घटना के कारण भक्त-मंडली प्रसन्न होकर जोरों से कीर्तन करने लगी।

मौका देखकर पूर्णानन्द ने अपने बड़े भाई की कहानी विस्तार से सुनायी। सारी बातें सुनने के बाद बाबा ने कहा—"डरने की कोई बात नहीं है। अभी तेरे भाई की आयु शेष है। वह फिलहाल नहीं मरेगा। बहरहाल, जब तुम लोग इतनी दूर आये हो तो कल मेरे साथ वाल्मीकि मुनि के तपोवन का दर्शन करने चलो।"

दूसरे दिन दो बैलगाड़ियों पर सवार होकर सभी तपोवन की ओर रवाना हुए। काफी दूर आने के बाद ज्ञात हुआ कि गलत रास्ते पर आ गये हैं। स्थानीय लोगों से राह पूछने पर उन लोगों ने सलाह दी कि अब आगे आज न जायँ। अँधेरा बढ़ रहा है और आगे घना जंगल है। जंगली जानवरों का डर है। मुसीबत में फँस जायँगे।

इस सलाह के अनुसार लोग उसी जगह ठहर गये। यह निश्चय हुआ कि रात यहाँ गुजारने के बाद कल सबेरे रवाना होंगे। उधर बाबा की गाड़ी वाल्मीकि आश्रम पहुँच गयी। काफी देर तक इन्तजार करने के बाद जब पूर्णानन्द की गाड़ी नहीं आयी तब बाबा लौट पड़े।

ओंकारेश्वर आने पर भी कुछ पता नहीं चला। पूर्णानन्द की माँ साथ आयी थीं। वे इस घटना से व्याकुल होकर रोने लगीं। पता नहीं, जंगली जानवरों का शिकार न हो गया हो।

बाबा ने कहा—"घबराइये नहीं। आपका बालक सकुशल है। कल वह मिल जायगा। सबेरे मैं उसकी तलाश में गाड़ी भेज दूँगा।"

दूसरे दिन पूर्णानन्द की तलाश में गाड़ी भेज दी गयी। मार्ग में वे लोग मिल गये। बाद में सभी लोग वाल्मीकि मुनि का तपोवन देखने के बाद ओंकारेश्वर लौट आये। इस प्रकार चारों ओर घूमने-फिरने में सात-आठ दिन लग गये। पूर्णानन्द और उसके साथ आये लोग उद्विग्न हो रहे थे। पता नहीं, घर की क्या हालत है। दूसरी ओर बाबा अपने-आपमें बेफिक्र रहे। बातचीत के सिलसिले में एक दिन उन्होंने कहा था—"जब तक हम वहाँ नहीं पहुँचेंगे तब तक प्रफुल्ल मर नहीं सकता।"

इसके बाद कोई चर्चा नहीं। जब बाबा निश्चिन्त हैं तब क्या किया जाय। लोग उनके जिम्मे सारा भार देकर चुप रह गये। अचानक आठवें दिन उन्होंने कहा—"चलो, डेरा कूच किया जाय। कल हमें यहाँ से चल देना है।"

डुमुरदह पहुँचते ही बाबा सबसे पहले पूर्णानन्द के घर गये। बाबा सीताराम को देखते ही प्रफुल्ल ने कहा —"अब तुम मुझे मुक्ति दो।"

बाबा सीताराम ने कहा—"हाँ, अब तुम्हें मुक्त करने का वक्त आ गया है। अब तुम्हें मुक्ति मिलेगी। तुम्हारे सभी लड़के बड़े हो गये हैं। केवल गौरांग अबोध है।"

"उसकी जिम्मेदारी तुम ले लो।"

"ठीक है, उसकी जिम्मेदारी मैं ले रहा हूँ। अब तुम सहर्ष यात्रा कर सकते हो। तुम्हें मुक्त कर रहा हूँ।"

इस वार्तालाप के बाद भक्तों का कीर्तन प्रारंभ हुआ। कीर्तन के मध्य ही प्रफुल्ल बाबू का शरीरान्त हो गया।

यद्यपि आपका पैतृक निवास हुगली जिले के डुमुरदह गाँव में था, परन्तु आपका जन्म इसी जिले के केवटा ग्राम में हुआ था। यहाँ आपका ननिहाल था। आपके पिता का नाम प्राणहरि चट्टोपाध्याय और माता का नाम माल्यावती देवी था। आपके घर के कुलदेवता श्री ब्रजेन्द्रनाथ और राधारानी प्रतिष्ठित थे, इसलिए भवन का नाम रखा गया था—श्री ब्रजनाथ निकेतन।

आप अपने पिता के द्वितीय पुत्र थे। ६ फाल्गुन, कृष्ण पंचमी, बुधवार, सन् १८६२ ई० के दिन सबेरे ८ बजकर १ मिनट पर आपका जन्म हुआ था। आपके मातृकुल में तंत्रशास्त्र की चर्चा होती थी। आपके पिता पहले चिकित्सा-कार्य करते थे। आगे चलकर न जाने मुख्तारी पास करके प्रैक्टिस करने लगे। स्वभाव से साहित्यिक थे। कई ग्रंथों की रचना कर चुके थे।

बाबा सीताराम का नाम प्रबोधचन्द्र था। गाँव की पाठशाला की शिक्षा समाप्त करने के बाद आपको बेण्डेल स्थित चर्च स्कूल में भर्ती किया गया। अचानक पिताजी के मन में आया कि इस बालक को संस्कृत की शिक्षा देनी चाहिए। पिताजी उन्हें चर्च स्कूल से दाशरथी मुखोपाध्याय (स्मृतिभूषण) की चतुष्पाठी में ले आये। दिगसुई गाँव में स्थित इस चतुष्पाठी

में उनका अध्ययन प्रारंभ हुआ। गुरु-गृह में भोजन-शयन करते रहे। चतुष्पाठी की शिक्षा समाप्त करने के बाद आगे का अध्ययन करने के लिए बंगाल के प्रसिद्ध विश्वनाथ चतुष्पाठी में आये। यहाँ आप वेद, वेदान्त, पुराणादि का अध्ययन करते रहे। लगभग सभी विषयों पर निरन्तर उन्नीत होते रहे। कुछ ही वर्षों में आप शास्त्रज्ञ बन गये। डुमुरदह गाँव में आपकी विद्वत्ता का डंका बजने लगा।

जिन दिनों आप दिगसुई गाँव में श्री दाशरथी स्मृतिभूषण महाशय की चतुष्पाठी में अध्ययन कर रहे थे, उन्हीं दिनों गुरुदेव दाशरथी स्मृतिभूषण ने आपका नामकरण किया— "सीतारामदास"। केवल यही नहीं, गुरुदेव के इच्छानुसार गुरुदेव की आत्मीया सिद्धेश्वरी देवी के साथ सन् १९१७ ई० के अगहन मास में आपका विवाह सम्पन्न हुआ था। उस समय तक आपका छात्र-जीवन समाप्त नहीं हुआ था।

अचानक आपके पिता का निधन हो गया। पिता की मौत से प्रबोध को घोर मानसिक पीड़ा हुई। उन्होंने इन्हीं दिनों यह अनुभव किया कि यह संसार कष्ट, दुःख और यातना से पूर्ण है। आपमें क्रमशः ऐशिक-भावना जागृत होने लगी। प्रायः एकान्त में आपके मन में तरह-तरह के प्रश्न उत्पन्न होने लगे, पर उन प्रश्नों का समाधान नहीं हो रहा था। अन्त में एक दिन आप अपने प्रश्नों के समाधान के लिए गुरुवर दाशरथी स्मृतिभूषण के समीप आये।

गुरुदेव सर्वज्ञाता थे। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि शिष्य में अलौकिक प्रतिभा जागृत हो गयी है। उन्होंने कहा—"वत्स, वह समय आ गया है जब तुम्हें दीक्षा लेनी है।"

छात्र को साथ लेकर दाशरथी स्मृतिभूषण प्रयाग के त्रिवेणी-तट पर आये। २९ पौष, यानी १४ जनवरी, सन् १९१२ ई०, मकर संक्रांति के दिन प्रबोध को दीक्षा दी गयी। इसी दिन प्रबोध को राम-नाम जपने का निर्देश दिया गया। इसके साथ ही प्रबोध का नाम रखा गया—सीतारामदास। राम-नाम के प्रेमी आगे चलकर सीतारामदास के नाम से ही प्रसिद्ध हुए। अब तक दाशरथी स्मृतिभूषण शिक्षागुरु थे और अब वे दीक्षागुरु बन गये।

दीक्षा ग्रहण करने के बाद सीतारामजी के भावों में क्रमशः परिवर्तन होता गया। उनकी आध्यात्मिक शक्ति बढ़ती गयी। अन्त में एक दिन उनमें सम्यक् ज्ञान का विकास हुआ। उस दिन उन्हें यह बोध हुआ कि परमात्मा ने अपनी लीला को स्पष्ट करने के लिए इस शरीर को धारण किया है। इस शरीर में मैं नहीं, बल्कि वे स्वयं हैं। आत्मा—अहं मैं। यही 'मैं' ही एक अद्वितीयम् ब्रह्म है।

बाबा सीताराम के बारे में महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने अपने एक संस्मरण में लिखा है —"बचपन में ही आपको भगवत्-कृपा प्राप्त हो गयी थी। सन् १९१७ के दिनों में आपने प्रत्यक्ष रूप से शिव का दर्शन किया और उनसे दीक्षा ली। सन् १९३० में पत्नी का निधन हो जाने के बाद आप एकनिष्ठ भाव से आराधना में सचेष्ट हो गये। इन्हीं दिनों स्वप्न में ब्राह्म दीक्षा प्राप्त हुई थी। इस घटना के बाद आप दो वर्ष तक मौनव्रत पालन करते रहे तथा साक्षात् जगन्नाथ देव से आदेश प्राप्त कर तारक-ब्रह्म नाम के प्रचार में लग गये।

जब वे चुंचड़ा स्थित चतुष्पाठी में पढ़ते थे तब शिव तथा जगदम्बा का साक्षात् दर्शन उन्हें प्राप्त हुआ था। उसका कितना प्रभाव उनके जीवन में पड़ा था, इन बातों का उल्लेख

उन्होंने किया था। पत्र के अन्त में कुछ प्रश्न भेजने का अनुरोध किया था। बाद में मैंने पत्रोत्तर दिया था। उन बातों की चर्चा मैं नहीं करना चाहता।

आपने ओंकार-साधना पूर्ण रूप से की थी। आप वैष्णव-सम्प्रदाय के थे, फिर भी ज्ञानमार्ग और योगमार्ग में आपकी दक्षता थी। आचार्य रामदयाल मजुमदार[१] को आप गुरु की तरह मानते थे। इस बारे में एक बात लिखना उचित समझता हूँ—कलकत्ता के 'उत्सव' पत्रिका कार्यालय में, सन् १९३७ के ज्येष्ठ मास में, रामदयालजी ने सीताराम ओंकारनाथ के वक्षःस्थल पर दाहिना हाथ रखते हुए कहा था—"तुम्हें मैं अपनी समस्त शक्ति दे रहा हूँ।"

बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ इससे अभिभूत हो उठे। इसके बाद उन्होंने यह भी कहा था —"मैं मंच से उतर रहा हूँ, अब तुम मंच पर विराजमान हो।"

इसी वर्ष बाबा सीताराम ओंकारनाथ ने अपना प्रथम चातुर्मास्य व्रत का उद्यापन, कलकत्ता स्थित शांखारी टोला में प्रारंभ किया था। पूरे चार माह तक वहाँ थे। उन दिनों प्रति शनिवार को सत्संग में भाग लेते रहे। एक दिन रामदयाल बाबा ने बाबा सीतारामदास ओंकारनाथजी से कहा—"मैं अब "चण्डी" लिख नहीं पा रहा हूँ, तुम लिखो।"

इन दिनों बाबा सीतारामदासजी के हाथ अचल हो गये थे। लिखने लायक शक्ति उनमें नहीं थी। रामदयालजी ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा—"तुम जरूर लिख लोगे।"

इस आशीर्वाद को शिरोधार्य करके बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ ने लिखना प्रारंभ किया और अपने कार्य में सफल रहे। पाण्डुलिपि के कुछ अंशों को पढ़ने के बाद स्वर्गीय श्री धीरेन्द्रनाथ ने उसे प्रकाशित करने की आज्ञा माँगी। बाबा ने कहा—"अभी नहीं, पुस्तक पूरी हो जाय।"

मेरे साथ आपका परिचय और दर्शन सन् १९४८ ई० में पुरी में हुआ था। उन दिनों आप मौन थे, पर आपके शिष्य चारों ओर से घेरकर हरिनाम कीर्त्तन करते रहे। आप जहाँ कहीं भी जाते, वहीं कीर्त्तन-मण्डली के लोग साथ जाते थे।

आप मुझे अच्छी तरह जानते थे। अपने यहाँ से प्रकाशित 'देवयान' नामक पत्र बराबर भेजा करते थे। जब आप ओंकारेश्वर में मौन धारण किये हुए थे तब आपसे मेरी घनिष्ठता हुई थी। इसके बाद आपके कुछ भक्तों ने सन् १९५६ में मुझसे अनुरोध किया कि मैं उनकी पुस्तक 'नादलीलामृत' की भूमिका लिख दूँ। आपके आदेशानुसार मैंने भूमिका लिख दी। उसे पढ़कर आपने मुझे एक बड़ा प्रशंसा-पत्र भेजा था।

बाबाजी के अनुरोध पर मेरे द्वारा सम्पादित ग्रंथ 'श्री विशुद्धानन्द प्रसंग' पाँचों खण्ड तथा 'विशुद्धवाणी' मैंने उन्हे भेजा था। इन ग्रंथों को पढ़ने के बाद वे मुझसे मिलने काशी आये थे। इसके बाद जब कभी काशी आते तब उनसे मिलने अवश्य जाता था।"

कहा जाता है कि चतुष्पाठी के अध्ययन काल में आपको भगवान् शिव ने दर्शन दिया था। इससे भयभीत होकर आपने पूछा—"आप कौन हैं ?" शिवमूर्ति ने कहा—"मैं तुम्हारा गुरु हूँ।" बाबा जी जान से प्रणव मंत्र जपने लगे। बाद में रामनाम जपने लगे। कुछ देर बाद आपकी आँखों के सामने एक दिव्यज्योति प्रकट हुई। तभी आप मूर्च्छित हो गये। इस

---

१. बंगाल के प्रसिद्ध साधक।

घटना के बाद से अक्सर उनके कानों के पास प्रणव मंत्र गूँजता रहा । यहाँ तक कि आपके अन्तर से स्वतः ओंकार ध्वनि प्रस्फुटित होती रही ।

इसी प्रणव मंत्र के सहारे आपके साधना-जीवन का निर्माण होता गया । धीरे-धीरे ग्रंथि-विमोचन हुआ । प्रज्ञा चक्षु से आपने सब कुछ देखा ।

इस घटना के बाद आपका विवाह हुआ । दिगसुई गाँव में स्थित ठाकुरचरण भट्टाचार्य की लड़की सिद्धेश्वरी आपकी पत्नी बनी । रिश्ते में आपके गुरुदेव की बहन थीं । विवाह के बाद सीतारामदास ओंकारनाथजी ने अपनी पत्नी का नाम रखा—कमला । दो पुत्र रघुनाथ और राधानाथ के अलावा जानकी नामक एक पुत्री को जन्म देकर पत्नी परलोकवासी हो गयी । पत्नी के निधन के पश्चात् बाबा ने गृहस्थाश्रम को हमेशा के लिए छोड़ दिया ।

एक दिन वे पुरीधाम आये, जहाँ उन्हें ध्यान में जगन्नाथजी के दर्शन हुए । जगन्नाथजी ने उन्हें नाम प्रचार करने का आदेश दिया । इस आदेश को सादर ग्रहण करने के पश्चात् वे भारत के कोने-कोने में नाम का प्रचार करने लगे । उन्हें जो सिद्धि प्राप्त हुई थी, वह इसी नाम के कारण प्राप्त हुई थी ।

ज्ञांतव्य है कि वे हिन्दी, बंगला, उड़िया के अलावा दक्षिण भारतीय भाषाओं में कई पत्र प्रकाशित करते रहे । भारत के विभिन्न स्थानों में उनके ५७ आश्रम, ७ शिक्षा केन्द्र, ६ औषधालय, २६ अखण्ड संकीर्त्तन क्षेत्र हैं । इसके अलावा आपने अनेक ग्रंथों को लिखा है । लाखों लोग आपके शिष्य बने । अधिकांश शिष्य आपकी योग विभूति से लाभान्वित होकर दीक्षा ग्रहण करते रहे । आपके भक्तों को यह अटूट विश्वास था कि अगर बाबा किसी के मस्तक पर हाथ फेर दें तो उसके समस्त पाप विनष्ट हो जायँगे ।

एक बार एक भक्त ने कहा था—"मैं बहुत बड़ा पापी हूँ ।"

"कौन-कौन से पाप किये हैं ?"

"ऐसा कोई पाप नहीं है जिसे मैंने न किया हो ।"

बाबा ने हँसकर पूछा—"ब्रह्महत्या ? नरहत्या ? परदारी ? भ्रूणहत्या ? यही सब न ?"

उक्त सज्जन ने लज्जा से सिर झुका लिया ।

बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ ने कहा—"तब पाप कैसे किया ? झूठ नहीं बोलोगे, चोरी नहीं करोगे, परदारी नहीं करोगे तब कलियुग में क्यों जन्म लिया ? इससे अच्छा था कि सत्ययुग में पैदा होते ? अब अहरह राम नाम जपते रहो । राम नाम जपने से सभी पापों से मुक्त हो जाओगे ।"

मुक्ति के इस सरल उपाय को ग्रहण करने के लिए भारत के कोने-कोने से दर्शनार्थी आपके पास आते रहे । साधारण लोगों के अलावा अनेक महान् लोग भी आते थे । बौद्धों के परमपावन दलाई लामा, माता आनन्दमयी, स्वामी स्वरूपानन्द, मोहनानन्द ब्रह्मचारी, महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज, दिलीपकुमार राय आदि प्रमुख रहे ।

बाबा के एक भक्त पद्मलोचन कठिन रोग से पीड़ित हुए । घर के लोग तुरत उन्हें गाँव से लाकर कलकत्ता मेडिकल कालेज में ले गये । डाक्टर सर्वाधिकारी ने जाँच करने के बाद कहा—"इनका लिवर सड़ गया है । सिरोसिस आव लिवर रोग है । बचने की उम्मीद नहीं है ।"

बंगाल के ख्यातिप्राप्त डाक्टर नलिनी रंजन सेनगुप्त आये। रोगी का अंतिमकाल आ गया था। नर्स ने नाड़ी देखा और घबराती हुई बाहर चली गयी। डाक्टर सर्वाधिकारी आये। रोगी की हालत देखने के बाद सिर हिलाते हुए बाहर चले गये। डाक्टर सेनगुप्त इसके पहले ही चले गये थे।

ठीक इसी समय बाबा सीतारामदास अपनी भक्त मण्डली के साथ कीर्त्तन करते हुए आये। डाक्टर सर्वाधिकारी ने आपत्ति की। बाबा ने कहा—"हम आहिस्ते आहिस्ते हरिनाम करेंगे।"

कहने के बाद उन्होंने रोगी के वक्षःस्थल पर हाथ रखा और हरिनाम कहने लगे। थोड़ी देर में रोगी में चंचलता बढ़ने लगी। नर्स ने नाड़ी देखा तो चीख उठी—"मिराकेल ! वाह !!"

नर्स की चीख सुनते ही डाक्टर सर्वाधिकारी वापस आये। उन्होंने रोगी को देखा तो अवाक् रह गये। अभी कुछ देर पहले वे जिसे प्राणहीन देख गये थे, अब वह सजीव होता जा रहा है। यह तो अद्भुत आश्चर्य है।

डाक्टर सर्वाधिकारी चकित दृष्टि से बाबा सीताराम की ओर देखने लगे। बाबा अपनी घनी दाढ़ियों से ढके ओठों को खोलकर हँस पड़े। सर्वाधिकारी अपने को सम्हाल नहीं सके। वे भूल गये कि स्वयं हाउस सर्जन हैं। तुरत बाबा के चरणों पर लोट गये। उसी दिन बाबा के भक्तों में एक संख्या और बढ़ गयी।

एक बार १५ अगस्त के दिन आसमान में घनघोर बादल छा गये। यह दृश्य देखकर शशांक शेखर बागची चिन्तित हो उठे। उस दिन उनके यहाँ पिता के श्राद्ध का आयोजन हो रहा था। बाबा को इस दिन आने का निमंत्रण भेजा गया था, पर बाबा ने आने में असमर्थता प्रकट की। उन दिनों वे गणपुर में चतुर्मासा व्यतीत कर रहे थे। बाबा ने निमंत्रण लेकर आनेवाले से कहा—"मैं सशरीर तो उपस्थित नहीं हो सकूँगा। मुमकिन है कि सूक्ष्म रूप में आ जाऊँ।"

बागची महाशय के लिए इतना ही काफी था। चूँकि बाबा जब नहीं आ रहे हैं, इसलिए पण्डाल-तम्बू उन्होंने नहीं लगवाया। सबरे से अखण्ड 'तारक ब्रह्म' नाम का कीर्त्तन होने लगा। बागची महाशय को दृढ़ विश्वास था कि जब बाबा सूक्ष्म रूप में यहाँ पधारने वाले हैं तब यहाँ पानी नहीं बरसेगा। लेकिन अन्य लोगों को उनके विश्वास पर भरोसा नहीं हो रहा था।

धीरे-धीरे दिन चढ़ता गया, बादल छाते गये। मेघ गरजते रहे, बिजली चमकती रही, पर चुंचड़ा में एक बूँद पानी नहीं बरसा। बाहर से आनेवाले सभी अतिथियों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि चुंचड़ा कस्बे के बाहर घनघोर वर्षा हो रही है, पर यहाँ नहीं। बाहर से आनेवाले अधिकांश निमंत्रित अतिथि भींगते हुए आये थे। धीरे-धीरे शाम हो गयी, फिर रात आयी, पर उस दिन चुंचड़ा में एक बूँद पानी नहीं गिरा।

केवल यही नहीं, अतिथियों को खिलाते समय ज्ञात हुआ कि मिठाई कम पड़ जायेगी। तुरत कई लोग साइकिल लेकर बाजार से मिठाई खरीदने गये। पन्द्रह अगस्त होने के कारण सभी दुकानों से मिठाई गायब हो गयी थी। इधर-उधर से कुल मिलाकर केवल ५०-६० मिठाइयाँ प्राप्त हुई। इधर एक सौ के ऊपर अतिथि भोजन करनेवाले हैं।

बागची महाशय ने अपने मित्र महावीर से कहा—"अब क्या होगा, महावीर ?"

महावीर स्वयं भी बाबा का भक्त था। इस प्रश्न का कोई उत्तर उन्होंने नहीं दिया। बाबा का एक चित्र रसोईघर में लाकर सभी खाद्य पदार्थों को दिखाते हुए कहा—"बाबा, इस गृहस्थ की लाज रखना।"

बाहर आकर महावीर ने कहा—"आप सभी अतिथियों को पंगत में बैठा दें। किसी चीज की कमी नहीं होगी।"

बागची बाबू ने लोगों से पंगत में बैठने के लिए निवेदन किया, पर मन ही मन घबरा रहे थे। सभी लोग भोजन करने बैठे। कुछ देर बाद मिठाई परोसने के लिए स्वयं बाल्टी लेकर बागची महोदय आये। मन ही मन बाबा को स्मरण करते जा रहे थे। एक-एक कर अंतिम व्यक्ति को मिठाई दे दी गयी। इसके बाद निरीक्षण किया गया कि कहीं कोई मिठाई पाने से वंचित तो नहीं रह गया। एक सौ व्यक्तियों को मिठाई परोसने के बाद भी बाल्टी में २०-२५ मिठाइयाँ बच गयी थीं।

यह चमत्कार कैसे हो गया? तभी बागची महोदय को याद आया कि बाबा ने कहा था—स्थूल शरीर से तो नहीं आ सकूँगा, पर सूक्ष्म शरीर से जरूर आऊँगा। यह बाबा की कृपा थी जिसके कारण आज इज्ज़त बच गयी।

बाबा कब कौन लीला करेंगे, इस बात को उनके भक्त समझ नहीं पाते थे। जब बुद्धि के बाहर कोई चमत्कार हो जाता तब यह अनुभव करते थे कि यह बाबा की लीला है।

श्री हरिसाधन वेदतीर्थ ने बड़ी श्रद्धा से बाबा का एक चित्र बनवाकर सीताराम वैदिक महाविद्यालय में रखवा दिया। इसके बाद उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। कई दिनों बाद देखा गया कि उस चित्र से शहद गिर रहा है। इस दृश्य को सर्वप्रथम वहाँ के छात्रों ने देखा। यह एक अद्‌भुत दृश्य था। चित्र से शहद कैसे निकल रहा है। उन लोगों ने इस घटना की सूचना हरिसाधन वेदतीर्थ को दी।

उन्होंने बिगड़कर कहा—"अध्यापक से मजाक करते हो? एक जड़ पदार्थ से शहद झरेगा? क्या वहाँ शहद का छत्ता है? भागों यहाँ से।"

छात्रों ने कहा—"गुरुजी, हम मजाक नहीं कर रहे हैं और न यह हमारी आँखों का भ्रम है। आप स्वयं चलकर देख लीजिए। हम लोग सत्य वचन कह रहे हैं। चित्र से अनवरत शहद चू रहा है।"

वेदतीर्थ ने सोचा—चलकर देखने में क्या हर्ज है। अगर लड़के मजाक कर रहे हैं, वहीं इन्हें पीटूँगा। मन में अविश्वास की भावना लेकर वे आये। यहाँ आने पर देखा कि वास्तव में चित्र से शहद चू रहा है। यहाँ भी उन्हें संदेह हुआ। उन्होंने सोचा—इस घटना की आड़ में लड़कों ने जरूर कोई तिकड़म किया है। बालक-बन्दर दोनों एक ही स्वभाव के होते हैं। मजा लेने के लिए यह कार्यवाही की गयी है।

लड़कों को ताड़ना न देकर उन्होंने उक्त चित्र को एक दूसरे कमरे में रखवा दिया और बाहर से ताला बन्द करके चाभी अपने पास रखा। दूसरे दिन उस कमरे का ताला स्वयं उन्होंने खोला। चित्र पर नजर जाते ही वही दृश्य देखा। बाबा के मुँह से शहद चू रहा है।

यह कौन-सा रहस्य है? तुरत दौड़े हुए बाबा के पास गये। सारी घटना सुनाने के पश्चात् पूछा—"आखिर इसमें क्या लीला कर रहे हैं?"

बाबा ने हँसकर कहा—"इस चित्र को कुछ खिलाते रहना । अब समझा ?"

वर्धमान शहर के भक्त अनादि बाबू के यहाँ बाबा ठहरे हुए थे । यह समाचार पाकर दूर-दूर के भक्त बाबा का दर्शन करने आने लगे । सहसा बाबा अपने भंडारी श्री सच्चिदानन्द को खोजने लगे । उस समय तक वे वहाँ नहीं आये थे । बाबा किसी को एक हजार रुपये देना चाहते थे । सच्चिदानन्द के पास सारी रकम रहती है । बातचीत के सिलसिले में बाबा रह-रहकर सच्चिदानन्द के बारे में पूछते रहे कि वह अब तक आया या नहीं । बार-बार सच्चिदानन्द के पूछने के कारण भक्त-मण्डली भी व्यस्त हो उठी ।

ठीक इसी समय सच्चिदानन्द आते दिखाई दिये । लोगों ने उन्हें सूचना दी कि आपको बाबा देर से खोज रहे हैं । तुरत उनके पास जाइये । सच्चिदानन्द तुरत रिक्शा से उतरकर बाबा के पास आये । बाबा को प्रणाम करते ही उन्होंने कहा—"यह आदमी कब से बैठा है । इसे एक हजार रुपये दे दो ।"

अब सच्चिदानन्द को होश आया तो उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं । रुपये की थैली तो जल्दीबाजी में रिक्शे पर छूट गयी । तुरत वे बाहर की ओर दौड़े । बाहर आने पर उन्होंने देखा—रिक्शेवाला गायब है । समझते देर नहीं लगी कि अब सब गया । उदास चेहरा लेकर बाबा के पास वापस लौटे । तभी बाबा ने नाराजगी के साथ कहा—"मैंने रुपये देने को कहा और तू न जाने कहाँ चला गया ।"

सच्चिदानन्द फफककर रो पड़े—"बाबा, सारी रकम रिक्शे पर छोड़कर हड़बड़ी में मैं यहाँ चला आया । रिक्शेवाला भी गायब हो गया है ।"

"अच्छा हुआ । कितने रुपये थे ।"

"बहुत ।"

"आखिर, कितने थे ।"

बाबा से झूठ कहा नहीं जा सकता । रोते रोते उन्होंने कहा—"बहुत थे, बाबा । क्या बताऊँ ।"

"अरे नालायक, बहुत तो सुना, पर उसमें कितनी रकम थी ?"

अब डरते-डरते सच्चिदानन्द ने कहा—"चौदह हजार ।"

"क्या ? चौदह हजार रुपये और इतनी बड़ी रकम की थैली हाथ में न रखकर रिक्शे पर रख छोड़ा था ।"

इतना सुनना था कि सच्चिदानन्द फफक कर रो पड़ा । तभी बाबा ने मुस्कराते हुए कहा—"खैर, कोई बात नहीं । डरने की कोई जरूरत नही है ।"

थोड़ी देर बाद चमत्कार हुआ । पाँच मिनट बाद वही रिक्शेवाला दरवाजे पर आकर हाजिर हो गया । उसने आते ही पूछा—"जो दाढ़ीवाले सज्जन मेरे रिक्शे पर आये थे, कहाँ हैं ?"

इस आवाज को सुनते सच्चिदानन्द झपटकर बाहर आये । रिक्शेवाले ने रुपयों की थैली देते हुए कहा —"जल्दीबाजी में रुपयों की यह थैली मेरे रिक्शे पर छोड़ गये थे । अब आप इसे गिनकर देख लीजिए, रुपये पूरे हैं या नहीं ?"

सच्चिदानन्द इस चमत्कार से हतप्रभ रह गये। उन्हें गिनने की सुधि नहीं रही। थैली को लेकर बोले—"गिनने की कोई जरूरत नहीं है भैया। तुम कृपा करके ले आये हो, यही बहुत है।" इसके बाद एक सौ रुपये का नोट उसकी ओर बढ़ाते हुए बोले—"लो, इस रकम से मिठाई खा लेना।"

रिक्शेवाला लेना नहीं चाहता था। काफी मिन्नत करने के बाद उसने लिया। इसके बाद भीतर आकर सच्चिदानन्द ने बाबा को समाचार दिया। बाबा ने कहा—"उसे इनाम दे दिया न ?"

"हाँ, सौ रुपये दिये।"

"सिर्फ सौ रुपये ? कम-से-कम पाँच सौ देना चाहिए था।" बाबा ने हँसते हुए कहा—"आइन्दा ऐसी गलती कभी मत करना।"

सच्चिदानन्द सिर झुकाये बाबा की डाँट-फटकार चुपचाप सुनते रहे।

इसी प्रकार की एक और घटना हुई थी। धर्म-प्रचार के सिलसिले में वे दक्षिण भारत गये थे। गुण्टूर से दो सौ मील दूर उनका कैम्प लगा था। यहाँ से उन्हें गुण्टूर जाना था। सहसा एक दिन गुण्टूर जाने का निर्णय लिया गया। अपने दो सेवकों से उन्होंने कहा कि तुम लोग आज रवाना हो जाओ। वहाँ जाकर ठहरने आदि का इंतजाम करो। हम लोग कल यहाँ से रवाना होंगे।

इस आदेश को पाते ही पूर्णानन्द और रत्नेश्वर बस से रवाना हो गये। मार्ग में नाम कीर्त्तन करते हुए दोनों सेवक अपने गंतव्य स्थल की ओर बढ़ रहे थे। बीच में एक जगह बस रुक गयी। यात्री लोग उतरकर भोजन, चाय, जलपान करने लगे। यहाँ से बस आधे घँटे बाद रवाना होगी। दोनों सेवक शौच करने चले गये। शौच कार्य से निवृत्त होकर जब आये तब देखा कि बस उन्हें छोड़कर आगे रवाना हो गयी है।

जेब में एक पैसा नहीं और तमाम असबाब बस पर था। क्या करें, कुछ समझ नहीं पा रहे थे। स्थानीय भाषा न समझ पाने के कारण किसी से बातचीत नहीं कर पा रहे थे। धीरे-धीरे शाम हुई, रात आयी और सुबह हुआ। ठीक इसी समय एक अपरिचित व्यक्ति इनके पास आया। इशारे से बातें हुईं। उस व्यक्ति को समझते देर नहीं लगी कि परदेशी मुसीबत में फँस गये हैं। अपनी ओर से किराये की रकम देकर उन दोनों को गुण्टूर जानेवाली बस पर बैठा दिया।

इधर गुण्टूर आने पर बाबा के साथ आये लोगों ने देखा कि एक दिन पूर्व रवाना हुए दोनों सेवकों का पता नहीं है। ऐसी घटना तो नहीं हो सकती। मार्ग में किसी दुर्घटना का समाचार भी नहीं मिला। आखिर वे दोनों कहाँ गायब हैं। सभी लोग चिन्तित होकर बाबा के पास आये।

बाबा ने कहा—"चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। मेरी समझ से कोई खास दुर्घटना नहीं हुई। वे लोग आते ही होंगे। अब तुम लोग भोजन की तैयारी करो।"

जब बाबा कह रहे हैं कि कोई दुर्घटना नहीं हुई है तब निस्सन्देह कुछ नहीं हुआ है। फिर भी लोग शंकित हृदय से कार्य करते रहे। रसोई बन जाने के बाद जब लोग पंगत में

बैठने लगे तब बाबा ने कहा—"वे दोनों आकर प्रसाद ग्रहण करेंगे, इसलिए उनके लिए प्रसाद अलग से रख दो।"

बाबा ने भोग ग्रहण किया। इसके बाद भक्तों ने प्रसाद लिया। दोनों सेवकों के लिए अलग से प्रसाद रखा गया। फिर भी लोग दोनों सेवकों के बारे में तरह-तरह की चर्चा करते रहे। अनजाना क्षेत्र, जहाँ एक-दूसरे की भाषा नहीं समझ पाते। पता नहीं, किस हालत में होंगे।

ठीक इसी समय दोनों सेवक आये। सभी भक्तों से प्रश्नों की झड़ी लगा दी। उन दोनों ने कहा—"पहले बाबा का दर्शन करेंगे, फिर फुरसत से सारी बातें सुनायेंगे।"

"लेकिन इस वक्त बाबा का दर्शन नहीं हो सकता। वे आराम कर रहे हैं।"

"कोई हर्ज नहीं। हम लोग दूर से देखकर वापस आ जायँगे।"

"दर्शन बाद में कर लेना। बाबा ने आदेश दिया है कि उन लोगों को आते ही प्रसाद खिला देना।"

"बाबा का दर्शन बिना किये हम लोग कुछ भी ग्रहण नहीं करेंगे।"

फलस्वरूप दोनों सेवकों को बाबा के डेरे की ओर जाने की आज्ञा दे दी गयी। बाबा उस वक्त चादर ओढ़कर सो रहे थे। ज्योंही दोनों बाबा के द्वार के पास पहुँचे त्योंही उन्होंने अपनी चादर हटाते हुए कहा—"जाओ, पहले प्रसाद ग्रहण करो।"

सेवकों ने कातर स्वर में कहा—"बाबा, कल बस में हम लोगों के कपड़े, बरतन, रुपये आदि सब कुछ छूट गये। बस हम लोगों को छोड़कर रवाना हो गयी। हम लोग बड़ी मुसीबत में फँस गये थे। अगर एक सज्जन सहायता न करते तो हम लोग यहाँ तक नहीं आ पाते।"

बाबा मन्द-मन्द मुस्कराते रहे। इस ओर इन दोनों का ध्यान नहीं गया। एक ने पूछा—"अब क्या होगा, बाबा?"

बाबा ने कहा—"इसके लिए घबराने की जरूरत नहीं है। तुम लोगों का सामान सीताराम का है। सीताराम ही लायेंगे।"

बाबा की बातें सुनकर फिर उन दोनों ने कोई प्रश्न नहीं किया। प्रणाम करने के बाद प्रसाद ग्रहण करने चले गये।

दूसरे दिन दोनों सेवकों को बुलाकर बाबा ने कहा—"तुम दोनों के साथ एक आदमी भेज रहा हूँ। इनके साथ बस अड्डे पर चले जाओ। वहाँ तुम लोगों का सामान सुरक्षित है। जाकर लेते आओ।"

दोनों सेवक स्थानीय एक व्यक्ति के साथ बस अड्डे पर गये। पूछताछ करने पर पता चला कि उनका सामान सुरक्षित रखा है। बस अड्डे के लोगों ने सामानों के बारे में पूछताछ करने के बाद सब वापस कर दिया।

मौरी ग्राम की घटना तो और भी विचित्र है। कहा जाता है कि यहाँ पहले कभी चण्डी देवी का जाग्रत स्थान था, पर पिछले १५० वर्ष के भीतर वह स्थान जंगल-झाड़ी में लुप्त हो गया। बाबा को ख्याल आया कि इस अपूजित स्थान का उद्धार करना चाहिए। यह विचार मन में आते ही वे अपने भक्तों के साथ जंगल में गये। स्थानीय लोगों ने उन्हें सूचित किया

कि आप इस कार्य में हाथ न लगायें। कुछ दिन पहले यहाँ एक संन्यासी आये थे। उन्हें सफलता नहीं मिली। जंगल की सफाई में जितने लोग लगे थे, उन सब की मृत्यु हो गयी।

बाबा ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने साथ आये लोगों से कहा—"जिन लोगों को अपने प्राणों का मोह न हो, वे लोग मेरे साथ आयें।"

बाबा के इस आह्वान पर तीन व्यक्ति भीड़ में से निकलकर बाबा के पास आये। काम शुरू हुआ। एक पेड़ के नीचे कुदाल पटकते ही एक भयंकर साँप फन निकालकर खड़ा हो गया। बाबा ने राम-राम, शिव-शिव कहा और वह साँप फन झुकाकर चुपचाप चला गया। जब इन तीनों की कोई हानि नहीं हुई तब शेष भक्त भी काम में लग गये। देखते-देखते जंगल साफ हो गया। चण्डी देवी के चबूतरे का पता चल गया। वहाँ नये घट की स्थापना की गयी। लेकिन गाँव में स्थित चण्डी-पूजा करने वालों ने यहाँ पूजा करने से इनकार कर दिया। इनका कहना था कि हम लोग कई पुश्तों से पुराने घट की पूजा करते आ रहे हैं जो कि हमारे यहाँ हैं, इसलिए नये घट में पूजा नहीं करेंगे।

अन्त में यह निश्चय हुआ कि नये घट की पूजा दूसरे पुजारी करेंगे। यहाँ नये घट की पूजा करने के पहले बाबा पुराने घट को प्रणाम करने के लिए चण्डी के सेवभृत के घर गये। ज्योंही बाबा ने घट को प्रणाम किया त्योंही घट के ऊपर रखा जवा का फूल नीचे गिर पड़ा। इस दृश्य पर किसी की नजर नहीं गयी, पर नये घट की पूजा करते समय एक विचित्र घटना हुई।

पूजा के दिन सबेरे से कीर्त्तन हो रहा था। लगभग दो हजार भक्त एकत्रित थे। दोपहर को बाबा पूजा करने बैठे। घट के ऊपर फूल चढ़ाते ही चमत्कार हुआ। बिजली की तरह समस्त क्षेत्र में सहसा गर्म हवा फैल गयी। सभी व्यक्ति क्षण भर के लिए संज्ञाहीन हो गये।

आँखें खोलने पर लोगों ने देखा—चारों ओर जवाकुसुम (अड़हुल) के फूलों की वर्षा हुई है। बाबा समाधि में लीन हैं। संकीर्त्तन जोरों से होने लगा। लोग भूमि पर गिरे एक-एक करके फूल उठाने लगे। बाबा के आसन पर पाँच फूल थे जिसे किसी ने नहीं उठाया।

समाधि-भंग होने पर बाबा ने कहा—"आज जो कुछ हुआ, उसे समझा ?"

केवल एक व्यक्ति ने कहा—"बचपन से सुनता आया हूँ कि पुष्पवृष्टि होती है, आज प्रत्यक्ष देखा।"

वर्धमान के जौग्राम की घटना है। एक भक्त को अपने यहाँ नाम-यज्ञ कराने का शौक हुआ। नाम के बाद भोग का आयोजन हुआ। सबेरे से लोगों को भोग खिलाने के बाद कार्यकर्ता लोग खाने बैठे। गरम-गरम खिचड़ी जिसमें समूची मिर्च डाली गयी थी। सबेरे से मेहनत करने के कारण भूख तेज हो गयी थी, तिस पर कड़ाके की धूप में बैठे लोग खा रहे थे। बाबा स्वयं पंगत में चहलकदमी करते हुए देखरेख कर रहे थे। सहसा बाबा ने कहा—"तुम लोग पेट भरकर भोग खाओ।"

मिर्च की अधिकता के कारण खानेवालों की हालत खराब थी। बाबा के इस कथन से कि 'पेट भरकर खाओ' सुनते ही एक भक्त चिढ़ गया। बाबा स्वयं देख रहे हैं कि हम सबका बुरा हाल है। नाक-मुँह से पानी निकल रहा है। सभी पसीने से तर हो गये हैं। उसने

कहा—"कैसे पेट भरकर खाऊँ ? एक तो गरम खिचड़ी, दूसरे गाँव भर की मिर्च झोंक दी गयी है, ऊपर से तीखी धूप, हम तो सजा भोग रहे हैं।"

बाबा ने हँसते हुए कहा—"तिरपाल टाँग दूँ ?"

"टाँग दीजिए न।"

"अच्छी बात है। जय गुरु महाराज की जय।" बाबा बराबर जय-जयकार करने लगे।

एक मिनट के भीतर काले मेघों ने सूर्य को ढक लिया और ठंढी हवा बहने लगी। फिर क्या था, लोग सड़ाप-सड़ाप खिचड़ी पर टूट पड़े।

खिचड़ी का प्रसंग आने पर एक अन्य घटना की याद आती है। रामाश्रम में जगद्धात्री पूजा का आयोजन किया गया था। नित्य ३-४ सौ लोग भोग ग्रहण करते थे। भंडारे का सारा आयोजन असीमानन्द और तारापद बाबू करते थे। नित्य सबेरे से चूल्हा जलाकर भोजन बनाया जाता था। लगभग ६ ड्राम और ५-६ बड़े गमले में खिचड़ी बनाकर रखी जाती थी। इसके लिए चार चूल्हे जलाये जाते थे। दोपहर से लेकर रात तक असीमानन्द और तारापद ही खटते थे।

रात को भीड़ छँट गयी। बाबा १५-१६ व्यक्तियों को लेकर प्रतिमा के सामने कीर्त्तन कर रहे थे। रात के १२ बजे उन लोगों के लिए खिचड़ी बन रही थी जो आश्रम में रात को ठहर गये हैं।

ठीक इसी समय असीमानन्द ने कहा—"तारापद दादा, इस वक्त चाय पीने की इच्छा हो रही है।"

"आश्रम में चाय पीने की आज्ञा नहीं है। इससे अच्छा है कि चलो स्टाल पर जाकर पी आयें।"

"मैं तो बहुत थक गया हूँ। तुम दो कप चाय लेते आओ। आग के पास मौज से पीते रहेंगे। बाबा कुछ नहीं कहेंगे। अगर कुछ कहें तो मेरा नाम ले लेना।"

असीमानन्द के सुझाव पर तारापद दो कप चाय बाजार से ले आया। अभी गिलास ओठों से लगाया था कि पाँचू घोष नामक एक व्यक्ति अपने साथ एक बच्चे को लेकर आया और कहा—"भैया, एक कलछुल खिचड़ी दे दो।"

असीमानन्द ने कहा—"थोड़ी देर ठहर जाओ। चाय पीने के बाद दूँगा।"

यह बात पाँचू घोष को अच्छी नहीं लगी। उसने वापस जाकर बाबा से शिकायत कर दी। बाबा तुरत आये और पूछा—"इसे खिचड़ी क्यों नहीं दी ?"

असीमानन्द ने कहा—"मैंने इनसे कहा कि जरा ठहर जाओ। चाय पीने के बाद दूँगा।"

बाबा तड़प उठे—"मैं कुछ नहीं सुनना चाहता। तू अभी यहाँ से निकल जा।"

असीमानन्द ने भी गुस्से में कहा—"निकल जाने के लिए यहाँ नहीं आया हूँ।"

"तब क्यों आया है।"

"काम करने के लिए।"

"काम कहाँ कर रहा है। निकल जा यहाँ से।"

तभी तारापद कलछुल-पौना पटककर खड़ा हो गया। असीमानन्द ने उससे कहा—"तू

बैठ जा ।'' बाद में बाबा की ओर देखते हुए उसने कहा—''तुम इन सब कामों के बारे में क्या जानते हो ?''

''मैं कुछ नहीं जानता ? न जाने कितने भंडारे का इंतजाम किया है। हजारों लोगों को खिलाया है ।''

''कोंपर जानते हो। साधन-भजन के बारे में भले ही कुछ जानते हो, पर इन सब कामों के बारे में कुछ नहीं जानते ।''

बाबा इस बात पर क्रोधित हो उठे और कहा—''ठीक है, मैं कुछ नहीं जानता। अब तू यहाँ से चला जा ।''

अब असीमानन्द और नाराज हो गया। कहा—''ले आओ रस्सी। इनके हाथ-पैर बाँध दूँ। फिर देखूँ कैसे भंडारा करते हैं ।'' इधर-उधर रस्सी खोजने पर नहीं मिली तो कमर से गमछा खोलकर वह बाबा की ओर बढ़ा।

यह देखकर बाबा तुरत नौ-दो ग्यारह हो गये। उस दिन काफी रात गये सभी लोगों को खिलाने के बाद दोनों व्यक्ति तालाब में नहाने गये। वहाँ आपस में बातचीत कर रहे थे कि ठीक इसी समय बाबा आ गये। बोले—''सब काम हो गया ?''

इन लोगों ने कहा—''हाँ ।''

''तुम लोगों ने खाना खा लिया ?''

''हम लोगों ने खाया या नहीं, इसकी फिक्र आपको है ? दोपहर को दो-दो टुकड़े ककड़ी के मिले थे। ऊँट के मुँह जीरा ।''

बाबा बिना कुछ बोले चले गये। दोनों स्नान करने के बाद चल पड़े। रास्ते में असीमानन्द ने कहा —''इस वक्त लिबड़ी हुई खिचड़ी खाने की इच्छा नहीं है। इस वक्त गरम-गरम भात, आलू का चोखा और ऊपर घी मिलता तो मजा आता ।''

घर के पास आते ही असीमानन्द की पत्नी ने कहा—''कपड़े यहीं टाँगकर रसोईघर में चले आओ। तुम दोनों को खाना परोस देती हूँ ।''

''क्या बनायी हो ?''

''भोर चार बजे बाबा ने आकर कहा—''देख री, दोनों बेचारे आज काफी मेहनत करते रहे। वे खिचड़ी नहीं खायँगे। दोनों नहाकर जब आयेंगे तब उनके लिए गरम-गरम भात, आलू का चोखा और घी दे देना ।''

यह बात सुनकर असीमानन्द और तारापद एक दूसरे की ओर देखने लगे।

दूसरे दिन पता चला कि काफी लोग चले गये हैं, पर अभी तक २५०-३०० व्यक्ति मौजूद हैं। फलस्वरूप इनके भोजन के लिए दोनों व्यक्ति तैयारी में लग गये।

इधर कई दिनों तक भंडारे में बड़े-बड़े कुंदे आसानी से जलते रहे, पर आज न जाने क्यों जलने का नाम नहीं ले रहे हैं। एक गाड़ी सूखे बाँस मँगवाये गये। कुंदों पर चार बोतल मिट्टी का तेल छिड़का गया, पर धुआँ होता रहा। आग पकड़ नहीं रही थी। कई लोग आग जलाने के लिए कोशिश करते रहे।

तारापद ने कहा—"असीम दादा, कल आप बाबा को बाँधने जा रहे थे, यह उसी का नतीजा है।"

"माना कि तू ठीक कह रहा है, पर नौ बजे से अब साढ़े ग्यारह बज गये, भोग का इंतजाम कैसे होगा ?"

ठीक इसी समय बाबा स्नान करने के बाद दूर से अपनी कुटिया की ओर जा रहे थे। असीमानन्द की पत्नी ने कहा—"बाबा, जरा इधर आइये।"

"नहीं बेटी, मैं उधर नहीं आऊँगा। कल ये दोनों मुझे बाँधने आये थे। उन लोगों की जो इच्छा हो, करें।"

असीमानन्द की पत्नी एक दौड़ में पास जाकर बोली—"बेटी के रहते कौन तुम्हें बाँध सकता है। इतना साहस किसमें है ? आओ, चलो।"

असीमानन्द की पत्नी उनका हाथ पकड़कर खींच लायी। पास आकर बाबा ने पूछा—"क्या हो रहा है, सीताराम ?"

दोनों ने सिर खुजलाते हुए कहा—"आग नहीं जल रही है।"

बाबा ने कहा—"बोलो, रामजी की जय।" इसके साथ ही बाबा ने लकड़ियों को इधर से उधर कर दिया। आग जल उठी।

हँसते हुए बाबा ने कहा—"देख, गुरु के साथ उस्तादी मत दिखाना। समझा ?"

बीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में इस संत का तिरोधान ५ दिसम्बर, सन् १९८२ के दिन, रात को एक बजकर पच्चीस मिनट पर; सदर्न एवेन्यू में उनके ही शिष्य श्री गोपाल मित्र के भवन में हो गया। उन दिनों आपकी उम्र ९१ साल थी। इस बात में तनिक संदेह नहीं कि वे अपने भक्तों को नाम जपने का अमूल्य संदेश दे गये। उनका कहना था कि इसीसे सब कुछ प्राप्त हो जाता है। कलियुग में इससे बढ़कर अन्य कोई साधना नहीं है।

●
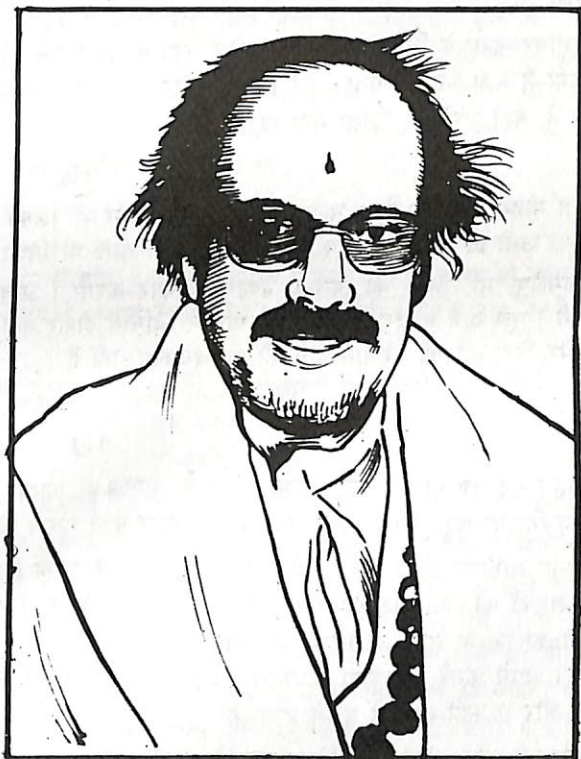
श्री मोहनानन्द ब्रह्मचारी

श्री मोहनानन्द ब्रह्मचारी

सेण्ट जेवियर्स कालेज के होस्टल में रहनेवाले छात्र मनोज मोहन को अपने बड़े भाई का एक पत्र मिला —

"अपनी आवश्यकता के लिए केवल पाँच रुपये ले रहा हूँ, बाकी पैसे और सारा सामान सजाकर रख दिया है। आकर ले जाना। मेरे लिए चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। मैं जहाँ जा रहा हूँ, वहाँ जाने पर चिन्ता नहीं रहती।"

—काबू

मझले भैया मोहन का घरेलू नाम 'काबू' है और जिसके नाम पत्र लिखा गया, है उसका घरेलू नाम 'नेबू'। उसी दिन काबू का एक पत्र उसकी माँ के नाम भी मिला—

श्रीचरणकमलेषु, माँ, सेवक का असंख्य प्रणाम स्वीकार करना। आपके द्वारा प्रेषित रुपये मिल गये थे। मुझे अब बुखार नहीं है। मेरे बारे में चिन्तित होकर क्यों अपने आपको कष्ट देती हैं ? मेरे लिए आपको परेशान होने की आवश्यकता नहीं है।

आपका स्नेहाकांक्षी

काबू

मनोज मोहन यह पत्र पाते ही तुरत मझले भैया के होस्टल में आया। सुपरिण्टेण्डेण्ट गोपालजी को पत्र दिखाते हुए पूछा—"क्या मामला है ? दादा कहाँ गायब हो गये ?"

गोपाल प्रसाद मोहनानन्द को काफी प्यार करते थे। नित्य रात को होस्टल के प्रत्येक कमरे में जाकर लड़कों की उपस्थिति देखते थे, पर मोहनानन्द के कमरे में कभी नहीं जाते थे। होस्टल तथा कालेज के सभी अधिकारी इस बात से अच्छी तरह परिचित थे कि वह कहीं नहीं जाता। अपने कमरे में हमेशा अध्ययन करता रहता है। छात्रों से न तो विशेष सम्पर्क रखता है और न कहीं व्यर्थ में घूमने जाता है।

गोपाल प्रसाद ने कहा—"वह उस दिन शाम को अपनी बड़ी बहन के यहाँ गया था। वहाँ से लौटने पर उसने मुझसे यह कहा कि कल भोर में एक जरूरी काम से दीदी के यहाँ जाना है। भोर के वक्त गेट के दरवान से उसने यह कहा था कि 'मुझे दीदी के यहाँ जाना है।' मैंने सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब को रात में ही सूचना दे दी थी। इस वक्त उन्हें जगाकर परेशान करने की आवश्यकता नहीं है। उनके नाम पत्र भी छोड़ आया हूँ।' उसके मधुर व्यवहार से होस्टल के सभी कर्मचारी प्रसन्न रहते थे, इसलिए किसी ने उसे रोका नहीं।"

मनोज मोहन वहाँ से तुरत मोहनानन्द के कमरे में आया तो देखा—सारा सामान इस तरह बाँधकर रखा गया है जैसे कोई हमेशा के लिए यह कमरा खाली करके जानेवाला है।

दराज के भीतर एक लिफाफे में कई नोट और एक पुड़िया में रेजगारियाँ मिलीं। उसे गोपाल प्रसाद की जबानी यह मालूम हुआ कि मझले भैया दीदी के यहाँ गये हैं।

दीदी के यहाँ आने पर जीजाजी ने कहा—"यहाँ नहीं आया है। आज से चार दिन पहले जरूर आया था। यहाँ भोजन करके चला गया। कहीं जानेवाला है या जायगा, इस तरह का आभास हमें नहीं हुआ।"

जीजा की बातें सुनकर मनोज मोहन चिन्तित हो उठा। इन दिनों जो लोग गायब होते थे, वे बेलूर मठ में ज़ाकर सेवक बन जाते थे। मनोज मोहन के कई मित्र इसी आशंका से वहाँ गये। यहाँ से भी निराश होकर लौटना पड़ा। आखिर मझले भैया गये कहाँ ?

मनोज मोहन इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि बड़े भैया के निधन के बाद से पिताजी और माताजी का सारा स्नेह मझले भैया पर केन्द्रित है। उन्हें जरा सा कष्ट होने पर वे दोनों काफी परेशान हो जाते हैं। मझले भैया अपने स्वभाव के कारण पूरे परिवार में ही नहीं, बल्कि मित्र-मण्डली में भी लोकप्रिय थे। अधिक बातचीत करना उन्हें पसन्द नहीं था। स्वभाव से वे मितव्ययी थे। घर से खर्च के लिए जितनी रकम आती थी, उसमें से काफी बचा लेते थे जबकि मुझे कमी पड़ जाती थी।

यह सितम्बर, सन् १९२१ ई० की घटना है। काफी उहापोह करने के बाद इस घटना की सूचना देने के लिए मनोज मोहन पिताजी को पत्र लिखने बैठा। पत्र बंगला में प्रारंभ करते ही उसके मन में संदेह हुआ कि इसे माँ ने पढ़ लिया तो गजब हो जायगा। वह पागलों की तरह दौड़ी आयेंगी अथवा सख्त बीमार पड़ जायँगी। इसके बाद उसने अंग्रेजी में पत्र लिखा।

श्रीचरणेषु, परमाराध्य पिताजी, आज तीसरे पहर पहले मुझे मझले भैया का एक पत्र मिला। उसमें लिखा था—"अपनी आवश्यकता के लिए केवल पाँच रुपये ले रहा हूँ। बाकी रुपये-पैसे और सामान ठीक-ठाक करके रख दिया है, यहाँ से ले जाना। मेरे लिए चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। मैं जहाँ जा रहा हूँ, वहाँ जाने पर चिन्ता समाप्त हो जायगी।"

इस पत्र को पाते ही मैं मझले भैया के होस्टल में गया। वहाँ सुपरिण्टेण्डेण्ट श्री गोपाल दादा से मुलाकात की। गोपाल दादा को भी कुछ नहीं मालूम। उन्होंने केवल यही बताया कि कल शाम को होस्टल से बाहर कहीं घूमने गया। लौटकर जब वापस आया तब उसने कहा कि दीदी के घर गया था। कल सुबह एक जरूरी काम से एक बार दीदी के यहाँ जाना पड़ेगा। पर वह वहाँ नहीं गये। लगता है, दीदी के यहाँ जाने का बहाना करके सबेरे पाँच बजे होस्टल से चले गये। कहाँ गये, यह बात किसी को नहीं मालूम। दीदी के यहाँ आये नहीं। इस मामले में सारी बातें उन्होंने छिपा ली हैं। यहाँ तक कि गोपालदादा भी नहीं जानते।

गोपाल दादा को लेकर दीदी के घर गया। शायद जीजाजी से सलाह करने पर कोई सूराग मिले। मगर वे लोग भी मेरी तरह अँधेरे में हैं। दीदी ने कहा कि पिछले सोमवार को यानी चार दिन पहले मझले भैया उनके यहाँ निमंत्रण खाने गये थे। इसके बाद फिर नहीं आये। उस रात के बाद उनसे इन लोगों की मुलाकात नहीं हुई। हम सभी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये हैं। क्या करें, कहाँ पता लगायें, कुछ समझ नहीं पा रहे हैं। यह भी समझ नहीं पा रहे हैं कि वे कलकत्ता में ही कहीं हैं या बाहर चले गये हैं। लेकिन एक बात का पता उनके

मित्रों तथा गोपाल दादा से चला है कि मंझले भैया इन दिनों बड़े ध्यान से रेलवे टाइम टेबुल पढ़ते थे। इससे यह अन्दाजा लगता है कि वे गाड़ी के द्वारा कलकत्ते से बाहर कहीं गये हैं। होस्टल छोड़ते समय उनके पास दस रुपये से अधिक रकम नहीं थी। हम समझ नहीं पा रहे हैं कि क्या करें ? आपके निर्देश की प्रतीक्षा करूँगा। मझले भैया की खोज में कुछ लोगों को बेलूर मठ में भेजा है। वे क्या सूचना लाते हैं, इस बारे में कल एक पत्र आपको लिखूँगा। इस वक्त यह पत्र जीजाजी के घर से लिख रहा हूँ। इति—

आपका स्नेहपात्र—नेबू।

नेबू का पत्र पाने के बाद हेमचन्द्र घबरा उठे। उन्होंने अपने मित्रों, रिश्तेदारों तथा ऐसे कई स्थानों में तार और पत्र भेजा जहाँ मोहनानन्द जा सकते थे। लेकिन कहीं से कोई आशाजनक सूचना प्राप्त नहीं हुई। मोहनानन्द के गायब होने पर घर की जो दशा हुई, उस बारे में हेमचन्द्रजी ने लिखा है—

"नेबू के पत्र से मोहनानन्द के गायब होने का समाचार सुनकर उसकी माँ की जो हालत हुई, वह वर्णनातीत है। वे इस कदर रोने लगीं जैसे उनका बेटा मर गया हो। खाना-पीना बन्द हो गया। पड़ोसी आकर उन्हें धीरज देते थे। उन दिनों स्वदेशी आन्दोलन का माहौल था, इसलिए यह संदेह हो रहा था कि प्रलोभन देकर कहीं लोगों ने उसे दल में शामिल न कर लिया हो। कभी हम यह सोचते थे कि रामकृष्ण आश्रम के किसी दूरवाले आश्रम में न चला गया हो। इन्हीं बातों के ऊहापोह के कारण पुलिस को सूचना नहीं दी गयी। केवल चारों ओर पत्र भेजा गया।

इसी परेशानी में तीन-चार दिन बीत गये। अचानक देवघर आश्रम से श्री श्री गुरुदेव का पत्र आया। उससे यह ज्ञात हुआ कि मोहनानन्द उनके आश्रम में है। इस समाचार से हम सब आश्वस्त हो गये। लड़का जीवित है और महाराज के आश्रम में है। फलस्वरूप हमारी आशंकाएँ दूर हो गयीं। मगर गुरुदेव की अन्य बातों से लेखक को समझने में यह देर नहीं लगी कि अब आगे क्या होनेवाला है। महाराजने लिखा था कि लड़के को हर तरह से समझाया, पर अब वह गृहस्थाश्रम में नहीं रहना चाहता। तीव्र वैराग्य लेकर यहाँ आया है। अगर यहाँ उसे बाधा प्राप्त हुई तो वह अन्यत्र चला जायगा। आश्रम में सकुशल है। इधर लड़के की माँ पुत्र के वापस आने की आशा त्याग नहीं सकी। उनका दृढ़ विश्वास था कि अगर वे समझायेंगी तो उसे जरूर वापस ले आयँगी। उसका गृहत्याग महज बचपना है। इसकी कोई खास बजह नहीं है। लेखक को आफिस में छुट्टी न मिलने के कारण पत्नी को एक चपरासी के साथ देवघर के आश्रम में भेज दिया।

अब मैं मोहनानन्द के आश्रम तक पहुँचने का विवरण लिख रहा हूँ। जो ट्रेन सुबह हबड़ा से चलकर शाम को देवघर पहुँचती थी, उसी ट्रेन से मोहनानन्द वैद्यनाथधाम स्टेशन पहुँचा। लोगों से पूछते हुए शाम को आश्रम आ गया। जब वह डेढ़ वर्ष का था तब एक बार अपनी माँ के साथ देवघर आया था। इन दिनों उसकी उम्र १७ साल है। इस बीच वह कभी देवघर नहीं गया। हम लोग कभी-कभी देवघर जाते हैं, केवल यही जानकारी उसे थी। ज्ञान होने के बाद से उसने कभी श्री बालानन्द महाराज का दर्शन नहीं किया था। फलस्वरूप उसे इस बात की जानकारी नहीं थी कि महाराज का आश्रम कहाँ है, किन रास्तों से चलकर वहाँ तक पहुँचा जा सकता है।

राह चलते लोगों से पूछते हुए वह देवघर आश्रम पहुँचा। वहाँ के एक कर्मचारी से पूछने पर पता चला कि इस वक्त महाराजजी शिव मंदिर के बरामदे में विराजमान हैं, मगर शीघ्र ही वहाँ से उठनेवाले हैं। फिर उनसे मुलाकात नहीं होगी। अभी तुरत जाने पर दर्शन हो सकता है। इतना सुनते ही मोहनानन्द ने तेजी से महाराज के पास आकर उन्हें प्रणाम किया। महाराज ने पहले पूछा—"मकान कहाँ है ?" इस प्रश्न के उत्तर में उसने "शिव निवास" बताया। इस जवाब को सुनकर महाराज ने पूछा, "कृष्ण बाबू तुम्हारे क्या लगते हैं ?" जवाब में उसने कहा, "वे मेरे पितामह थे।" इस जवाब को सुनकर उन्होंने पूछा—"क्या तुम हेम के लड़के हो ?" उसने "हाँ" कहा। बाद में अन्य पूछताछ से पता चला कि सुबह वह कलकत्ता से रवाना हुआ है, अभी तक कुछ खाया नहीं है। उस वक्त विशेष कुछ न कहकर उन्होंने अपने सेवकों से कहा कि इसके भोजन और ठहरने का इन्तजाम बड़े अच्छे ढंग से कर दिया जाय।

दूसरे दिन महाराज ने उससे इस तरह चले आने का कारण पूछा। मोहनानन्द ने दृढ़ स्वर तथा स्पष्ट रूप से सूचित किया कि अब वह गृहस्थाश्रम में नहीं जायगा। वह संन्यासी बनेगा। महाराज उसे हर तरह समझाते रहे। यह जीवन बड़ा कठोर है। इस प्रकार की तितिक्षा और कठोरता उससे सहन नहीं होगी। इसके अलावा इस मार्ग में आने के पूर्व पिता-माता की अनुमति लेना आवश्यक है। इसके अलावा इस वक्त अध्ययन छोड़ देने पर फिर मौका नहीं मिलेगा। इससे अच्छा है कि तुम पहले बी० ए० पास कर लो, इसके बाद देखा जायगा।

महाराज की बातें सुनने के बाद उसने दृढ़तापूर्वक कहा कि उसके माता-पिता कभी अनुमति नहीं देंगे। जब मैंने यह संकल्प किया है कि मुझे गृहस्थाश्रम में अब नहीं रहना है तब बी० ए० पास करके क्या करूँगा ? इससे अच्छा यह होगा कि साधु बनने के लिए जितने अध्ययन की जरूरत है, वही करूँगा। पिताजी से अनुरोध करने पर शायद वे अनुमति दे देंगे, पर माताजी कदापि नहीं देंगी। अगर वे सहज ढंग से अनुमति नहीं देंगी और उसे देवघर के आश्रम में रहने में बाधा प्राप्त हुई तो वह दूसरी जगह चला जायगा। लेकिन अब वापस घर नहीं जायगा।

बालक की दृढ़ता देखकर महाराज ने उसे आश्रम में रहने की आज्ञा दे दी और पिता-माता को पूर्ण विवरण लिखकर भेज दिया।

महाराज का पत्र पाते ही लड़के की माँ पुरुलिया से आश्रम में आयीं। यहाँ आने पर उन्होंने देखा कि उनके सबसे अधिक दुलारू पुत्र में पर्याप्त परिवर्तन हो गया है। बालक को इस रूप में देखकर माँ देर तक रोती रहीं। महाराज ने मोहनानन्द को बुलाकर माँ के साथ जाने की आज्ञा दी तो वह चुपचाप खड़ा रहा। बाद में माँ के साथ रात को रहने का आदेश दिया गया। इस आज्ञा का पालन उसने किया। माँ को किसी प्रकार की असुविधा न हो, इस ओर बराबर ध्यान देता रहा। माँ आश्रम में ४-५ दिन रहीं। हर तरह से रो-गाकर अपने पुत्र को समझाती रहीं, पर पुत्र अपनी दृढ़ता से टला नहीं। उसने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि वह संन्यास जरूर लेगा और इसमें बाधा पहुँचायी गयी तो अन्यत्र चला जायगा। अब गृहस्थाश्रम में लौटने की उसकी इच्छा नहीं है। माँ ने समझाया—"तुम घर लौट चलो। मैं वायदा करती हूँ कि तुम्हारी शादी नहीं करूँगी। बी० ए० पास करने के बाद भले ही साधु

बन जाना।" मोहनानन्द ने कहा कि जब साधु बनने का संकल्प लेकर गृहस्थाश्रम छोड़ चुका तब बी० ए० पास करने का क्या महत्व है।

माँ को आड़ में बुलाकर महाराज ने कहा—"वह जिस तरह तीव्र वैराग्य लेकर आया है, अब उसे गृहस्थाश्रम में लौटा ले जाना कठिन है। अगर तुम सब उसे ज्यादा तंग करोगे तो वह यहाँ से चला जायगा। यह आश्रम तुम्हारे परिवार के दो पुश्तों का है। यहाँ रहने पर चिन्ता की बात नहीं रहेगी। मैं सतर्क भाव से ध्यान रखूँगा। लड़का आगे चलकर उन्नति करे, इस दिशा में प्रयत्न करूँगा। आजकल भंड साधु काफी हो गये हैं। अगर इसे परेशान किया गया तो दूर कहीं भाग जायगा और संभव है कि भंड साधुओं के चक्कर में फँस जाय।

लड़के की माँ ने कलेजे पर पत्थर रखकर सारे उपदेशों को ग्रहण किया और निराश होकर पुरुलिया वापस आ गयीं। यह सितम्बर, सन् १६२१ की घटना है। यहाँ आकर पुत्र-बिछोह के कारण वे बराबर रोती रहीं। पिता की भी यही दशा थी। एक दिन तो पिता घर से चलकर दिन भर श्मशान में बैठे रहे। बाद में दामाद जाकर उन्हें वहाँ से ले आया। इसी प्रकार एक दिन माँ ने कहा—कल रात को एक अद्‌भुत सपना देखा। मेरा व्याकुल भाव और विषण्ण चेहरा देखकर श्री श्री बालानन्द महाराज शंकर भगवान् रूप में प्रकट हुए। इसके बाद मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—"बेटी, तू दिन-रात क्यों रोती रहती है ? तू तो परम सौभाग्यवती है। तुम साधु की माँ बनोगी। यह सौभाग्य कम लोगों को प्राप्त होता है। मैंने तुम्हारे पुत्र को ग्रहण कर लिया है। अब तुम बेफिक्र हो जाओ।"

इस सपने की बात सुनकर पिता भी आश्वस्त हो गये और वे मोहनानन्द की माता को बुद्ध, शंकराचार्य, चैतन्यदेव आदि महापुरुषों की कहानियाँ सुनाने लगे। स्वप्न में महाराज का दर्शन पाकर और उनकी स्नेह पूर्ण बातें सुनकर बच्चे की माँ को प्रसन्नता का अनुभव हुआ।

कुछ दिनों बाद सूचना आयी कि महाष्टमी के दिन मोहनानन्द को दीक्षा दी जायगी। यह समाचार इष्ट-मित्रों तक पहुँच गया। काफी तादाद में लोग देवघर में दीक्षा-समारोह देखने के लिए आये। दीक्षा देने के पहले महाराज ने लेखक तथा उनकी पत्नी को बुलाकर पूछा कि आप दोनों अपने पुत्र को साधु-जीवन ग्रहण करने की प्रसन्नता पूर्वक अनुमति दे रहे हैं या नहीं। उस वक्त महाराज की आँखें आनन्द से सराबोर थीं। लेखक ने कहा—"गुरुदेव, आज आपके चरणों की सेवा करने के लिए इस पुत्र को समर्पित करते हुए अपने को सौभाग्यशाली समझ रहा हूँ।" इसी समय मोहनानन्द की माता ने मेरे कान में कहा—गुरुदेव का आज जो आनन्दमय रूप है, यही रूप मैंने स्वप्न में देखा था।

तब लेखक ने अपनी पत्नी से कहा—"तुम्हारे दो और पुत्र हैं। अब बिना ऊहापोह किये प्रफुल्ल मन से अपनी सहमति दे दो।" लड़के की माँ ने हाथ जोड़कर गद्‌गद स्वर में कहा —"बाबा, आपके श्रीचरणों में अर्पण कर रही हूँ। मगर मेरी प्रार्थना है, इसे अपनी नजरों से दूर मत रखियेगा।"

महाराज ने कहा—"एवमस्तु ! ऐसा ही होगा।"

इसके बाद मोहनानन्द को नैष्ठिक-ब्रह्मचर्य में दीक्षा दी गयी। दीक्षा के बाद गैरिक वस्त्र पहनकर उसने हम लोगों को प्रणाम किया। मेरी आँखों से आँसू बहने लगे। गुरुदेव की हम पर अपार कृपा है। हम इस बात के लिए चिन्तित थे कि मोहनानन्द बड़े नाजों में पला है, साधु-जीवन की कठोरता कैसे सहन करेगा। हमारी इस आशंका को महाराज ने दूर कर

दिया। आश्रम में संपूर्ण रूप से निस्वः होकर वह पैदल ही भारत के सभी तीर्थों का दर्शन कर आया है। अमरनाथ, बदरीनाथ, केदारनाथ, कैलास, मानसरोवर आदि दुर्गम तीर्थों का बार-बार पर्यटन कर चुका है। महाराज तथा हम लोगों को ऐसे स्थानों से बराबर पत्र भेजता रहा। सभी जगह उसे सम्मान मिला और मार्ग व्यय भी मिलता रहा। तीर्थों से वापस आते समय अपने लिए कुछ नहीं लाता जब कि महाराज तथा हमारे लिए और आश्रम के अन्य साधुओं के लिए कम्बल, फल, प्रसाद तथा अन्य सामग्रियाँ ले आता था। श्री गुरुदेव की ऐसी कृपा है कि मोहनानन्द के संन्यास लेने के कई महीने बाद मैं दासत्व की श्रृंखला से मुक्त हो गया यानी अवकाश ले लिया। इसके बाद सपत्नीक देवघर आकर गुरु महाराज की चरण-छाया में निवास करने लगा।"

मोहनानन्दजी के पिता द्वारा लिखित इस विवरण से उनके वैराग्य के बारे में पूर्ण जानकारी मिलती है। मोहनानंन्द के गुरु श्री बालानन्द महाराज असाधारण योगी थे। मोहनानन्दजी के पिता-माता ही नहीं, बल्कि पितामह भी बालानन्द महाराज के शिष्य थे। देवघर में 'राम निवास ब्रह्मचर्याश्रम' नामक एक स्थान है, इसके निर्माणकर्ता रामचरण बसु और कृष्णचन्द्र बनर्जी थे। जिनके बारे में बालानन्दजी कहा करते थे—राम और कृष्ण—ये दोनों मेरे दायाँ-बायाँ हाथ हैं। मेरे सभी शुभ कर्मों के मूल हैं। कृष्णचन्द्र की पत्नी कात्यायनी देवी को गुरुदेव के भक्त 'कातू माँ' कहकर पुकारते थे। वे महाराज की शिष्या और महान् साधिका थीं। हेमचन्द्र बनर्जी का पालन-पोषण इन्होंने ही किया था। अपने विवाह के पश्चात् हेमचन्द्र बनर्जी ने भी महाराज से दीक्षा ली थी। इस प्रकार तीन पीढ़ी के गुरु बालानन्दजी थे।

१७ दिसम्बर, सन् १६०४, शनिवार, सुबह ७ बजे हेमचन्द्र बनर्जी के यहाँ तीन पुत्रियों के बाद दूसरा पुत्र पैदा हुआ। उन दिनों हेमचन्द्र के चाचा मेदिनीपुर में किराये के एक मकान में रहते थे। इसी मकान में श्री मोहनानन्द का जन्म हुआ था। हेमचन्द्र के चाचा एक स्टेट के मैनेजर थे और वे स्वयं आबकारी विभाग के अफसर थे।

मोहनानन्द जब माँ के गर्भ से निकले तब वे धरती पर नहीं, बल्कि अपनी दादी माँ के हाथों में गिरे थे यानी दादी माँ ने हाथ में लोक लिया था। उन्होंने सर्वप्रथम बालक का नाम रखा—काबली। आगे चलकर यही नाम 'काबू' बन गया।

मोहनानन्द बचपन से ही मेधावी और शान्तिप्रिय थे। भोजन करते वक्त परिहास अवश्य करते थे। मितव्ययी इतने थे कि शिक्षा के लिए उन्हें जो रकम दी जाती थी, उसमें से बचाकर हर छुट्टी पर घर आते और छोटे भाइयों के लिए उपहार लाते थे। आपको डायरी लिखने की आदत थी। डायरी के पृष्ठों से ज्ञात होता है कि विद्यार्थीकाल से ही आप योगासन करते थे। दूसरों को समोसा, राजभोग, कलाकन्द, कचौड़ी खिलाते और स्वयं दही-चिउड़ा खाते थे।

कीर्त्तन के प्रति आपका अपूर्व आकर्षण था और आजीवन आप कीर्त्तन करते रहे। अक्सर अधिक रात गये जब आप घर लौटते तब पिताजी और माताजी चिन्तित हो उठते। इस बारे में माता विनयिनी देवी उलाहना दे चुकी हैं। आप चुपचाप अपने कमरे में चले जाते थे। लेकिन कीर्त्तन-सभा में जाना बन्द नहीं करते थे। महाप्रभु जगद्बन्धु के प्रधान शिष्य वैष्णव शिरोमणि रामदास बाबाजी का कहना था कि जब तक मोहनानन्द नहीं आता

तब तक कीर्त्तन-सभा जमती नहीं। कीर्तन करते-करते अक्सर आप भावावेश में आ जाते थे।

परिवार के लोगों को बालानन्दजी से दीक्षा लेते तथा घर पर हमेशा उनकी चर्चा चलते रहने के कारण मोहनानन्द पर गुरुदेव का व्यापक प्रभाव था। होस्टल में रहते समय आसन का अभ्यास करने की उनकी आदत थी। इसी तरह हरिसभा में कीर्त्तन करते-करते भावावेश में आ जाना भी उनका स्वभाव बन गया था। संभवतः ऐसी ही बातों से उनमें साधु बनने की धुन सवार हुई थी। मोहनानन्द होस्टल से ६ सितम्बर को गायब हुए थे। इसके पूर्व मई में जब कालेज बन्द हो गया तब वह अक्सर माँ से बालानन्दजी महाराज तथा देवघर आश्रम, वहाँ के नियम-कानून के बारे में सवाल करता था। उस समय तक किसी को यह संदेह नहीं हुआ कि आखिर लड़का यह सब क्यों पूछ रहा है। इस घटना के तीन माह बाद लड़का गायब हुआ।

अवकाश ग्रहण करने के बाद हेमचन्द्रजी देवघर स्टेशन के पास किराये पर एक मकान लेकर रहने लगे। आश्रम से दूर रहने का निर्णय उन्होंने इसलिए लिया ताकि माँ की व्यथा लड़के की साधना में व्याघात न पहुँचाये। जब कभी गुरुदेव के दर्शन की इच्छा होगी तब शीघ्र आश्रम पहुँच जायँगे। अक्सर बालानन्द महाराज दुःखी माँ को सांत्वना देते हुए समझाते—"अपने आँसुओं से तुम मोहन को अपने आदर्श से विमुख मत करो। इससे अच्छा है कि तुम उसे आशीर्वाद दो, उसे शक्ति दो ताकि वह इस क्षुरधार संकुल मार्ग पर प्रसन्नता पूर्वक चलता रहे।"

लेकिन माँ इस आश्वासन से आश्वस्त नहीं होतीं। बालक का कष्ट देखकर महाराज से शिकायत करतीं—"आपको मालूम है बाबा, आज मोहन ने एक टुकड़ा पपीता उबालकर खाया है। इसके अलावा और कुछ भी नहीं। आप उसे डाँटते क्यों नहीं ? यह सब खाने की उसे आदत नहीं है। बचपन से उसकी देखरेख करती आ रही हूँ। अगर इतनी कड़ाई की गयी तो वह जीवित रह सकेगा ? उसे समझाइये बाबा।"

माँ की आकुलता देखकर बाबा अट्टहास कर उठे। मोहन कितना दुलारा है, कितने नाजों से पला है, यह बात वे जानते थे। अब आगे साधना-पथ पर वह कितना कृच्छ्र जीवन अपनायेगा, इस बात की भी उन्हें जानकारी थी। क्या वे विनयिनी देवी से कम उसे चाहते हैं। उनके सभी शिष्यों में यही तो सबसे प्रिय है। हर वक्त, हर घड़ी उसे अपनी आँखों के सामने रखते हैं।

विनयिनी देवी को क्या मालूम कि महाराज और मोहन में एक अनिर्वचनीय भाव का सम्बन्ध था। मोहन के बारे में गुरुदेव कहा करते थे—"यह मेरा मनोमय भक्त है। जबान पर एक शब्द नहीं, पर वह मन ही मन जानता है कि मुझे कब किस चीज की जरूरत है। जब तक मैं कुछ कहूँ, उसके पहले ही मेरी अभिलाषा को जानकर वह चुपचाप काम कर देता है।"

दूसरी ओर मोहन अपने गुरुदेव के बारे में लोगों के पूछने पर कहा करता था—"मैं गुरुदेव की कायिक सेवा क्या कर सकता हूँ। कायिक सेवा, बाह्यपूजा आदि अधमाधम है।"

लोग कहते—"गुरुदेव की कायिक सेवा अगर अधमाधम है तो यह जो अलौकिक अनुभूतियाँ हैं, वह क्या है ?"

दूसरा प्रत्यक्षदर्शी भक्त कहता—"मोहन को बकने दो। हमने अपनी आँखों से सब देखा है। मोहन ने जिस तरह अपने गुरु की कायिक-सेवा की है, वह सभी शिष्यों के लिए महान् आदर्श है। गुरुदेव ध्यान कुटीर में रहते थे। भीषण गर्मी का मौसम है। ठीक इन्हीं दिनों उन्हें बुखार हुआ। आश्रम में तबतक बिज़ली नहीं आयी थी। मसहरी लगाने पर ज्वर का प्रदाह बढ़ जायगा और यहाँ मच्छरों का इतना उपद्रव है कि अगर उनमें शक्ति हो तो आदमी को उठा ले जायँ। इस आशंका से मोहन शाम से लेकर भोर तक गुरुदेव को पंखा झलता रहा। दूसरी ओर बुखार के ताप के कारण बिना हवा के गुरुदेव को चैन नहीं मिलता था। इस प्रकार विनिद्र स्थिति में न जाने कितनी रातें मोहन गुजार चुका है। उसके फूल जैसे शरीर पर अगणित मच्छरों के काटे हुए दाग उभरे हुए थे। सारे शरीर में कहीं भी जगह नहीं बची थी। पूछने पर जवाब दिया—"गर्मी तथा बुखार के कारण महाराज को बड़ा कष्ट हो रहा था। मसहरी लगाने पर कष्ट और बढ़ जाता। इसीलिए रात भर उन्हें हवा करता रहा। शायद दो-चार मच्छरों ने मुझे काटा है।"

दूसरे भक्त ने कहा—"मोहन ध्यान कुटीर की बगलवाली कुटिया में रहता था। एक कम्बल बिछाकर एक कम्बल ओढ़कर एक-दो घण्टा सोता है। चादर ओढ़ता, कभी नहीं भी ओढ़ता। गेरुए रंग का कपड़ा जो जगह-जगह से काफी फट गया था, गाँठ लगाकर पहनता है। गुरुदेव के लिए पहाड़ के नीचे से कुएँ का पानी लाता है। ताँबे के कलशों को इमली से माँजता है। इस पानी से गुरुदेव स्नान करते थे। देवघर में गुरुदेव के स्नान और रसोई का पानी नर्मदा कुण्ड से कँधे पर लादकर लाता था। उन्हें स्नान कराता और मुँह धोने का पानी तथा दातौन लेकर गुरुदेव की प्रतीक्षा में खड़ा रहता। उनके बिछौने को धूप में देना, चादर, लुंगी, कोपीन में साबुन लगाना आदि उसके नित्य के कार्य हैं। सबसे बड़ी खूबी उसमें यह थी कि गुरुदेव के लिए भोजन बढ़िया बनाता है। बालानन्दजी पकौड़ी, दहीबड़ा, परवल के पत्तों की पकौड़ी, नीम की तरकारी अधिक पसन्द करते थे। अन्य शिष्यों की अपेक्षा बड़े प्रेम से मोहन बनाता है।"

मोहनानन्द में एक खूबी थी। जब मूड बनता तब वे बालानन्द महाराज को बिना सूचित किये, परिव्राजक रूप में तीर्थयात्रा करने चले जाते। राह में जो मिल गया, खा लिया। श्रद्धावश किसी ने रेलवे का टिकट खरीद दिया तो ठीक वर्ना पैदल ही यात्रा करते। आश्रम से गायब होने का उसका निजी टेकनीक था। बिस्तर पर कम्बल को इस तरह सजा देता जैसे कोई सो रहा है। इसके बाद खाली हाथ गायब हो जाता था।

एक बार कुंभ मेला में जाकर रेती में बेहोश हो गया। उस समय महाराज शिष्यों से घिरे कथा सुना रहे थे। तभी समाचार आया कि मोहन को कुंभ में हैजा हो गया है। तुरत लोग इलाहाबाद रवाना हो गये। इस समाचार को सुनते ही महाराज का चेहरा भावावेग से लाल हो उठा। फिर सत्संग से वे चुपचाप उठ गये और अपनी साधना कुटिया में चले गये। भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। भीतर वे अपने प्रिय शिष्य के लिए क्या करते रहे, इसे कोई नहीं जान सका। जब महाराज उस कमरे से निकले तब पसीने-पसीने हो रहे थे। चेहरे पर प्रसन्नता झलक रही थी।

आहार की कठोरता के कारण मोहनानन्दजी का पक्काशय सूख गया। भोजन नहीं कर पाते थे। स्थिति विचित्र थी। न जाने कैसे यह बात माँ के पास पहुँच गयी। इस बजह से

उनका सारा अन्तर रो पड़ा। मोहन उनकी आँखों का तारा है, उसे वे अपने प्राणों से अधिक चाहती हैं। नित्य भोजन करते समय उनकी आँखें आँसुओं से भर जाती थीं। भोजन करने के बदले वे उँगलियों से खाना हिलोरा करती थीं। यह दृश्य देखकर एक दिन नेबू ने कहा—"माँ, तुम खाना क्यों नहीं खाती। सिर्फ भोजन को हिलोरा करती हो ?"

रुँधे कंठ से माँ ने कहा—"अभी भी तुम लोग मुझे खाने को कहते हो ? जिस माँ के बेटे का पेट बिना भोजन के सूख गया हो, वह माँ कैसे ऐसा सुस्वादु भोजन गले के नीचे उतार सकती है ?"

पत्नी के इस कष्ट को देखकर हेमचन्द्र को भी कष्ट होता था, पर वे कितना समझाते ? आखिर एक दिन चल बसे। इसके बाद मातृस्नेह से कातर माँ की बुलाहट आ गयी। समाचार मिलते ही मोहनानन्द माँ के पास आये। माँ की हालत देखकर अधिक देर तक नहीं ठहरे।

पुनः जब आये तब माँ के बिस्तर के पास बैठकर गीता पाठ करने लगे। लेकिन उन्हें बचाया नहीं जा सका। स्वयं अपने हाथ से माँ को रेशमी चादर ओढ़ाकर मस्तक पर चन्दन लगाया। फूलों की वर्षा कर शव को नीचे लाया गया। अंतिम बार माँ के शव को उन्होंने कंधा लगाया। शव दाह के बाद उस दिन देर तक कीर्त्तन करते रहे। सभी कार्यों में वे निस्पृह रहे। मोहनानन्द में यही सबसे बड़ी विशेषता थी कि वे कष्टों की शिकायत नहीं करते थे। उन्हें कभी क्रोधित या उत्तेजित होते नहीं देखा गया।

एक बार उनसे प्रश्न किया गया कि आप कहाँ तक साधना कर चुके हैं ? उन्होंने कहा—"साधना ? देवघर के आश्रम की धारा के अनुसार अष्टांग योग किया है। दर असल, साधना या क्रम मेरे लिए कुछ नहीं है। उदाहरण के लिए मान लो एक गुफा है जहाँ अभी तक कोई नहीं पहुँचा। हिमालय में ऐसी अनेक गुफाएँ हैं। कोई यात्री वहाँ पहुँचा और उसने सलाई की तीली जलायी तो तुरत अँधेरी गुफा आलोकित हो उठी। उस गुफा में युग-युगान्तर से अँधेरा था, पर रोशनी करने से क्रमशः अंधकार दूर नहीं हुआ। निमिष भर में अंधकार गायब होकर गुफा प्रकाशमान हो गयी। इसी तरह साधना करता रहा।"

वास्तव में मोहनानन्द अपने गुरु से हठयोग, प्राणायाम और राजयोग का ज्ञान बराबर ग्रहण करते रहे। मोहनानन्द के अलावा आश्रम में अन्य कई शिष्य थे, परन्तु जिस लगन और श्रद्धा से मोहनानन्द ने अपने गुरु द्वारा वर्णित क्रियाओं को अपनाया, उसे अन्य शिष्य नहीं अपना सके। आश्रम के पूर्णानन्द ब्रह्मचारी से स्वरोदय-साधना की शिक्षा लेते थे। दोपहर को संतोष आश्रम जाकर वेद-वेदान्त, पाश्चात्य-दर्शन का अध्ययन करते थे। सन् १९२२ से लेकर सन् १९३७ तक लगातार वे कठोर साधना करते रहे। यही वजह है कि प्रिय शिष्य पूर्णानन्द ब्रह्मचारी (जिन्हें सभी छोटे बाबा कहा करते थे) के निधन के पश्चात् बालानन्दजी का सारा ध्यान मोहनानन्द पर केन्द्रित हो गया। अपने विराट आश्रम का सारा भार वे अपने मोहन को देना चाहते थे और मोहनानन्द बार-बार इस पद को लेने से इनकार करते रहे।

मोहनानन्द कीर्त्तन करते, आश्रम में पत्रों का उत्तर देते, हिसाब-किताब रखते। गुरुदेव की सारी सेवाओं के अलावा उन्हें अभ्यागतों, भक्तों तथा ब्रह्मचारियों की सुख-सुविधा का ध्यान रखना पड़ता था। इसके बाद अध्ययन-अध्यापन भी करना पड़ता था। मोहनानन्द हमेशा मौन रहते और निर्जनता को पसन्द करते थे। गुरुदेव से कहते—"मैं इस पद के लिए अयोग्य हूँ। आप यह जिम्मेदारी परमानन्दजी को दें।"

गुरु देव अफसोस करते हुए अपने भक्तों से कहते—"मेरा मोहन बंधन से घबराता है। अरे बेटा, इसमें बंधन कहाँ है ? इससे तेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा। कैसा जमाना आ गया है। कहते हैं बिन माँगे मोती मिले, माँगे मिले न भीख—वही दशा यहाँ है। यह आश्रम कितने सम्मान का है। जबकि सारे लोग मोहन को इस गद्दी पर चाहते हैं।"

आखिर में एक दिन हँसते हुए बोले—"ठीक है। किसको दी जाय, इसका चुनाव हो जाय। जिसके नाम पर वोट ज्यादा होगा, उसी को गद्दी दी जायगी।"

इस गद्दी के दो दावेदार थे—मोहनानन्द तथा परमानन्द। उपस्थित सभी को पर्चियाँ दी गयीं। लोगों ने अपनी पसन्द के उम्मीदवार का नाम लिखकर एक लोटे में डाला। बाद में सभी पर्चियाँ खोलने पर उनमें एक पर्ची को छोड़कर शेष में मोहनानन्दजी का नाम निकला। एक पर्ची में परमानन्द का नाम था जो मोहनानन्द का लिखा था।

बालानन्दजी के स्वर्गवासी होने के बाद उस आश्रम की जिम्मेदारी लेने से बचने के लिए वे इधर-उधर भागते-फिरते रहे। भागते हुए नैमिषारण्य के जंगल में चले गये और वहाँ एक कुटिया में रहने लगे। यह स्थान उन्हें बहुत पसन्द आया।

एक दिन सूक्ष्म रूप में गुरुदेव वहाँ प्रकट हुए और मोहनानन्द को फटकारते हुए बोले—"क्या तुम्हारा निर्माण मैंने इसीलिए किया था ? अपने स्वार्थ के लिए जंगल में आकर तपस्या करोगे ? तुम्हें इस संसार में कितना काम करना है। पापी-तापी लोगों का उद्धार करना है। संतप्त हृदय वालों को शान्ति देना है। तुरत यहाँ से चले जाओ।"

ठीक इसी प्रकार परमहंस रामकृष्ण ने अपने एक शिष्य को कहा था जब वे केवल अपने लिए समाधि लगाते रहे। लाचारी में उन्होंने उस शक्ति को वापस ले लिया था। सुश्री आशालता सिंह जो आगे चलकर मोहनानन्दजी से संन्यास लेने के बाद संन्यासिनी आशापुरी हो गयीं, वे लिखती हैं—"इसके बाद श्री श्री महाराज नीचे उतर आये। सन् १९३७ ई० में गुरुदेव अप्रकट हो गये। मोहनानन्दजी १९३९ ई० में लोगों को दीक्षा देने लगे। गुरुदेव अलक्ष्य रहकर निरन्तर उनकी सहायता कर रहे हैं। लज्जालु, भीरू, मौन प्रकृति का किशोर जो एक दिन अपना जीवन अर्पण करने गुरुदेव के चरणों में आया था, आज वह संसार के विभिन्न देशों में भारतीय संस्कृति-दर्शन और धर्म का प्रचार कर रहा है।

देवघर आश्रम की जिम्मेदारी देने के पीछे एक अन्य कारण भी था। बालानन्दजी का शैव आश्रम था। मोहनानन्दजी वहाँ हरि संकीर्त्तन करते थे। यह देखकर महाराज के अनेक शिष्यों और भक्तों ने आपत्ति की—इस आश्रम में कृष्ण का कीर्त्तन क्यों ?

उत्तर में महाराज ने कहा था—"ज्ञान-कर्म से ही ईश्वर के निकट जाया जाता है, पर भक्ति भाव के अलावा ईश्वर को स्पर्श नहीं किया जा सकता। इसके लिए भक्ति और विश्वास की जरूरत है। यहाँ हरिनाम या शिवनाम में कोई अन्तर नहीं है।"

महाराज को यह समझते देर नहीं लगी कि यह सामान्य आपत्ति आगे चलकर ज्वालामुखी बन जायगी। उनकी सारी साधना ओर तपस्या खाक में मिल जायगी। इस घटना के बाद से वे मोहनानन्द को बराबर कीर्त्तन करने का आदेश देते रहे। स्वयं भी ताली बजाते हुए लोगों के साथ ध्यान कुटीर की परिक्रमा किया करते थे। शैव-आश्रम में हरि कीर्त्तन की धूम मच गयी। अब नित्य कीर्त्तन होने लगा। मीन-मेष करनेवालों के मुहँ में ताला जड़ गया।

इस विष को हमेशा के लिए शान्त करने के लिए बालानन्दजी ने देवघर आश्रम की गद्दी मोहनानन्दजी को देने का निर्णय लिया।

मोहनानन्द ने देवघर आश्रम में गुरु से देवीमंत्र में दीक्षा ली थी। इसके बाद नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करके वे देवी की सेवा में नियुक्त हुए थे। जब मोहनानन्द आश्रम में नहीं रहते थे तब अन्य ब्रह्मचारी पूजा करते थे। बालानन्दजी की शिष्या ने लिखा है—"कौन है वह उज्ज्वल कान्तिवाला युवक जो हरिनाम में मतवाला होकर हरिकीर्त्तन कर रहा है।"

श्री गंगेशचन्द्र चक्रवर्ती लिखते हैं—"गुरु बालानन्द की स्नेहछाया में लम्बे अर्से तक मोहनानन्द की साधना चलती रही। उनकी साधना-धारा वैदिक और तांत्रिक-धारा का मिश्रण है। ब्रह्मचर्याश्रम की अधिष्ठात्री देवी श्री श्री बालेश्वरी देवी हैं—त्रिपुरा सुन्दरी की मूर्ति। गायत्री मूर्ति श्रीमंत्र। आगम धारातंत्र की यहाँ प्रधानता है। मोहनानन्द शक्ति मंत्र में दीक्षित हैं। होम वैदिक मतानुसार करते हैं। हठयोगी शैवाचार्य बालानन्दजी से उन्होंने योग-शिक्षा ली। मोहनानन्द शरीर, इन्द्रियादि, मन-बुद्धि पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर चुके हैं। बाद में धीरे-धीरे उन्हें निज स्वरूप में स्थिति मिल गयी। यही वजह है कि आपके शिष्य उनके निकट बैठकर महाध्यान की स्पर्शानुभूति प्राप्त करते हैं। खुली आँखों की स्थिति में वे सहज समाधि की स्थिति में हैं, इसे समझ पाते हैं।"

मोहनानन्द के भक्तों का दृढ़ विश्वास है कि उनके गुरुदेव वास्तव में श्री श्री गौरांग प्रभु के अवतार हैं, इसलिए वे राधारानी के प्रभाव में मगन रहते हैं। उनका तन नारायण को निवेदित है। वे जो वस्त्र और अलंकार पहनते हैं, वह श्रीकृष्ण के लिए ही।

इस बात की पुष्टि मोहनानन्दजी के एक उपदेश से हो जाती है। उन्होंने कहा था—"वे और जीव अलग नहीं हैं। मगर जीव मलिन हो गया है, इसलिए उससे मिल नहीं पाता। मिलन न होने का दर्द ही राधारानी के शत वर्ष का विरह-अश्रु है।"

मोहनानन्द के इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि उन पर सखी-संप्रदाय का प्रभाव रहा। श्री श्री राधा की भावद्युति के बारे में आपने कहा है—"मैं उन्हें सर्वदा स्मरण करता हूँ। उन्हीं के भावों में अपने भाव को सम्मिलित करने का प्रयत्न करता हूँ।"

सुश्री आशापुरी ने अपने गुरुदेव के इस भाव की समीक्षा करते हुए लिखा है—"ऐसा दृढ़ विश्वास है कि उसी रासेश्वरी राधा की विभूति ही आपकी निजी विभूति है। श्रीमती राधारानी की विभूति विशिष्टता है—वे शक्तिरूपिणी हैं, उनकी तरह सामर्थ्यमयी कोई नहीं है। स्वयं श्रीकृष्ण ने भी श्री राधा के प्रेमरस का आस्वादन करने के बाद अनुभव किया था गौरांग बनकर। मगर वे भी नीरव राधा के भावों को दबा नहीं सके। महाप्रभु गौरांग कृष्ण-प्रेम की उन्मत्तता में कभी कूर्म की तरह आकृति बना लेते थे और कभी अंधिसंधि शिथिल शरीर में उत्तान होकर मूर्च्छित रूप में पड़े रहते थे। किन्तु राधा ? शास्त्रों में है—समस्त ब्रह्माण्ड, वैकुंठ, स्वर्ग-मर्त्य की समस्त वेदना राशि को एकीभूत करने पर भी राधिका के प्रेमोत्थित आनन्द-वेदना का लेश मात्र बराबरी नहीं कर सकता। उनके हृदय में क्या हो रहा है, यह प्रकट नहीं होता। अविकृत शांत मूर्ति। नीरव भाव।"

मोहनानन्द का अपना निजी व्यक्तित्व था। वे कभी चमत्कार के लिए योग विभूति का प्रदर्शन नहीं करते थे। स्वतः जो हो जाता था, उसीसे शिष्य और भक्त प्रभावित होते रहे। उदाहरण के लिए दार्जिलिंग की घटना को लीजिए। वहाँ वे अपने एक भक्त के यहाँ ठहरे

हुए थे। अचानक वहाँ प्रलयंकर भूकंप आया। मोहनानन्दजी जिस भवन में ठहरे हुए थे, उसके चारों ओर के मकान जमीनदोज हो गये। यह भवन भी किसी क्षण गिर सकता है, ऐसी आशंका से सभी त्रस्त हो उठे। मोहनानन्द अपने बन्द कमरे में नित्य की भाँति पूजा-पाठ और होम करने में व्यस्त थे।

गृहस्वामी तथा परिवार के लोग भय से व्याकुल होकर उनका दरवाजा पीटने लगे। दरवाजा बिना खोले ही मोहनानन्दजी ने कहा—"कुछ देर इंतजार करो। होम समाप्त करने के बाद दरवाजा खोल दूँगा।"

होम समाप्त करने के बाद उन्होंने दरवाजा खोला। चेहरे पर निरुद्विग्न भाव विराजमान था जहाँ भय या उद्वेग की छाया तक नहीं थी।

धीरे-धीरे प्रलयंकर दृश्य बदला। अगल-बगल के भवनों की काफी क्षति हुई, लेकिन इस भवन का एक तिनका भी नष्ट नहीं हुआ।

सन् १९५७ ई० में ७०-८० भक्त शिष्यों के साथ मोहनानन्दजी अमरनाथ दर्शन करने जा रहे थे। मार्ग में बरफ से ढकी खाई के समीप तम्बू लगाकर लोग आराम कर रहे थे। शाम होने के बाद तेज तूफानी हवा चलने लगी, साथ ही बरफ गिरने लगी। सरकार की ओर से माइक पर चेतावनी दी जाने लगी—"मौसम विभाग की सूचना के अनुसार हिमपात की सूचना मिली है। सभी यात्रियों को आगाह किया जाता है कि वे पहलगाँव वापस चले जायँ।"

कई सरकारी अधिकारी मोहनानन्दजी के यहाँ आकर इस बात की सूचना दी।

मोहनानन्दजी इस समाचार से जरा भी विचलित नहीं हुए। मधुर मुस्कान के साथ बोले—"कल सूर्योदय अवश्य होगा। बादल छँट जायँगे। घबराने की कोई बात नहीं है।"

कौल साहब जो अधिकारी थे, बोले—"जब आप कह रहे हैं तब ऐसा हो सकता है।"

मोहनानन्दजी ने दृढ़ता पूर्वक कहा—"मैं कह रहा हूँ, कल सभी दुर्योग समाप्त हो जायँगे। बादल छँट जायँगे। सूर्योदय होगा। सभी तीर्थयात्री अमरनाथ दर्शन अवश्य करेंगे।"

दूसरे दिन वही हुआ। कहाँ रात भर प्रलयकारी हिमपात, झंझावात और कहाँ निर्मल प्रभात। प्रातःकाल होम करने के बाद होमकुण्ड को सड़सी से पकड़े मोहनानन्द तम्बू से बाहर आये। बाहर काश्मीर के कई राजकर्मचारी हाथ जोड़े खड़े थे। सभी के भाल पर उन्होंने तिलक लगाया। लोगों ने मोहनानन्दजी के चरण स्पर्श किये।

इसी अमरनाथ यात्रा की दूसरी कहानी है। मोटर से जा रहे थे। अचानक उन्होंने ड्राइवर से कहा —"हम लोग गलत रास्ते से जा रहे हैं। मोटर को उस रास्ते पर मोड़ लो।"

ड्राइवर ने आदेश का पालन किया। काफी दूर जाने पर देखा गया कि कुछ भक्त मार्ग में खड़े हैं। दरअसल वे स्वयं ही गलत रास्ते पर चले आये थे। उनका ख्याल था कि महाराज इसी रास्ते से गुजरेंगे तब उनका दर्शन किया जायगा।

मोहनानन्दजी कार से उतरे। प्रतीक्षा में खड़े सभी भक्तों को उन्होंने तिलक लगाया। इसके बाद उन्होंने ड्राइवर से कहा—"अब गाड़ी वापस मोड़ लो। तुम ठीक रास्ते से ही चल रहे थे। मुझसे गलती हो गयी। देखो, मेरी तरह इन लोगों से गलती हो गयी और गलत रास्ते पर आ गये।"

वहाँ के सभी यात्री भी वापस लौटे तब उन्हें ज्ञात हुआ कि महाराज उनके लिए ही गलत रास्ते पर आये और दर्शन देकर सही रास्ता बता गये।

पटना से कार द्वारा मोहनानन्दजी राँची जा रहे थे। शाम हो गयी थी। वे कार के भीतर आँखें बन्द किये आराम कर रहे थे। अचानक एक मोड़ पर आकर उन्होंने ड्राइवर से कहा—"इस ओर चलो।"

लगभग दस मील आने पर देखा गया कि सड़क के किनारे एक वृद्ध ब्राह्मण हाथ जोड़कर खड़ा है। उसने गाड़ी रोकने का इशारा किया। गाड़ी के रुकते ही वह मोहनानन्दजी के चरणों पर लोट गया। कहा —"कल रात को मुझे स्वप्न में निर्देश मिला कि आज सवेरे एक महापुरुष का आगमन होगा। वे ही तुम्हारे अभीष्ट देव हैं, वे ही तुम्हारे मन को शान्ति देंगे। यही वजह है कि मैं स्नान करने के बाद यहाँ भूखा-प्यासा दर्शन करने के लिए खड़ा हूँ।"

गाड़ी से उतरकर उस भक्त को आशीर्वाद देने के बाद मोहनानन्दजी ने ड्राइवर से कहा—" गलत रास्ते पर आ गये हैं। गाड़ी वापस मोड़ लो।"

इसी प्रकार एक बार भागलपुर से मोहनानन्दजी कुछ लोगों के साथ कलकत्ता जा रहे थे। साथ में 'पाखापिसी' (पँखावाली बुआ) थीं। इनका काम था—समय-असमय में पंखे से हवा करती थीं, इसीलिए इन्हें भक्त मंडली 'पाखापिसी' कहती थी। काफी सम्पन्न थीं, तितिक्षा और अनुराग रहने पर भी इनमें एक सनक थी। मोहनानन्द जब भक्तों के साथ किसी भक्त के यहाँ ठहरते थे तब 'पाखापिसी' किसी की साड़ी तो किसी का साया-ब्लाउज या इस तरह की अन्य सामग्री गायब करके अपनी गठरी में बाँध लेती थी।

उस दिन सबेरे स्नान करने के बाद भक्त मंडली में हलचल मच गयी। अधिकांश लोगों के सामान गायब हो गये थे। रेलगाड़ी में इसी समस्या पर कचकच हो रहा था।

तभी महाराज ने हरि ठाकुर नामक एक पहरेदार से कहा—"जाओ, पाखापिसी की गठरी उठा लाओ। यहाँ लाकर उसे खोलो।"

साहबगंज स्टेशन पर गाड़ी ठहरी। हरि बाबू पाखापिसी की गठरी उठा लाये। उसमें से चोरी गया एक-एक सामान निकालकर लोगों के सामने रखा गया। इसके बाद हरि बाबू को आदेश दिया गया कि लोगों को उनकी चीजें दे दो।

भागलपुर का एक दम्पत्ति मोहनानन्दजी का शिष्य था। अच्छा खाता-पीता परिवार, तरुणी वधू, पति डाक्टर, दो नन्हीं सुकुमार लड़कियाँ। अचानक तरुणी वधू पागल हो गयी। इलाज से ठीक न होने पर उसे राँची स्थित मानसिक अस्पताल में भर्ती किया गया। कुछ दिनों बाद अस्पताल से सूचना आयी कि इस रोगी को हम यहाँ नहीं रख सकते। कृपया तुरत आकर ले जाइये।

वहाँ जाने पर पता चला कि रोगी हमेशा अशान्त रहती है। हर वक्त आत्महत्या करने का प्रयत्न करती है। कभी छत पर से कूद जाती है तो कभी कपड़ों में आग लगाने की कोशिश करती है। आखिर कब तक देखरेख की जाय।

लाचारी में उसे लेकर वापस लौटे। साथ में उसके माँ, बाप तथा पति थे। काफी सावधानी के साथ उसे ला रहे थे। भागलपुर पहुँचने में जब ८-१० मील का रास्ता बाकी

रह गया तब सभी लोग थकावट से चूर होकर आराम करने लगे। जब यहाँ तक शान्त रही तब अब कुछ नहीं होगा। अब तो कुछ ही देर में भागलपुर आ जायगा।

इधर लोग असतर्क हुए और उधर वह गाड़ी का दरवाजा खोल चलती गाड़ी से नीचे कूद गयी। पूरे डिब्बे में हलचल मच गयी। चेन खींची गयी। गाड़ी के रुकते ही लोग दौड़े। कुछ लोगों के अनुरोध करने पर गाड़ी को पीछे ले जाया गया। वहाँ जाने पर देखा गया कि वह एक झाड़ी में बेहोश पड़ी है। उसके सिरहहाने एक वृद्ध लालटेन लेकर पहरा दे रहा है। लोग उस वृद्ध की इस कृपा से अभिभूत हो उठे। उसे पुरस्कार देने के लिए ज्योंही लोग उत्सुक हुए त्योंही उसे गायब पाया।

इस घटना के कुछ दिनों बाद वह लड़की पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गयी। बातचीत के सिलसिले में उसने कहा—"अब मैं बिलकुल ठीक हूँ। पागलपन के दौरान की सारी बातें याद हैं। मैं तो अस्पताल में भी गुरुदेव का कीर्त्तन सुनती रही। यह कीर्त्तन एक मिनट के लिए भी बन्द नहीं हुआ था। जिस दिन मैं रेल से कूदी, जमीन पर नहीं गिरी। महाराज ने अपने हाथों में ले लिया था। इसके बाद एक लालटेन लेकर सिरहाने बैठ गये। मैं बेहोश नहीं थी। एक टक गुरुदेव को देखती रही। जब आप लोग आये तब वे गायब हो गये।"

उससे पूछा गया कि क्या अब भी तुम निरन्तर कीर्त्तन सुन पाती हो? उसने कहा—"ठीक हो जाने के बाद से अब नहीं सुन पाती।"

मोहनानन्दजी की ऐशी-शक्ति देखकर बाबा भोलानन्द गिरि, बाबा सीताराम ओंकारनाथ, माँ आनन्दमयी प्रभावित हुए थे और इन्हें आदर देते थे।

हेमचन्द्र बनर्जी तथा विनयिनी देवी का लाड़ला जिसके बचपन का नाम मनोमोहन था, सौम्य प्रकृति तथा आकर्षक व्यक्तित्व का महापुरुष है। इन्होंने विदेशों में जाकर नाम-महिमा का प्रचार किया है। आपके शिष्य ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, इटली, स्विट्जरलैण्ड तथा अमेरिका में भी हैं। इन सभी शिष्यों को नाम मँत्र जपने का उपदेश देते हैं। जब आप वहाँ जाते हैं तो नाम-कीर्त्तन करते हैं।

जिस प्रकार सिक्खों की बस्ती जहाँ होगी, वहाँ गुरुद्वारा स्थापित होगा, इसी प्रकार बंगाली कालीबाड़ी (कालीजी का मंदिर) का निर्माण करते हैं। अमेरिका के न्यूजर्सी क्षेत्र में वहाँ के बंगालियों ने उपासना के लिए कालीबाड़ी बनाकर श्री श्री मोहनानन्द आश्रम बनाया है। अस्पताल स्थापित किया है और बंगला-शिक्षा का प्रबंध किया है। इसके अलावा अमेरिका के कई शहरों में इस प्रकार के आयोजन चल रहे हैं। देवघर में मोहनानन्दजी ने अपने गुरु के नाम पर अनेक महत्वपूर्ण कार्य करवाया है।

कभी स्वामी विवेकानन्द पाश्चात्य देशों में जाकर भारतीय धर्म, दर्शन और अध्यात्म का प्रचार करते रहे और अब मोहनानन्द जैसे अनेक सन्त विश्व कल्याण के लिए प्रयत्नशील हैं।

●

कुलदानन्द ब्रह्मचारी

कुलदानन्द ब्रह्मचारी

सन् १६०३ या १६०४ की घटना है। गया के आकाश गंगा पहाड़ पर एक युवा संन्यासी कठोर तपस्या में मग्न था। एक ही आसन पर वह हमेशा बैठा रहता। यहाँ तक कि शौच-स्नान के लिए भी आसन त्याग नहीं करता। बिना निद्रा के वह अपनी साधना के जरिये लक्ष्य मार्ग की ओर बढ़ रहा था। अगर कभी कोई तीर्थयात्री यहाँ तक आता और साधु बाबा समझकर कुछ दे देता तो उसे वे खा लेते वर्ना भूखे रह जाते थे।

आकाश गंगा गया का जाग्रत पर्वत है जहाँ कभी प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी, गंभीरनाथ आदि अनेक महात्मा साधना करते रहे। आम तौरपर यहाँ कोई नहीं आता। यही वजह है कि अधिकांश साधु-संत यहाँ आकर साधना करते हैं। इस स्थान की एक खूबी और है। सूनसान ज़गह होने के कारण चोर तथा डाकू यहाँ आकर शरण लेते हैं और माल छिपाकर रखते हैं।

युवा संन्यासी और कोई नहीं, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी का प्रिय शिष्य कुलदानन्द ब्रह्मचारी था। गुरु के आदेश पर वह यहाँ साधना करने चला आया था। इन्हीं दिनों डाकुओं का एक गिरोह भी कहीं से छिपता-छिपाता वहाँ आ गया जहाँ गोस्वामीजी के शिष्य कुलदानन्द ब्रह्मचारी की कुटिया थी। डाकुओं ने देखा कि बाबाजी हमेशा आँखे खोले चुपचाप बैठे सारा दृश्य देखते रहते हैं। कहीं बाबा ने पुलिस को सूचना देकर सब कुछ बता दिया तो बेड़ा गर्क हो जायगा। माल भी हाथ से निकल जायगा और हवालात में सजा काटनी पड़ेगी।

यही सब तीन-पाँच सोचकर उन लोगों ने निश्चय किया कि बाबाजी को यहाँ से खदेड़ देना उचित होगा। षड़यंत्र के अनुसार भोर होने के पहले कुटिया के पास स्थित एक बेल के पेड़ के नीचे लाठी लेकर एक डाकू खड़ा होकर बाबा के निकलने की प्रतीक्षा करने लगा। प्रातःकाल वे शौच के लिए जायँगे तब पीछे से दो-चार लाठी मारते ही सीधे परलोकधाम चले जायँगे।

बाबा की कुटिया बन्द थी। अभी बाबा अपनी कुटिया से बाहर नहीं निकले तभी प्रतीक्षारत डाकू की तेज आवाज गूँज उठी। पहाड़ी बिच्छू ने उसे काट खाया था। यंत्रणा से वह छटपटाने लगा। एकाएक बाबा कुटिया के बाहर आये। उन्हें रहस्य समझते देर नहीं लगी। पास आकर उन्होंने उस डाकू को देखा, फिर कुटिया से दवा लाकर दंश स्थान में लगाया। थोड़ी देर बाद वह डाकू वापस चला गया।

डाकुओं के सरदार लहटन सिंह को इस पर विश्वास नहीं हुआ कि बाबा के चमत्कार के कारण ऐसा हुआ है। उसने इसे मात्र दुर्घटना समझा। लहटन सिंह ने पुनः षड़यंत्र किया। दर असल उसे यह अनुभव हुआ कि बाबाजी पुलिस के गुप्तचर हैं, वर्ना ऐसे निर्जन स्थान में

क्यों रहते हैं जहाँ भोजन-पानी की असुविधा है। सरदार ने अब एक दूसरे सदस्य को भेजा। आगन्तुक डाकू एक पेड़ पर छिपकर बैठ गया।

धीरे-धीरे सबेरा हुआ और बाबा कुटिया से बाहर आये। डाकू उन्हें मारने के लिए पेड़ से उतरने लगा और तभी पुनः एक दुर्घटना हो गयी। पता नहीं, कहाँ से एक अजगर आकर उससे लिपट गया। मृत्यु यंत्रणा से अधीर होकर वह बुरी तरह चिल्लाने लगा। दूर खड़े बाबा यह दृश्य देख रहे थे। वे कमरे के भीतर चले गये। आश्चर्य की बात यह हुई कि इधर बाबा कुटिया में गये और इधर अजगर का बंधन ढीला होता गया। बंधन ढीला होते ही डाकू उछलकर कुटिया की ओर भागा। भीतर बाबा पद्मासन लगाये बैठे थे। उनके चरणों पर मस्तक रखने के बाद उसने अपराध के लिए क्षमा माँगी।

बाबा मुस्कराये और अभय मुद्रा में हाथ उठाकर डाकू को क्षमा कर दिया।

दो बार की असफलताओं से लहटन सिंह को होश नहीं आया। उसने अपने साथियों के इस चमत्कार को कोई चमत्कार नहीं माना। इन दोनों डाकुओं के साथ हुई घटना का प्रभाव गिरोह के अन्य लोगों पर पड़ा। बाकी लोग में से अब कोई भी बाबा के पास जाने को राजी नहीं हुआ। यह देखकर लहटन सिंह ने निश्चय किया कि अब वह स्वयं जाकर बाबा को मारेगा।

इस निश्चय के बाद वह भोर के वक्त तलवार लेकर बाबा की कुटिया के पास आकर उनके बाहर निकलने की प्रतीक्षा करने लगा। दूर खड़े उसके साथी अपने सरदार के साहस तथा कार्यवाही को देखते रहे। अचानक न जाने कहाँ से एक चीता प्रकट हो गया। उसकी हिंस्र आँखें देखते ही लहटन सिंह की घिग्घी बँध गयी। तलवार फेंककर वह बाबा की कुटिया की ओर दौड़ा और चिल्लाने लगा—"बाबा, मेरी रक्षा करो।"

बाबा कुटिया के बाहर आकर उसे जमीन से उठाते हुए बोले—"शान्त हो जाओ। संतों से छेड़छाड़ नहीं करना चाहिए। भगवान् उनकी रक्षा करते हैं। मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो मुझे मारने पर तुले हो। जाओ, भगवान् का भजन करो।"

लहटन सिंह का ख्याल था कि बाबा जादू दिखाते हैं। लेकिन जब अपने साथ घटना हुई तब उसे विश्वास हो गया कि यह भगवान् का चमत्कार है वर्ना बिच्छू, अजगर और चीता तीनों मेरे साथियों को मारने में संकोच न करते।

× × × ×

सन् १८६७ ई० के नवम्बर माह में ढाका जिला के पश्चिमपाड़ा नामक गाँव में इस बाबा का जन्म हुआ था। पिता कमलाकान्त वंद्योपाध्याय और माता थीं, हरसुन्दरी देवी। कमलाकान्त काली के उपासक थे। कुलदाकान्त हरसुन्दरी देवी का चौथा बालक था। कुलदाकान्त अभी जीवन का पाँचवाँ वसन्त देख पाये थे कि पिता चल बसे। परिवार में अवसाद की काली छाया घिर आयी। चार पुत्र और तीन लड़कियों को लेकर हरसुन्दरी देवी कठिनाई से गुजर करती हुई जीवन से संघर्ष करने लगी।

ढाका में उन दिनों ब्राह्मसमाज का व्यापक प्रभाव था। लोग पाश्चात्य प्रभाव में आकर धड़ाधड़ ईसाई बन रहे थे। इसी बीच राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित ब्राह्मसमाज ने दिशाहीन हिन्दुओं को एक नयी दिशा दी। कट्टरवादियों ने इस नये धर्म का विरोध किया।

लेकिन ब्राह्मसमाज का विस्तार तेजी से होता गया। मूर्ति पूजा का विरोध, काली-दुर्गा आदि देवी-देवताओं का बहिष्कार, जाति-बन्धन न मानना जैसे अनेक नियम ब्राह्मसमाज के कर्णाधारों ने बनाये। आचार्य केशवसेन, पण्डित शिवनाथ शास्त्री, ठाकुर परिवार के अधिकांश सदस्य ब्राह्मसमाज के विस्तार में सहयोग कर रहे थे। ढाका ब्राह्मसमाज के कर्णधार विजयकृष्ण गोस्वामी थे। उन दिनों उनका स्थायी निवास ब्राह्मसमाज मंदिर में ही था। जहाँ लोग उपासना के लिए जाते थे।

किशोर मन पर नये आन्दोलन का प्रभाव पड़ता है, फिर जबकि सर्वजन समादृत गोस्वामीजी जैसे महापुरुष इस नगर के प्रमुख प्रचारक हों। कुलदाकान्त तथा उसके साथी भी ब्राह्मसमाज के प्रचारक बने, पर अभी उन्हें ब्राह्मसमाजी बनने के लिए जनेऊ आदि त्यागना बाकी था। कुलदाकान्त के बड़े भाइयों में वरदाकान्त और शारदाकान्त ने भी ब्राह्म-समाज को अपनाया। इन दोनों भाइयों की प्रेरणा से कुलदाकान्त भी ब्राह्मसमाजी बने। वरदाकान्त के उत्साह देने के कारण कुलदाकान्त डायरी लिखने लगे। पाँच भागों में प्रकाशित इनकी डायरियों को पढ़कर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने कहा था—"आप आधुनिक भारतीय साधकों के महानतम प्रतिनिधि हैं।" महात्मागाँधी, विपिनचन्द्र पाल, अश्विनी कुमार दत्त, डॉ० वेणीमाधव बरुआ आदि अनेक विद्वानों ने इनकी डायरियों की प्रशंसा की है।

गाँव की पाठशाला में शिक्षा समाप्त करने के बाद कुलदाकान्त को ढाका शहर भेजा गया। बचपन में एक बार अपने घर विजयकृष्ण गोस्वामी को कुलदाकान्त ने देखा था। उनकी वह छवि स्थायी रूप से उनके हृदय पटल पर जम गयी थी। नगर में आने पर भाइयों के साथ नित्य ब्राह्मसमाज में जाने लगे। गोस्वामीजी के प्रवचनों का किशोर कुलदाकान्त पर व्यापक प्रभाव पड़ा। अन्त में एक दिन उन्होंने घोषणा की कि अमुक दिन अपना जनेऊ त्यागकर ब्राह्मसमाजी बन जाऊँगा। यह घोषणा चारों ओर फैल गयी। लोग उसे डराने धमकाने लगे। आत्मीय स्वजन इस कार्य के विरुद्ध आन्दोलन करने लगे। इधर जितना विरोध हो रहा था, उधर उतना ही उत्साह और निर्भीकता बढ़ती जा रही थी।

एक दिन भोर के वक्त कुलदाकान्त ने एक अजीब स्वप्न देखा। उन्होंने देखा—वह ब्राह्म-मंदिर के दरवाजे के पास खड़े हैं। बाग में पारिजात वृक्ष के पास गोस्वामीजी खड़े हैं। उन्हें देखते ही हाथ के इशारे से पास बुलाने लगे। उस वक्त वे कह रहे थे—"जल्द मेरे पास चले आओ। तुम जो चीज चाहते हो, वही मैं तुमको दूँगा।"

गोस्वामीजी की बातें सुनकर कुलदानन्द आनन्द से विह्वल हो उठे। भगवान् को पाने की कामना से वह उनके चरणों पर गिर पड़े। तभी उनकी नींद खुल गयी। वे देर तक गोस्वामीजी की सौम्य शान्त, स्निग्ध, पवित्र मूर्ति अपनी आँखों के सामने देखते रहे। बार-बार उनकी वाणी कानों में गूँजती रही। उन्हें लगा जैसे अभी गोस्वामीजी बाग में उनकी प्रतीक्षा में खड़े हैं। बिस्तर पर पड़े-पड़े वे रोने लगे —"प्रभु, मैं तुम्हारे मामले में अज्ञानी हूँ। मुझे यहाँ से ले चलो।"

इस प्रार्थना के साथ-साथ उनका हृदय बेहद बेचैन हो उठा। सबेरा होने के पूर्व ही वे ब्राह्ममंदिर की ओर दौड़कर जा पहुँचे। अभी दरवाजा बन्द था। दीवार फाँदकर बाग में कूदने के पश्चात् वे अपने लक्ष्य स्थान की ओर बढ़ चले।

कुछ दूर जाने पर उन्होंने देखा—स्वप्न में जिस स्थान को देखा था, पारिजात वृक्ष के

नीचे गोस्वामीजी वहीं खड़े हैं। मुण्डित मस्तक, गैरिक वसन, पवित्र मूर्ति। हाथ में डण्डा और पैरों में खड़ाऊँ पहने हैं। कुलदा को देखते ही वे नीचे गिरे पारिजात फूलों की ओर इशारा करते हुए बोले —"देखो, कितना सुन्दर लग रहा है। लगता है जैसे दूब पर धान के लावे बिखरे पड़े हैं।"

आज के पहले कुलदानन्द ने कभी गोस्वामीजी को प्रणाम नहीं किया था। हमेशा सिर झुकाकर अभिवादन करता आया था। आज न जाने क्यों व्याकुल होकर रोते हुए उनके चरणों पर गिर पड़े।

गोस्वामीजी उच्चकोटि के साधक थे। बालक कुलदाकान्त क्यों इतना भावातुर हो गया है, इसे वे समझ गये। उन्होंने कहा—"तुम्हें इसके पहले आना चाहिए था। अब समय उत्तीर्ण हो गया है। अभी कुछ दिनों तक इंतजार करो।"

कुलदा ने कहा—"मैं इतना व्याकुल हूँ कि अभी साधन लेना चाहता हूँ।"

गोस्वामीजी ने कहा—"यह अच्छी बात है। यही मौका है। इसी उम्र में साधन लेना चाहिए। अभी मैं पछाँह जा रहा हूँ। तुम लोगों की छुट्टी होनेवाली है। घर होकर वापस आने पर साधन होगा। साधन लेने पर कम से कम पन्द्रह दिनों तक तुम्हें मेरे पास रहना पड़ेगा।"

छुट्टियाँ समाप्त होने के बाद कुलदानन्द ढाका आये और कालेज में पढ़ने लगे। अगहन में जब गोस्वामीजी आये तब साधन के प्रसंग पर उन्होंने कहा—"साधन लेनेवालों को स्वतंत्र रूप से नहीं रहना पड़ता। जिसका जो कार्य है, उसे करना पड़ेगा। तुम छात्र हो, तुम्हें बराबर अध्ययन करते रहना पड़ेगा।"

कुलदानन्द ने इस शर्त को स्वीकार कर लिया। गोस्वामीजी ने पुनः कहा—"यह अच्छी बात है। अब एक बात और है। अपने अभिभावकों से तुम्हें अनुमति लेनी पड़ेगी। बिना उनकी अनुमति प्राप्त हुए साधन नहीं दिया जा सकता। अगर एक सौ वर्ष का वृद्ध भी साधन लेना चाहे तो उसे भी इसी नियम का पालन करना पड़ेगा।"

यह बात सुनकर कुलदानन्द की हालत पतली हो गयी। उन्होंने कहा—"मेरे अभिभावक बड़े भाई हैं।"

"उन्हीं से आज्ञा ले लो।"

एक दिन स्कूल से वापस लौटने पर छोटे भाई ने कहा—"मझले दादा (वरदाकान्त वंद्योपाध्याय) ढाका आये हैं।" यह बात सुनकर कुलदानन्द भयभीत हो उठे। उनसे मुलाकात होते ही वे काफी बिगड़े। यहाँ तक कि चप्पल निकालकर मारने को तैयार हो गये। तभी मझली भाभी नें बाधा डाली।

मझले भैया ने कहा—"भविष्य में कभी 'योग' शब्द जबान पर मत लाना, वर्ना जूतों से पीटकर सीधा कर दूँगा।"

आधे घण्टे तक अपमानित होने के बाद कुलदानन्द ने गोस्वामीजी के पास आकर उन्हें सारा समाचार सुनाया। सारी बातें सुनने के बाद गोस्वामीजी ने कहा—"तुम्हारे बड़े भाई जब मौजूद हैं तब उनसे अनुमति ले लो।"

"वे फैजाबाद में असिस्टेण्ट सर्जन हैं।"

गोस्वामीजी ने कहा—"उन्हें पत्र लिखो और उनसे अनुमति प्राप्त कर लो। वे तुम्हें अनुमति देंगे। घबड़ाने की कोई बात नहीं है।"

मायूस होकर कुलदानन्द घर आये और गोस्वामीजी के निर्देशानुसार बड़े भाई को पत्र लिखने पर उन्होंने अनुमति दे दीं। साथ ही यह भी लिखा कि जब हम लोगों की माँ मौजूद हैं तब सबसे पहले उनसे अनुमति लेनी चाहिए।

इस समाचार को सुनकर गोस्वामीजी ने कहा—"इस पत्र को सम्हालकर रखना। अब माँ से अनुमति ले लो। उन्हें यह बताने की जरूरत नहीं है कि तुम दीक्षा ले रहे हो। उनसे कहना कि साधन लूँगा। तब वे आपत्ति नहीं करेंगी।"

अब माँ को राजी करने की जिम्मेदारी आ गयी। शहर से गाँव जाने के लिए मौका नहीं मिल रहा था। अचानक एक दिन वह अवसर मिला। छोटे भाई ने कुछ सामान देते हुए गाँव पहुँचाने का अनुरोध किया। कुलदानन्द तुरत गाँव रवाना हो गये। गाँव आकर उन्होंने गोस्वामीजी के कथनानुसार साधन लेने की चर्चा की। माँ ने कहा—"यह तो खुशी की बात है, पर जनेऊ मत निकालना। जनेऊ फेंककर ब्राह्म होने की जरूरत नहीं है।"

माँ के चरणों पर सिर रखते हुए कहा—"नहीं माँ, मैं जनेऊ नहीं फेकूँगा। अब तुम मुझे आशीर्वाद दो।"

माँ ने कहा—"मैंने कोई धर्म-कर्म किया नहीं। तू करेगा तो मना क्यों करूँगी ? लेकिन जब तक मैं जीवित हूँ, तबतक घर से भागना नहीं। गृहस्थी में रहकर धर्म-कर्म कर। भगवान् तेरी इच्छा पूरी करेंगे। मैं तुझे हृदय से आशीर्वाद देती हूँ।"

माँ से अनुमति मिलते ही कुलदानन्द शहर चले आये। उन्होंने सारा समाचार गोस्वामीजी को दिया। दिन निश्चित करके उन्हें दीक्षा दी गयी। दीक्षा देने के बाद गोस्वामीजी ने कहा—"सुबह-शाम दोनों वक्त इसे जपते रहना।"

अब नित्य गोस्वामीजी के यहाँ वह जाने लगा। गोस्वामीजी ने उसे प्राणायाम और नाम जपने का उपदेश दिया। वह देखता कि भक्तों की बैठक में अक्सर जब गोस्वामीजी को भाव-समाधि हो जाती तब वे 'जय वारिदी के ब्रह्मचारी की ! जय रामकृष्ण परमहंस की ! जय माताजी, जय गुरुदेव !' कहते-कहते समाधिस्थ हो जाते थे। लेकिन उसे कुछ नहीं होता। उसे वित्य आते देख गोस्वामीजी ने कहा —"तुम्हें रोज यहाँ आने की जरूरत नहीं है। सप्ताह में एक दिन आना। अब पढ़ने-लिखने में मन लगाओ।"

छोटे भइया के एक मित्र की माँ मर गयी। यह समाचार उसे बताया नहीं गया। कुलदानन्द उसे लेकर उसके घर आये। यहाँ आने पर जब उसे ज्ञात हुआ कि उसकी माँ मर गयी है तब वह रोते-रोते बेहोश हो गया।

अचानक कुलदानन्द ने सोचा कि अगर मेरी माँ इस तरह मर जायें तो मैं क्या करूँगा ? माँ बीमार हैं। माँ की बात सोचकर उन्हें काफी घबड़ाहट महसूस हुई। वे अपनी माँ को देखने के लिए तुरत रवाना हो गये। पूरे पाँच क्रोश पैदल चलकर आने के बाद जब घर आये तो देखा—मुहल्ले के सभी लोग उसके घर भीड़ लगाये हुए हैं।

कुलदानन्द को देखते ही कई लोगों ने कहा—"माँ जा रही हैं। तू आ गया, अच्छा हुआ। अब जाकर आखिरी बार माँ का दर्शन कर ले।"

सारा शरीर थकावट से चूर-चूर हो गया था । फिर यह स्थिति देखकर वह रो पड़े । मन ही मन कहने लगे—अब अगर इस वक्त गोस्वामीजी कृपा करें तभी माँ बच सकती हैं, वर्ना अब कोई आशा नहीं है । इन्हीं बातों का चिन्तन करते हुए पुनः मन ही मन वह गोस्वामीजी से प्रार्थना करने लगा ।

ठीक इसी समय एक भतीजी को कै की बीमारी हो गयी । डाक्टर आये और बोले—"माँ की आशा छोड़ो । तुम्हारी भतीजी बच सकती है ।" इतना कहने के बाद उन्होंने दवाओं का पुर्जा दिया ।

गाँव में दवा नहीं मिली । उसे शहर आना पड़ा । दवा लेने के बाद कुलदानन्द गोस्वामीजी के पास आये । उसे देखते ही वे चौंककर बोले—"क्या घर नहीं गये । यहाँ कैसे ? अच्छा तो घर से आ रहे हो ? कैसी हालत है ?"

कुलदानन्द ने कहा—"माँ और एक भतीजी को हैजा हो गया है ।"

"दवा लेने आये हो ?"

"जी हाँ ।"

"तब देर करने की जरूरत नहीं । क्या भतीजी बहुत छोटी है ?"

"हाँ, सात-आठ साल की होगी ।"

यह बाद सुनकर गोस्वामीजी 'आहा' कहा और फिर आँखें मूँद ली । कुलदा ने माँ के स्वास्थ्य के बारे में प्रार्थना की तो बोले—"माँ के लिए परेशान होने की जरूरत नहीं है । दवा लेकर जाओ । इससे गाँववालों का भला होगा ।"

गोस्वामीजी के यहाँ मन उद्विग्न रहने के कारण कुलदानन्द अन्य बातें सोच नहीं सके, मगर रास्ते में सोचने लगे कि गोस्वामीजी को कैसे पता लगा कि मैं घर छोड़कर आया हूँ । फिर क्या हालत है ? यह प्रश्न क्यों पूछा । लड़की के बारे में जिस ढंग से उन्होंने बातें की, इससे लगता है कि शायद अब तक चल बसी होगी । अब दवा उसके लिए बेकार है । गाँव का अन्य कोई लाभ उठायेगा । तो क्या माँ अच्छी हो जायँगी ? यही सब सोचते-सोचते जब वह घर आया तो पता लगा कि भतीजी को बचाया नहीं जा सका । माँ की हालत अच्छी है ।

धीरे-धीरे माँ ठीक हो गयीं । अब कुलदा ने सोचा—क्या गोस्वामीजी ज्योतिष जानते हैं ? ज्योतिष में भी गणना करनी पड़ती है । पर उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया । क्या यह उनकी योग-शक्ति का प्रभाव है ? इन प्रश्नों को वह सुलझा नहीं सका । जब माँ पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गयीं तब वह पुनः स्कूल चला आया ।

एक अर्से के बाद गोस्वामीजी दरभंगा से लौटे । उनके आगमन पर भक्तों की भीड़ जुटने लगी । इसी बीच एक घटना हो गयी । इस घटना के कारण कुलदा को ज्ञात हुआ कि संतों में अलौकिक शक्ति रहती है । गोस्वामीजी से मुलाकात करनेवालों में एक संत आये थे जो रह-रहकर गाँजा पी रहे थे । इस वजह से अन्य भक्तों को कष्ट हो रहा था, पर गोस्वामीजी बड़े आदर और श्रद्धा के साथ उनसे बातचीत कर रहे थे ।

कुलदानन्द को जब यह ज्ञात हुआ कि एक गँजेड़ी के कारण भक्तों को कष्ट हो रहा है

तो उत्तेजित हो उठे। यह भी पता चला कि उस गँजेड़ी संत को गोस्वामीजी के शिष्य ही गाँजा दे रहे हैं। गँजेड़ी संत को कोई भी मना करने का साहस नहीं कर पा रहा है।

कुलदानन्द ने गोस्वामीजी के भक्तों से कहा—"आप लोग इंतजार करिये। मैं भीतर जा रहा हूँ। उन्हें गाँजा पीते देखने पर तुरन्त ब्राह्म-मंदिर से निकाल दूँगा।"

इतना कहने के बाद बड़े गर्व के साथ भीतर गया। सीढ़ियों पर चढ़ते समय धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। पैरों में मोच आ गयी। नीचे गिरकर वह कराहने लगा। लोग उसे गोद में उठाकर घर ले आये। तीन-चार दिनों के बाद वह स्वस्थ हुआ तब उसे पता चला कि संतजी बहुत पहुँचे हुए महात्मा थे। ऐसे संत लोकालय में शीघ्र नहीं आते। ऐसे लोगों का दर्शन सौभाग्य से होता है। अब उन्हें समझते देर नहीं लगी कि उनकी उद्दंडता के लिए ही उन्हें यह सजा मिली है।

गोस्वामीजी अब उन्हें प्राणायाम के नियम कुंभक आदि बताने लगे। यहाँ तक कि अपने एक शिष्य पंडित श्यामाकान्त को यह कार्य सिखाने की जिम्मेदारी गोस्वामीजी ने दे दी। कैसे प्राणवायु को आकर्षित करते हुए मूल में स्थापन करना पड़ेगा। कैसे ऊर्ध्व, अधः सभी इन्द्रियों के द्वारों के छिद्रों को बन्द कर श्वास, प्रश्वास और साधारण वायु की अन्तर्गति को पूर्ण रूप से रोकते हुए, अपना चित्त नाम में संयुक्त करना पड़ेगा और इसे दृढ़तापूर्वक पूरी शक्ति के साथ करना पड़ेगा। इस प्रक्रिया से अनुष्ठान के साथ-साथ बाहरी स्मृतियाँ विलुप्त हो जाती हैं। केवल नाम का अस्तित्व रह जाता है।

निरन्तर पंडित श्यामाकान्त तथा गोस्वामीजी के बताये नियमों के अनुसार वह नाम का अभ्यास करता रहा। एक दिन उसने अचानक देखा कि उसके सामने एक अद्भुत ज्योति चमक उठी। देखते-देखते वह ज्योति धीरे-धीरे उज्ज्वल होती गयी और उसमें से बिजली की तरह किरणें विकीर्ण होकर चारों ओर प्रकाश देने लगीं। अपने ललाट से निकली इस विचित्र ज्योति को देखकर वह बेहोश होकर गिर पड़ा।

इसके बाद ढाका जाकर उसने इस घटना का जिक्र पंडित श्यामाकान्त से किया। पंडितजी ने कहा —"वह दोनों भौं के बीच में स्थित दिव्यचक्षु है। अगर वह प्रकाशित रहें तो विश्व ब्रह्माण्ड दिव्यलोक मधुमय लगता है। तब जीवन-मरण, यहलोक, परलोक सब एक-सा लगता है। गुरु की कृपा से ही यह स्थिति प्राप्त होती है। उन्हीं की इच्छा से यह स्थायी होती है।"

अप्रैल, सन् १८८८ ई० में कुलदाकान्त ने जो दृश्य देखा, वह उसके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना थी। घटना यों है—शनिवार का दिन था। ढाका के पश्चिम दिशा में, आसमान पर एक टुकड़ा काला बादल दिखाई दिया। नवाब गनी मियाँ के घर के दक्षिण से अचानक चक्रवात उठा जिससे बूढ़ी गंगा का पानी आलोड़ित होने लगा। देखते ही देखते नदी में हाथी के सूँड़ जैसा जलस्तंभ ऊपर उठकर बादलों में समा गया। इसके बाद उस बादल से अनेक अग्नि गोले नीचे गिरने लगे। आवाज इस तरह निकलने लगी जैसे २०-२५ इंजन एक साथ चल रहे हों। सारा शहर काँप उठा।

ठीक इसी समय गोस्वामीजी अपने आसन से उठकर बाहर आये। रूँधे स्वर में काली और महावीर का स्तव पाठ करने लगे। उन्होंने देखा—काली और महावीर भीषण आकार में शून्य में नृत्य करने लगे। यह देखकर हाथ जोड़ते हुए गोस्वामीजी कंपित स्वर में प्रार्थना

करने लगे। इस तरह दोनों देवताओं को वे संतुष्ट करते रहे। यह उपद्रव केवल २-३ मिनट तक होता रहा। लेकिन यह जो अस्वाभाविक घटना हुई, वह कैसे और क्यों हुई, इसका पता नहीं चला। इस दुर्घटना के कारण ढाका तथा विक्रमपुर में जो घटनाएँ हुईं, वह यों हैं—

१. बूढ़ी गंगा के उस पार से एक बुढ़िया को, तूफान उड़ाकर शहर के बड़े-बड़े मकानों को पार करते हुए नार्मल स्कूल की छत पर स्थित एक कमरे में ले आया था। ६५ वर्ष की वृद्धा को कहीं भी चोट नहीं लगी।

२. 'ढाका प्रकाश' प्रेस का एक टेबुल २०० कदम की दूरी पर स्थित एक मकान में चला आया। टेबुल जिस कमरे में था, वहाँ से निकालने के लिए ८-१० व्यक्तियों की जरूरत होती और दरवाजे से बाहर निकालने के लिए तिर्छा करना पड़ता।

३. एक गगरी जिसमें लाई थी, ढक्कन सहित दूसरे के घर पर हाजिर। मजे की बात गगरी और ढक्कन सही सलामत थे।

४. एक बड़े मकान का काफी बड़ा हिस्सा गायब हो गया, पर वहीं एक आधा सूखे हुए गुलाब के पौधे से एक पत्ती भी नीचे गिरी नहीं।

५. एक महिला का केवल एक स्तन ऐसे गायब हो गया जैसे किसी ने तेज तलवार से काट दिया हो।

इसी तरह की अूक्ष्भुत घटनाएँ हुई थीं जिसके प्रत्यक्षदर्शी कुलदाकान्त थे और इन घटनाओं को उन्होंने डायरी में लिख रखा है।[1]

गोस्वामीजी की जबानी बार-बार बारिदी के ब्रह्मचारी की प्रशंसा सुनकर कुलदा की उत्सुकता बढ़ गयी। गोस्वामीजी ने यह भी बताया कि वे मेरे प्रपितामह के छोटे भाई हैं। भारत के विभिन्न अंचलों, पहाड़ों और जंगलों में घूम चुका हूँ, इस प्रकार के उच्चस्तर वाले महापुरुष का[2] दर्शन नहीं मिला। उनकी आँखों की पलक नहीं झपकती है। अगर कोई उनकी आँखों की ओर पाँच मिनट देखता रहे तो वह बेहोश हो जायगा। हिमालय तथा तिब्बत से आज भी लोग रात को इनके पास योग-शिक्षा के लिए आते हैं। यही वजह है कि रात को कोई उनके निकट नहीं जाता। शाम के बाद उनके कमरे का दरवाजा बन्द हो जाता है।

इन सारी बातों को सुनने के बाद कुलदा ने कहा—"मैं एक बार ब्रह्मचारीजी का दर्शन करने जाना चाहता हूँ।"

गोस्वामीजी ने कहा—"जरूर जाओ। लेकिन एक बात याद रखो कि वहाँ जाकर उनसे कोई सवाल मत पूछना। चुपचाप दूर बैठे रहना। तुम्हारे लिए जो आवश्यक है, वह तुम्हें अपने आप बुलाकर बता देंगे।"

दूसरे दिन चारों भाई यात्रा पर निकले। जिस समय ये लोग वारिदी गाँव पहुँचे, उस वक्त शाम हो गयी थी। कुलदा को मालूम था कि शाम के वक्त ब्रह्मचारीजी के कमरे का दरवाजा बन्द हो जाता है, इसलिए वह नाव पर रह गया। बाकी तीनों भाई ब्रह्मचारीजी के दर्शन के लिए व्याकुल होकर चल पड़े। जब वे कुटिया के पास आये तो देखा—द्वार खुला है। यह देखकर तीनों भाई प्रसन्न हो उठे।

---

१. श्री श्री सद्गुरु प्रसंग, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ७५-७६
२. देखिये, भारत के महान् योगी, प्रथम खण्ड।

तभी भीतर से ब्रह्मचारीजी बाहर निकले और बोले—"तुम लोगों के आने की प्रतीक्षा में अभी तक दरवाजा बन्द नहीं किया। अब तुम लोग वापस चले जाओ। कल सुबह मिलना।" इतना कहने के बाद उन्होंने दरवाजा बन्द कर लिया।

दूसरे दिन चारों भाई ब्रह्मचारी के आश्रम पहुँचे। बरामदे पर जाते ही उन्होंने सबसे बड़े भाई का हाथ पकड़कर अपने आसन की बगल में बैठाते हुए कहा—"तुम तो महापुरुष हो। छद्मवेष में यहाँ आये हो।"

"मैं तो हमेशा इसी पोशाक में रहता हूँ।"

बाद में काफी देर तक बातें होती रही। बड़े भाई हरकान्त की बातें सुनकर ब्रह्मचारी ने कहा —"मैं साफ देख रहा हूँ कि तुम्हारा कर्म समाप्त हो गया है। तुम आये हो मेरा दर्शन करने ? दस साल बाद नित्य सैकड़ों लोग तुम्हारा दर्शन करेंगे।"

हरकान्त ने पूछा—"यथार्थ कल्याण कैसे होगा, इस पर प्रकाश डालें तो बड़ी कृपा होगी।"

ब्रह्मचारी ने कहा—"फिर तुम गोस्वामी से दीक्षा ले लो। सत्यवस्तु उसी के पास है। उसके आश्रय में जाने पर तुम्हारा भला होगा।"

मझले भैया के प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा—"तुम खूब उपार्जन करो और सारी रकम निर्लिप्त भाव से लोगों की सेवा में खर्च करो।"

सहसा कुलदानन्द को बुलाकर उन्होंने पूछा—"क्यों रे, तू क्यों आया है ? क्या देवता देखने आया है ?"

"नहीं।"

ब्रह्मचारीजी ने मुक्का दिखाते हुए कहा—"नहीं कह रहा है। इस मुक्के से तेरा सिर तोड़ दूँगा। चुप मत रह, जबान खोल। तू तो नित्य डायरी लिखता है ? उसमें यह लिख रखना—विलासिता छोड़ दे। विद्या नहीं होगी। मेरी बातों का अर्थ समझा ?"

कुलदा को इस बात पर आश्चर्य हुआ कि मैं नित्य डायरी लिखता हूँ, इस बात का पता इन्हें कैसे चला ?

ब्रह्मचारी ने कहा—"विलासिता मत करना, पोशाक मत पहनना। अपने तन पर एक धोती और चद्दर रखना। जूता के बदले चप्पल का प्रयोग करना। जब मन बहुत खराब हो जाय तब यहाँ चले आना। उतावला होने की जरूरत नहीं, तुझे सब मिलेगा। आखिर तू यहाँ चुपचाप क्यों बैठा हे। बोलता क्यों नहीं ?"

कुलदा ने कहा—"गोस्वामीजी ने कहा है कि भविष्य के लिए मुझे जो जरूरत होगी, वह सब आप बता देंगे। मुझे प्रश्न करने के लिए मना किया गया है, इसलिए चुप हूँ।"

ब्रह्मचारी ने कहा—"तुझे अपने मन की बात मिल गयी न ?"

"जी हाँ।"

"तब इन बातों को अपनी डायरी में लिख लेना। तेरी छाती में जो दर्द है, यह प्रारब्ध का दोष है। अगर मैं हाथ फेर दूँ तो ठीक हो सकता है, पर फिर कब भोगना पड़ेगा, कहा नहीं जा सकता। दवा आदि मत खाना। जब अधिक तकलीफ हो तब ताजी मिट्टी लेकर कलेजे पर मल देना, आराम मिलेगा।"

दोपहर के भोजन के पश्चात् पुनः जब लोग बैठे तब एक प्रश्न के उत्तर में बाबा लोकनाथ ब्रह्मचारी अपनी जीवन कहानी सुनाने लगे—"शान्तिपुर के विशुद्ध अद्वैतवंश में मेरा जन्म हुआ। गोस्वामी महाशय के प्रपितामह मेरे सहोदर थे। हम लोग चार भाई थे, शायद इसीलिए उपनयन के बाद मुझे एक षटचक्रभेदी संन्यासी को सौंप दिया गया। वे मुझे दीक्षा देने के बाद साधन शिक्षा देने लगे। अपने साथ अनेक तीर्थस्थानों में दर्शन कराते रहे। जवानी के दिन थे। मैं रिपुओं की उत्तेजना से छटपटाने लगा। यह देखकर एक पहाड़ी गाँव में स्थित एक कुटिया में रहने लगा। पास ही एक विधवा सुन्दरी युवती रहती थी। गुरुदेव नित्य भिक्षा में अन्न लाकर पकाते और मुझे खिलाते थे। मैं दिन भर अकेला उस युवती के साथ मनोविनोद किया करता था। इस प्रकार तीन साल गुजर जाने पर एक दिन मन ने कहा—तुम यह क्या कर रहे हो ? क्या यही सब करने के लिए माँ-बाप, घर-द्वार छोड़कर महापुरुष के साथ आये हो ? यह विचार मन में उठते ही मैंने गुरुदेव से आग्रह किया कि हमें यह स्थान त्याग देना चाहिए। गुरुदेव बराबर टालते गये। कभी कल, तो कभी बीमार हूँ, कहते रहे। आखिर एक दिन क्रोध में आकर मैं उन्हें मुंगदर लेकर मारने के लिए बढ़ा। तुरत वे भाग गये। बाद में बोले—"अब ठीक हुआ है। चलो, चला जाय।"

"वहाँ से रवाना होने के बाद मार्ग में मैंने गुरुदेव से पूछा—"जब तक मैं विनती करता रहा, आप यह स्थान छोड़ने को राजी नहीं हुए और मारने के लिए तैयार हुआ तो तुरत चल पड़े। आखिर इसका क्या रहस्य है ?" उन्होंने कहा—"अब तक तुमने ठीक से कहा नहीं था। तुम भोग को छोड़ चुके थे, पर भोग ने तुम्हें नहीं छोड़ा था।"

"इसके बाद सुनसान पहाड़ी स्थान पर गुरुदेव मुझे पैंतीस वर्ष हठयोग की शिक्षा देते रहे। बाद में परीक्षा लेने के पश्चात् राजयोग की शिक्षा देने लगे। काफी दिनों तक राजयोग सिखाया गया। इसके बाद एक दिन मेरे गुरुदेव अन्तर्धान हो गये।"

कुलदा ने पूछा—"सुना है कि आप उदयाचल तक गये थे ?"

ब्रह्मचारी ने कहा—"प्रयत्न किया था, पर जा नहीं सका। इस यात्रा में मेरे साथ तीन अन्य साथी थे। हितलाल मिश्र (तैलंग स्वामी), वेणीमाधव गंगोपाध्याय नामक एक महात्मा और अब्दुल गफूर नामक एक मुसलमान फकीर। हम लोग पैदल ही जा रहे थे। हिमालय से उत्तर बराबर आगे बढ़ते गये। कन्द और फल हमारा आहार था। लगातार बरफ पर चलने के कारण हमारे शरीर की चमड़ी सूख गयी थी। बाद में साँप के केंचुल की तरह वह अपने आप झर गयी। सारा शरीर दूध की तरह सफेद हो गया। इसके बाद हमें फिर कभी बरफ पर सर्दी महसूस नहीं हुई। जहाँ दिन छह माह और रात छह माह होती है, उससे भी आगे हम गये थे। वहाँ यहाँ की तरह दिन-रात, चन्द्र-सूर्य कुछ भी नहीं था।"

प्रश्न– "कब तक आप वहाँ थे ?"

उत्तर– "जहाँ कुछ भी नहीं है, वहाँ समय का ज्ञान कैसे होता ? इतनी जानकारी है कि काफी समय तक था।"

प्रश्न– "जब चन्द्र-सूर्य नहीं था तब आप मार्ग कैसे देख पाते थे ?"

उत्तर– "ऐसे स्थानों पर चलते समय आँखों के उपादान अन्य प्रकार के हो गये थे। चन्द्र-सूर्य के न रहने पर भी हम सब कुछ देख पा रहे थे।"

प्रश्न– “क्या उदयाचल तक आप गये थे ?”

उत्तर– “हम लोग काफी ऊपर गये थे। वेणीमाधव अधिक दूर तक चढ़ नहीं सका। अब्दुल गफूर काफी दूर जाकर वापस लौट आया। मेरी भी वही हालत हुई। हितलाल मिश्र कहाँ तक गये थे, पता नहीं। लेकिन उन्हें भी वापस आना पड़ा था। ऊपर हवा काफी हल्की है। हवा में तरंग नहीं। श्वास लेने में कठिनाई हो रही थी। सुना था कि हितलाल मिश्र हम लोगों से आगे काफी दूर जाकर हवा के अभाव में लौट आया था।”

प्रश्न– “इन दिनों वे महात्मा कहाँ हैं ?”

उत्तर– “अब्दुल गफूर मक्का चले गये। वे अभी तक जीवित हैं। वेणीमाधव चन्द्रनाथ पहाड़ पर चला गया। मैं नीचे आकर दो बार मक्का एशिया तथा योरप का चक्कर लगाकर वापस आ गया।”

इसके बाद अन्य प्रकार की बातें हुई। बिदा लेते समय हरकान्त और वरदाकान्त से उन्होंने कहा कि तुम दोनों गोस्वामी से दीक्षा ले लेना। इससे तुम लोगों का भला होगा।

कुछ दिनों से लगातार कुलदा साधन-भजन करता जा रहा है। भोर के वक्त छत पर जाकर पूर्व की ओर मुँह करके बैठ जाता है। सर्वप्रथम श्री गुरुदेव को स्मरण-प्रणाम करने के बाद गुरु मंत्र का एक हजार जाप करता है। इसके बाद एक घण्टे प्राणायाम, फिर इष्टनाम जपता है। कुछ दिनों बाद उसने अनुभव किया कि उसका ललाट सहसा काँपता है और एक अपूर्व ज्योति प्रकट होती है। इस अपूर्व ज्योति का वर्णन किसी से नहीं कर पाता। बाद में यह ज्योति अहरह उसकी आँखों के सामने नाचने लगी। आँखें चाहे बन्द रहें या खुली रहें, प्रति क्षण वह ज्योति आँखों के सामने प्रस्फुटित होने लगती है। चन्द्र किरणों की तरह इस ज्योति की रश्मि शीतल, शुभ्र है, बिजली की तरह उज्ज्वल और सबसे मजेदार बात यह है कि अति मनोहर और निर्मल है।

लेकिन यही ज्योति-दर्शन एक पाप के कारण सहसा गायब हो गयी। अपने इस अपराध के लिए वह लगातार कई दिनों तक मणिहारा सर्प की तरह छटपटाता रहा। घटना यों है—

शूद्र जाति की एक विधवा युवती पड़ोस में रहती थी जो आफत-विपद में कुलदा की सहायता करने के कारण घनिष्ठ हो गयी थी। इन दिनों वह अपनी जीविका निर्वाह के लिए विशेष रूप से चिन्तित हो उठी थी और अपने को असुरक्षित समझ रही थी। एक दिन कुलदा को घर पर बुलाकर उसने अपना दुखड़ा सुनाया। उसकी हालत देखकर कुलदा को दया आ गयी। उसने उसकी सुरक्षा की व्यवस्था कर दी। कुछ दिनों बाद एक दिन विधवा ने कुलदा को अपने यहाँ बुलाया। घर पर अकेली थी। उसने कुलदा का हाथ पकड़कर बिस्तर पर बैठाया। कुछ देर बाद अस्वाभाविक रूप से प्यार जताने लगी। उसके काँपते ओठ, लाल चेहरा और लोलुप दृष्टि के कारण कुलदा भी उत्तेजित हो उठा। ठीक इसी समय उसके ललाट की वह ज्योति काँपने लगी। वह तुरत बिस्तर से उठ खड़ा हुआ। महिला के वस्त्र पर 'अशुचि' के लक्षण देखकर उसने पूछा—“यह क्या ?” युवती ने उसका उत्तर दिया। उसे समझते देर नहीं लगी कि उसका सर्वनाश हो गया। नाम मात्र पतन के कारण उसका स्थिर ज्योतिमण्डल अन्तर्हित हो गया। जैसा कर्म वैसा फल मिल गया। अब क्या होगा ?

इस बीच पता चला कि गोस्वामीजी ढाका आ रहे हैं। उन्हें अपना मुँह कैसे दिखायेगा ? उनके स्वागत के लिए अपने गुरु भाइयों के साथ वह भी स्टेशन पर हाजिर हो गया, पर संकोच के कारण पीछे खड़ा था। उसे अनुभव हुआ कि गुरुदेव को मेरे पतन का कारण ज्ञात हो जायगा। इधर इसी तरह की घटना एक और गुरु भाई के साथ हो गयी थी। वह लज्जावश स्टेशन नहीं आया था। पड़ोस के लोगों ने उसकी बदनामी फैला दी थी। वह चुपचाप अपने घर में अनुतप्त जीवन व्यतीत कर रहा था।

गाड़ी के रुकते ही गोस्वामीजी ने सबसे पहले कुलदा को बुलाकर कहा—"तुम आ गये हो ? अच्छी बात है। मैं यहाँ नहीं उतरूँगा। अगले स्टेशन पर उतरूँगा।"

शिष्य लोग समझ नहीं पाये कि आखिर इस स्टेशन पर न उतरकर वे यहाँ से एक घण्टा दूर वाले स्टेशन पर क्यों उतरेंगे। गाड़ी छूटने के पहले एक बार कुलदा की ओर उन्होंने देखा और मुस्करा उठे। कुलदा को इससे अपार शान्ति मिली।

दोलाईगंज स्टेशन से गाड़ी छूट गयी। सभी शिष्य अगले स्टेशन पर पहुँचे। गाड़ी से उतरकर गोस्वामी सीधे उस गुरु भाई के घर गये जो कुलदा की तरह अनुतप्त था। दरवाजा खोलकर ज्योंही वह बाहर आया त्योंही उसे उन्होंने छाती से लगा लिया। गोस्वामीजी ने कहा—"तुम मेरे यहाँ नहीं आओगे जानकर मैं स्टेशन से सीधे चला आया।"

गुरु भाई रोते-रोते चरणों पर गिर पड़े। इस दृश्य को देखकर कुलदा को विश्वास हो गया कि उसके अपराध को गोस्वामीजी ने क्षमा कर दिया है।

इस घटना के काफी दिनों बाद एक बार वह स्कूल से छुट्टियों में घर आया। उन दिनों उसका मन बड़ा अशान्त था। गोस्वामीजी भी बाहर थे। परीक्षा फल भी ठीक नहीं था। साधन-भजनमें मन नहीं लग रहा था। ज्योति दर्शन भी लुप्त हो चुका था। ऐसी मानसिक स्थिति में उसने लोकनाथ ब्रह्मचारीजी को पत्र लिखा। लौटती डाक से उनका उत्तर आया—"मन खराब है तो यहाँ आकर उपदेश ले जाओ।"

इस पत्र को पाते ही कुलदा ब्रह्मचारीजी के पास जाने के लिए छटपटाने लगा। दूसरे दिन एक ब्राह्मण साथी के साथ वह पैदल रवाना हो गया। वहाँ जाते ही पहला प्रश्न हुआ—"मेरा पत्र मिल गया था ?"

"हाँ।"

"क्या खाया है ?"

"कुछ भी नहीं।"

यह उत्तर सुनकर ब्रह्मचारीजी ने भजलेराम को बुलाकर कहा—"आज जो लड्डू तैयार किया है, सब ले आओ।"

स्नेहमयी सेविका एक थाली लड्डू ले आयी। ब्रह्मचारीजी ने कहा—"ले सब खा जा।"

कुलदा ने कहा—"इतना कैसे खाऊँगा। मैं तो पेट के रोग के कारण दो मुट्ठी भात खाता हूँ।"

ब्रह्मचारीजी ने कहा—"शुरू कर। सब खा लेगा।"

इसके बाद सेविका उसे अपने साथ लेकर रसोईघर में आयी और एक आसन बिछाकर लड्डुओं को खाने का आदेश दिया। उसने अनुभव किया कि अब छुटकारा नहीं है। पेट के

रोगी के लिए लड्डू जहर के बराबर है। तभी भजलेराम ने कहा—"आज दोपहर को बाबा ने बुलाकर मुझसे कहा कि एक लड़का यहाँ भूखा-प्यासा आ रहा है। उसके लिए बढ़िया लड्डू बनाकर रख दे। यहाँ आने पर उसे खिला देना।"

भोजन के पश्चात् कुलदा बाबा के पास जाकर बैठ गया। बातचीत होने लगी। शाम को साढ़े पाँच बजे बाबा ने कहा—"चलो, प्रसाद खालो।"

कुलदा ने कहा—"एक थाली लड्डू अभी तो खाया है। अपने जीवन में इतना कभी नहीं खाया था। अब फिर कैसे खा सकूँगा।"

ब्रह्मचारीजी ने कहा—"खूब खा लेगा। पहले जाकर पत्तल पर बैठ तो। अपने आप भूख लग जायगी।"

बिना प्रतिवाद किये कुलदा पुनः रसोईघर में आकर बैठ गया। प्रसाद के गंध से भूख महसूस हुई। इस दिन उसने चौगुना भोजन किया।

बाद में सोचने लगा—यह कैसे संभव हुआ ? जरूर इसमें बाबा का चमत्कार काम करता रहा।

इस घटना के कुछ दिनों बाद कुलदा बीमार हो गया। लोगों की सलाह पर वह फैजाबाद आकर बड़े भाई के पास रहने लगा। लोगों ने कहा था कि पछाँह की जलवायु से स्वास्थ्य में सुधार होगा और बड़े भाई इलाज भी करेंगे। खाना, पीना, घूमना आदि के अलावा कोई काम नहीं था। इलाज भी चलता रहा।

सहसा एक दिन उसे गोस्वामीजी की बात याद आ गयी—काशी, अयोध्या, वृन्दावन आदि तीर्थों में अनेक महात्मा रहते हैं। उन्हें पहचानना कठिन है। कुली, मजदूर के रूप में वे घूमते रहते हैं। बड़े भाई से बातचीत करने पर दो संतों का पता चला। इनमें एक थे—नागा बाबा। आप गुप्ता घाट से डेढ़-दो मील दूर सरयू के उस पार सुनसान स्थान में रहते हैं। एक टीले पर। आसपास पेड़-पौधे नहीं थे। एक नहर जो कि सरयू नदी के इधर है, बाढ़ के समय उपद्रव करती है। एक बार बाढ़ के समय उसमें इतना पानी भर गया कि बाबा के आसन के लिए खतरा पैदा हो गया। बाबा ने नहर से कहा—'माई, इधर मत आओ।' इस आवेदन का कोई परिणाम नहीं निकला। यह देखकर बाबा बोले—"ऐसी बात है। अच्छा, अब बन्द हो जाओ।" इस शाप के बाद से वह नहर सूख गयी।

बाबाजी जिस मैदान में रहते हैं, उसके पास ही सैनिकों का कैम्प है। काफी लम्बा-चौड़ा भूभाग होने के कारण यहाँ सैनिक युद्धाभ्यास करते हैं। एक बार युद्धाभ्यास करने के पहले बाबाजी को नोटिस दिया गया कि आप अपना डेरा-डण्डा हटा ले जायँ। अन्य लोग हट गये। बाबाजी ने कहा—"बेटा, तुम लोग अपना खेल खेलो। मैं यह आसन छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा। मेरा कुछ नहीं होगा। तुम लोग अपना खेल खेलो।"

बाद में पुनः सूचना दी गयी कि आप जल्द हट जाइये। अगर आप इस नोटिस पर नहीं हटेंगे तो आपकी मौत के लिए सरकार जिम्मेदार नहीं होगी। फिर भी बाबाजी नहीं हटे। बन्दूक, तोप चलने लगे। बाबाजी धूनी जलाकर बैठे रहे। कर्नल ने एक ओर से देखा कि बाबाजी क्या कर रहे हैं। इतने गोले बरसाये गये हैं, कहीं बाबाजी हैं या शहीद हो गये। उन्होंने आश्चर्य के साथ देखा कि बाबाजी एक हाथ वरद मुद्रा में उठाये चुपचाप बैठे हैं। बन्दूक की गोलियाँ और तोप के गोले उनके ऊपर तथा अगल-बगल से गुजर रहे हैं। यह

दृश्य कर्नल क्रूली के लिए विस्मयजनक था। अभ्यास समाप्त होने के बाद कर्नल क्रूली बाबा के पास आकर बोले—"मैं आपकी इस अलौकिक शक्ति को देखकर चकित रह गया हूँ। इस घटना को मैं आजीवन कभी भुला नहीं सकूँगा।" इस घटना का उल्लेख गजट में है।

बाबाजी के बारे में इतनी चमत्कारपूर्ण बातें सुनने के बाद कुलदा की उत्सुकता बढ़ गयी। बाबाजी के पास आकर ज्योंही उसने आशीर्वाद माँगा त्योंही वे चौंक उठे। कुलदा के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"बेटा, तुम तो भगवान् के आश्रम में हो। तुम्हारे गुरु बड़े शक्तिमान संत हैं। वे बड़े दयालु हैं। वही तुम्हारे मालिक हैं। विश्वास और भक्ति तुम्हें उन्हीं से मिलेगी। जाओ, आनन्द करो।"

दूसरे बाबाजी का नाम पतितदास था। उनसे मिलने के लिए बड़े भाई ने मना किया। उन्होंने बताया कि वे अपनी कुटिया से जल्द बाहर नहीं आते। छह-छह माह बिना आहार के कुटिया में पड़े रहते हैं। कहते हैं कि बराबर समाधि में लीन रहते हैं। बड़े भाग्य से कभी-कभी उनका दर्शन लोगों को प्राप्त होता है। तुम जाना चाहते हो तो जाओ। मैं तुम्हें रोकना नहीं चाहता, पर उनका दर्शन दुर्लभ है।

कुलदा थोड़ा मायूस हो गया, पर निराश नहीं हुआ। उसने मन में निश्चय किया कि दर्शन हो या न हो, कम-से-कम उनकी कुटिया तक जाकर दरवाजे पर अपनी श्रद्धा ज्ञापन करेगा। इस निश्चय के साथ वह रवाना हो गया। फैजाबाद से अयोध्या जाने के मार्ग में एक जगह दोनों ओर बहुत बड़े मैदान के सामने दो रास्ते हैं। एक देवकाली की ओर तथा दूसरा राणुपाली की ओर जाता है। राणुपाली के मार्ग में बायीं ओर बाबाजी का आश्रम है।

आश्रम में प्रवेश करने पर उसने देखा कि कुटिया का दरवाजा बन्द है। बाबाजी के नाम पर कुटिया के सामने उसने साष्टांग प्रणाम किया। सिर उठाते ही उसने देखा—बाबाजी दरवाजा खोल रहे हैं। बड़े स्नेह से उन्होंने कहा—"आओ बच्चा, यहाँ बैठो। थोड़ी देर पहले मालूम हुआ कि तुम आओगे। तब से मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करता रहा।"

बाबाजी एकटक उसकी ओर देखते हुए बोले उठे—"आह ! धन्य हो गया, धन्य हो गया। दुर्लभ सद्गुरु का आश्रय पा गया। धन्य हो गया।"

कुलदा ने कहा—"बाबा, मेरा कल्याण कैसे होगा ?"

बाबा ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"अब क्या है, बच्चा ? तेरा सब पूर्ण हो गया। उसी सद्गुरु का ध्यान कर।"

बाबाजी यही कहते-कहते रो पड़े। उनकी उम्र १५० वर्ष के लगभग थी। गौर वर्ण, चेहरा लाल, लम्बे-तड़ंगे थे। हाथ-पैर के नाखून सँड़सी की तरह तिर्छे और लम्बे थे। बातचीत करते समय आँखों से पानी बहता रहा। ऐसे दुर्लभ बाबा का दर्शन पाकर कुलदा फूला नहीं समाया।

अयोध्या में इन दोनों बाबाओं के अलावा कुलदा ने गोपालदास बाबा, तुलसीदास बाबा, अन्ध बाबा आदि संतों के दर्शन करने के बाद कलकत्ता चला आया। कलकत्ता से ढाका आया। अभी तक बीमारी ठीक नहीं हुई थी। लोगों के अनुरोध पर इस बार वह भागलपुर आकर रहने लगा।

यहाँ एक स्वामीजी से मुलाकात हुई। आप ढाका विश्वविद्यालय के छात्र थे। यहाँ

आने के बाद से कुलदा नियमित रूप से पुनः प्राणायाम और साधन करने लगा। रात को तीन बजे जागने के बाद उसकी क्रिया प्रारंभ हो जाती थी। कुंभक करने के बाद वह जलपान करता। इसके बाद सुबह ७ से १० तक त्राटक। भोजन के पश्चात् गंगा किनारे जाकर साधन का अभ्यास करता। कभी-कभी गहरी रात को जंगल में जाकर धूनी जलाकर नाम भजने में उसे अपूर्व आनन्द मिलता। गोस्वामीजी ने उसे बताया था कि नाम करते-करते सत्यवस्तु अपने आप प्रकट हो जायगी।

एक दिन भोर के समय गंगा-स्नान के पश्चात् नाम करते हुए स्वामीजी के साथ डेरे की ओर लौट रहा था। हृदय गुरु के प्रति आविष्ट था। अचानक ललाट-स्थल से अपूर्व ज्योति समन्वित सूर्य मण्डल प्रकाशित हुआ। वह भी केवल कुछ सेकेण्डों के लिए। यह दृश्य देखकर वह 'जयगुरुदेव-जयगुरुदेव' कहता हुआ रेत पर गिर पड़ा। योग-साधन राज्य में कितने चमत्कार हैं, कौन जानता है ?

नियमित रूप में गंगा-स्नान करते रहने के कारण उसने अनुभव किया कि इस वक्त मेरे साथ देवगण, ऋषिगण और पितृ पुरुषगण गंगाजल पाने के लिए चल रहे हैं। स्नान के पश्चात् जब वह ऊर्ध्व की ओर मुँह करके गंगा जल का अर्घ देता है तब रो पड़ता है, क्योंकि उस वक्त अर्घ जल में अँगूठे के बराबर अस्पष्ट मनुष्याकृति छायाएँ तैरने लगती हैं। देव तर्पण या ऋषि तर्पण में इच्छा करने पर भी कोई छाया दिखाई नहीं देती। पितृ तर्पण करने के बाद छायाएँ क्षण भर भी नहीं रहतीं।

एक दिन तर्पण करते समय उसने देखा कि पितृ तर्पण के वक्त ७-८ हाथ दूर गंगा किनारे एक बड़ा कुत्ता सतृष्ण दृष्टि से उसकी ओर देख रहा है। जाड़े का सबेरा था। वह कुत्ता क्रमशः उसके पास आने लगा। स्वामीजी तथा महाविष्णु बाबू जो पास ही स्नान कर रहे थे, कुत्ते को पास आते देख दुतकारने लगे। कुत्ते ने क्षीण स्वर में क्लेश सूचक आवाज निकाली। यह देखकर लोग रुक गये। जाड़े में जब स्नान करते समय लोग ठिठुर जाते हैं, ऐसी स्थिति में वह कुत्ता गले तक पानी में आकर खड़ा हो गया। जब-जब पितृ तर्पण करते हुए कुलदा अर्घ पानी में गिराता, उसे लपककर वह पी जाता था। तर्पण समाप्त करने के बाद कुलदा किनारे की ओर बढ़ा। इसके साथ ही वह कुत्ता भी किनारे की ओर बढ़ा। आश्चर्य का विषय यह रहा कि दूर-दूर तक फैले इस रेत में वह कुत्ता न जाने कहाँ गायब हो गया। द्रुतगामी घोड़ा भी इस रेत पर इतने शीघ्र अदृश्य नहीं हो सकता था। उस दिन वह दिन भर इस कुत्ते के बारे में सोचता रहा।

सन् १८९० ई० की घटना है। फागुन का महीना था। कुलदा एक साधन कर रहा था। ठीक इसी समय लाल नामक एक गुरु भाई उसके सामने हाजिर हो गया। उसे देखते ही कुलदा साधन छोड़कर खड़ा हो गया और अपने कमरे में लाकर बैठाते हुए उससे पूछा—"अचानक कैसे चले आये ?"

लाल ने कहा—"वृन्दावन में गोसाईजी (गोस्वामीजी) के साथ था। एक दिन तुम्हारी चर्चा चल पड़ी। तुम्हें देखने के लिए न जाने क्यों मन बड़ा व्याकुल हो उठा। बिना किसी को कुछ बताये पैदल चल पड़ा।"

कुलदा ने चकित होकर पूछा—"क्या वृन्दावन से यहाँ तक पैदल ही आये हो। तुम्हारे पास सामान के नाम पर यह कम्बल और लंगोट देख रहा हूँ। रास्ते में कोई कष्ट नहीं हुआ ?"

लाल ने कहा—"कष्ट किस बात का ? गुरुदेव भला किसी को कष्ट सहने देते हैं। मार्ग में कोई भगत मिला तो २-४ स्टेशन का टिकट दे देता था।"

एक नाबालिग बालक वृन्दावन से केवल एक कम्बल और लंगोट के सहारे भागलपुर तक पैदल चला आया। कुलदा के लिए यह आश्चर्य की बात थी। भागलपुर में नित्य कीर्त्तन होता था। लाल ने आकर इस कार्य में तूफान मचा दिया। लाल कितना योग्य है, इसका प्रमाण उसे उस दिन मिला जिस दिन उसे साथ लेकर पड़ोस के पार्वती बाबू के घर गया।

बातचीत के सिलसिले में जब धार्मिक चर्चा चल पड़ी तब लाल ने इतने गंभीर ढंग से दर्शन और अध्यात्म की चर्चा की जिसे सुनकर कुलदा दंग रह गया। केवल यही नहीं, अपने तर्क को प्रमाणित करने के लिए उसने संस्कृत, पालि, तिब्बती, अरबी और अन्य भाषाओं के उद्धरण देते हुए अपने तर्क को सिद्ध किया। उसने बताया कि गुरु कृपा से ब्रह्मज्ञान, तत्त्वज्ञान, भगवद् भक्ति शिष्यों में संचारित होती है।

उसके इस कथन का प्रमाण कुलदा को एक दिन प्रत्यक्ष रूप में मिल गया। उस दिन वह अपने कमरे में बैठा पतंजलि का दर्शन पढ़ रहा था। लाल ने आते ही पूछा—"कौन सी पुस्तक पढ़ रहे हो ?"

"पतंजलि।"

लाल ने कहा—"यह दुर्बुद्धि तुम्हें क्यों हुई। यह सब पढ़कर क्या करोगे। एक वाक्य का अर्थ नहीं समझ सकोगे। बेकार समय नष्ट करने से फायदा ? इससे अच्छा है कि नाम करो। गुरु की कृपा से सभी शास्त्र हृदय में प्रकट हो जाते हैं।"

कुलदा ने कहा—"अगर पढ़ोगे-लिखोगे नहीं तो गुरु की कृपा से सरस्वती-पुत्र कैसे बनोगे ?"

लाल ने कहा—"तुम्हारा ख्याल गलत है। वास्तव में गुरु की कृपा से सब कुछ ज्ञात हो जाता है।"

बार-बार कुलदा के विरोध करने पर लाल ने पतंजलि की पुस्तक को हाथ में लेकर प्रथम और अंतिम पृष्ठ को कई सेकेण्ड तक देखता रहा। फिर उस पुस्तक को सिर से लगाया। कुलदा को पुस्तक वापस देते हुए कहा—"पाठशाला में मेरी शिक्षा तीसरी पुस्तक तक हुई है। वर्णज्ञान की दृष्टि से इस पुस्तक का वर्णन करना कठिन है। अब तुम इस पुस्तक के किसी भी जगह से कोई भी प्रश्न करो, मैं उत्तर देता हूँ।"

कुलदा ने ७-८ स्थानों से प्रश्न किया। उन सभी प्रश्नों का सटीक उत्तर पाद टिप्पणियों के साथ लाल ने दिया। कुलदा विस्मय से अवाक् रह गया। उसने पूछा—"क्यों भाई, यह शक्ति तुम्हें कहाँ से प्राप्त हुई ?"

लाल ने कहा—"गुरु-कृपा। बात यह है कि एक दिन मैं गुरुभाई सुरेशचन्द्र सिहं के यहाँ मनोविज्ञान विषय पर बातचीत कर रहा था। बात करते-करते सुरेशचन्द्र सिंह किसी काम से भीतर चले गये। उनकी टेबुल पर अंग्रेजी की एक पुस्तक रखी हुई थी। मैंने पढ़ा-लिखा नहीं, अगर अंग्रेजी पढ़ लेता तो इन पुस्तकों का अध्ययन कर विषय की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर लेता। यह सोच कर उस पुस्तक को कई बार सिर से लगाया और गुरुदेव को स्मरण करने लगा। अचानक मुझे अनुभव हुआ मेरे मस्तक में कुछ हो रहा है। इस पुस्तक के भीतर

जो कुछ है, वे सभी विचार मेरे दिमाग में प्रवेश करते गये। यह क्यों और कैसे हुआ, इसे बता नहीं सकता। शायद यह गुरु-कृपा है।"

स्वामीजी जिनकी चर्चा आगे की गयी है, संन्यास व्रत ले चुके थे। संगदोष के कारण आचार भ्रष्ट होकर स्वेच्छाचारी हो गये थे। यह जानकार लाल को क्लेश हुआ। उसने स्वामी (हरमोहन) को समझाना शुरू किया कि आप यह सब छोड़कर गुरु के बताये पथ पर चलें। लेकिन स्वामीजी की आदतों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उन्होंने लाल के सुझावों को अनसुना कर दिया। यह देखकर लाल ने सोचा—अब जरा योगैश्वर्य दिखाकर इन्हें ठीक करना पड़ेगा।

फागुन का महीना था। रात १० बजे कमरे में बैठकर सभी लोग बातें कर रहे थे। लाल ने पुनः स्वामीजी को समझाना शुरू किया। आदत के अनुसार स्वामीजी ने उपेक्षा दिखायी। यह देखकर लाल एकाएक उछल पड़ा और ऊपर की ओर हाथ हिलाते हुए कहने लगा—"मत आओ, मत आओ। क्यों आ रहे हो ? चले जाओ, चले जाओ।"

ठीक इसी समय बैठे हुए लोगों के सामने से न जाने क्या सों-सों आवाज करता हुआ गुजर गया। सभी लोग हतप्रभ रह गये। थोड़ी देर बाद पुनः बोल उठे—"हाय, हाय ! यह क्या हुआ ? आत्महत्या ? कितना भयानक है ! अब तो देखते नहीं बन रहा है।" कहने के साथ ही वह रोने लगा। रोते-रोते उसने कहा—"मेरे पास आने की जरूरत नहीं। गुरुजी के पास जाओ। मुझसे कोई कल्याण नहीं होगा। सुनाई नहीं दिया ? तब आओ।"

इतना कहना था कि पुनः सों-सों शब्द करता हुआ अदृश्य कुछ गंगा की ओर वाली खिड़की के तरफ गिरा। शीशे की खिड़की बन्द थी। आश्चर्य की बात यह हुई कि खिड़की अपने आप खुल गयी और उसके शीशे टूट गये। सभी लोग चौंक उठे। कुछ देर चुप रहने के बाद लाल ने पुनः कहना शुरू किया —"यह क्या देख रहा हूँ ? जीवित व्यक्ति को चिता पर चढ़ा दिया ? हाय, हाय यह क्या हुआ ? यह तो भयानक चिता है। जिन्दे व्यक्ति को जला दिया।"

तभी स्वामीजी दौड़कर बाहर बरामदे में आये और वे भी चीत्कार करते हुए बोले—"हाय, हाय, जिन्दे व्यक्ति को जला दिया ?" कहने के साथ ही वे भी बेहोश होकर गिर पड़े।

स्वामीजी लगभग डेढ़ घण्टा बेहोश रहे। होश में आते ही बिना कुछ बोले उन्होंने अपना कम्बल लाल पर फेंका और उसके लंगोट को खींच लिया। बाद में वे बोले—"आप लोग मेरे पागलपन को क्षमा कर दें।" कहने के साथ ही वे बरामदे से कूदकर तीव्र गति से दौड़ते हुए अदृश्य हो गये। उस वक्त रात के डेढ़ बज चुके थे।

कुछ देर बाद लाल ने कहा—"अब स्वामीजी को खोजने की जरूरत नहीं है। वे वृन्दावन की ओर जा रहे हैं।"

× × × ×

कुलदा का पुराना रोग पुनः उभड़ आया। भागलपुर का जलवायु भी उसके पित्तशूल को ठीक नहीं कर सका। उसने वृन्दावन जाने का निश्चय किया। जब जलवायु, दवा आदि से रोग अच्छा नहीं हो रहा है तब गुरुदेव की शरण में जाकर अपने को समर्पित कर दूँ। यही सब सोचकर वह वृन्दावन आ गया।

दूर से कुलदा ने देखा कि गुरुदेव बगीचे के दरवाजे के पास खड़े हैं। पास जाते ही गोस्वामीजी ने कहा —"आ गये कुलदा। चलो, अच्छा हुआ।"

उनके साथ मकान के दोतल्ले के एक कमरे में आकर उसने गोस्वामीजी को प्रणाम किया। गोस्वामीजी ने कहा—"अस्वस्थ हो, जरा आराम कर लो। बाद में जाकर यमुना में स्नान कर लेना। हम लोगों का भोजन हो चुका है। तुम्हारा प्रसाद रखा है, खा लेना।"

वृन्दावन आये कई दिन हो गये, पर पेट का दर्द दूर नहीं हो रहा है। कभी-कभी रात भर छटपटाने लगता है। तीसरे पहर गोस्वामीजी के पास वह बैठ नहीं पाता था। भागलपुर में दर्द कम था। यहाँ आने के बाद से यह दर्द बढ़ता जा रहा है।

नित्य सबेरे स्नान करने के बाद वह गोस्वामीजी के पास बैठकर नाम करता है। उस दिन दर्द से बहुत बेचैन हो उठा। कहीं गोस्वामीजी न जान जायँ, इस भय से वह अधिक देर तक साँस रोककर लम्बी साँस लेने लगा। पास ही गोस्वामीजी समाधिस्थ थे। अचानक चौंककर बोले—"ओफ ! तुम्हें तो बहुत कष्ट हो रहा है। अच्छा, अब तुम्हें भोगना नहीं पड़ेगा।" इतना कहने के बाद गोस्वामीजी ने दो-तीन बार कुलदा की ओर देखा ओर फिर समाधिस्थ हो गये।

कुलदा को इस बात पर आश्चर्य हुआ कि मेरे पेट के दर्द को कोई नहीं जानता। गोस्वामीजी कैसे जान गये ? 'अब तुम्हें भोगना नहीं पड़ेगा', क्यों कहा ? इन्हीं बातों को सोचता हुआ वह नीचे चला आया। भोजन के पश्चात् गुरुदेव के पास बैठकर नाम जपते-जपते ध्यानमग्न हो गया। इस बीच पता नहीं कैसे पेट का दर्द गायब हो गया। इसका अनुभव होते ही वह चौंक उठा। इतने दिनों से जिस दर्द के कारण परेशान था, वह कैसे गायब हो गया ? यह असंभव बात संम्भव कैसे हो गयी ? उसने अनुमान लगाया कि यह गुरुदेव की कृपा है। दर्द वास्तव में गायब ही गया है या नहीं, इसे आजमाने के लिए रात को जमकर रोटी, दाल, अचार, मसालेदार तरकारी खाकर सो गया। रात को गहरी नींद आयी।

दूसरे दिन सबेरे स्नान करके जब आश्रम में वापस आया तो देखा—गुरुदेव आसन पर स्थिर होकर बैठे हैं। उनका चेहरा काला हो गया है। यह देखकर वह भीगे कपड़ों को फेंककर रोते हुए उनके चरणों पर गिर पड़ा। उसने कहा—"गुरुदेव, आप मेरा रोग लेकर काले हो गये मेरा रोग मुझे दे दीजिए। मैं उसे भोग लूँगा।"

गुरुदेव ने उसे झटकारते हुए कहा—"क्या बक रहा है ? किसका भोग कौन लेता है ? यह सब कुछ नहीं है।" इतना कहने के बाद गोस्वामीजी ने अपनी आँखें बन्द कर लीं।

कुलदा को आगे प्रश्न करने का मौका नहीं मिला। वह पास ही बैठकर सुबुक-सुबुक कर रोता रहा। अपने पेट दर्द की अपेक्षा गुरुदेव का दर्द उसे अधिक कष्ट देने लगा।

पेट दर्द दूर हो जाने के बाद एक नयी चिन्ता से कुलदा परेशान हो उठा। अब वह स्वस्थ हो गया है, इसलिए गुरुदेव उसे अपने यहाँ अधिक दिनों तक नहीं रखेंगे। उसे घर जाने का आदेश देंगे। वहाँ जाने पर कालेज में भर्ती होना पड़ेगा या कोई नौकरी करनी पड़ेगी। फिर विवाह होगा, पत्नी आयेगी और बच्चे होंगे। इन सभी के पालन-पोषण का प्रबंध करना पड़ेगा।

इस समस्या को सुनने के बाद गुरुदेव ने कहा—"तुम्हारी जो हालत है, इसे देखते हुए

तुम्हें विवाह नहीं करना चाहिए। पूर्ण रूप से स्वस्थ होकर नौकरी करते हुए भाइयों की सेवा कर सकते हो।"

कुलदा ने कहा—"मेरी इच्छा है कि अविवाहित रहते हुए साधन-भजन करूँ।"

गुरुदेव ने कहा—"ठीक है। तुम ब्रह्मचारी बने रहना चाहते हो। यही तुम्हारे लिए उचित है। तुम अब ब्रह्मचर्य व्रत ले लो।

इस घटना के कुछ दिनों बाद गोस्वामीजी ने सन् १८९१ ई० के श्रावण माह में कुलदा को ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी। इसी समय कुलदाकान्त का नया नामकरण हुआ। गोस्वामीजी ने कुलदानन्द ब्रह्मचारी नाम रखा।

ब्रह्मचारी के रूप में कुछ दिनों तक साधन भजन कराने के बाद गोस्वामीजी ने कहा—"अब तुम बापस चले जाओ। कुछ दिनों तक बड़े भाइयों और बाद में माताजी की सेवा करो। यही मेरा आदेश है। इससे कितना लाभ होगा, इसे आगे समझ सकोगे। नौकरी या रोजगार करने की तुम्हें जरूरत नहीं होगी। मातृसेवा करने पर तुम्हारा सब कुछ कट जायगा।

कुलदानन्द ने कहा—"अगर माँ मेरी सेवाओं से संतुष्ट होकर, मुझे धर्म लाभ के लिए आशीर्वाद देकर छोड़ दें तो मैं आपके साथ रह सकता हूँ ?"

गुरुदेव ने कहा—"तुम्हारी सेवाओं से माँ सन्तुष्ट होकर अगर तुम्हें छोड़ दें तो उनकी अनुमति से तुम यहाँ रह सकते हो। जाओ, भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करो।"

अभी यह सब बातें हो रही थीं कि उसके नाम दस रुपये का एक मनिआर्डर आया। फैजाबाद से बड़े भइया ने भेजा था। उन्होंने रुपये क्यों भेजे, वह समझ नहीं सका। गुरुदेव से चर्चा करने पर उन्होंने कहा—"यहाँ से तुम सीधे फैजाबाद चले जाओ। वहाँ कुछ दिनों तक भाई की सेवा करो। उनकी आज्ञा पाने के बाद घर जाकर माँ की सेवा करना। सेवा के द्वारा सभी को संतुष्ट करते हुए उनकी अनुमति और आशीर्वाद लेकर धर्मपथ पर चलना चाहिए। परिवार का कोई भी सदस्य विरोधी होता है तो धर्मपथ में विघ्न होता है।"

इतना कहकर गुरुदेव ने कुलदानन्द को आशीर्वाद दिया। वृन्दावन से कानपुर होते हुए वे फैजाबाद पहुँचे। बड़े भाई को यह जानकर अपार आश्चर्य हुआ कि उनका काफी पुराना पित्तशूल पूर्ण रूप से ठीक हो गया है। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा—"मेरी क्या सेवा करोगे ? पत्नी है, कई नौकर हैं। मेरा विचार है कि जब गुरुदेव की कृपा से तुम्हारा पुराना रोग ठीक हो गया है तब उन्हीं के निर्देश पर चलो। यहाँ रहकर अपना साधन-भजन करो।"

कुछ दिनों के बाद कलकत्ता की सरकारी नौकरी छोड़कर मझला भाई फैजाबाद में वकालत करने के उद्देश्य से आया। कुलदानन्द से उन्होंने कहा—"बेकार बैठे रहने से अच्छा है कि कोई नौकरी करो। खाली समय में अपना साधन-भजन करते रहना।"

कुलदानन्द ने कहा—"नौकरी करना मना है।"

मझले भाई ने कहा—"ठीक है। भाई साहब की पेटेण्ट दवाएँ बनाओ और उन्हें बाजार में बेचने का कार्य करो।"

इन प्रस्तावों को सुनकर कुलदानन्द की हालत खराब हो गयी। उन्होंने कहा—"ब्रह्मचर्य व्रत में न नौकरी करनी चाहिए और न व्यवसाय। क्यों मुझे परेशान कर रहे हैं ?"

मझले भाई वरदाकान्त ने कहा—"यह सब चोंचलेबाजी छोड़ दे। व्यवसाय कर और अपनी साधना भी।"

इस निर्णय को सुनते ही कुलदानन्द का दिमाग चकरा गया। उन्होंने तुरत गोस्वामीजी को सारी स्थिति लिखते हुए राय माँगी। पत्र भेजने के साथ ही भयंकर सर दर्द होने लगा। देखते ही देखते १०५ डिग्री बुखार आ गया। बड़े भाई हरकान्त हर तरह की कोशिशें करने लगे। वे ज्यों-ज्यों प्रयत्न करते त्यों-त्यों एक नयी मुसीबत पैदा हो जाती थी। अन्त में हरकान्त को कहना पड़ा—"शायद इसे बचाना अब कठिन हो गया।"

घर के सभी लोग परेशान हो उठे। अगले हफ्ते उत्तर आया—"तुम्हारे शरीर की जो दशा है, उससे विषय कार्य कराना उचित नहीं है वर्ना पीड़ा की वृद्धि होगी। अपने भाइयों से कहो कि गृहस्थी के कार्य भले ही करायें। उनकी नौकरी जरूर करो। भगवान् के राज्य में एक मुट्ठी अन्न की कमी नहीं होगी। भगवान् जिसे जिस प्रकार रखते हैं, उसे उसी तरह रहना चाहिए।"

इस पत्र को पढ़कर हरकान्त ने कहा—"तुम्हें नौकरी करने की जरूरत नहीं। अब अच्छे हो जाओ, यही मैं चाहता हूँ।"

अट्ठारहवें दिन दादा के मुँह से यह बात सुनकर उन्हें संतोष हो गया। उन्नीसवें दिन से सरदर्द घटना शुरू हो गया और बीसवें दिन पूर्ण रूप से रोग मुक्त होकर उन्होंने पथ्य ग्रहण किया। कुछ दिनों बाद हरकान्त ने कहा—"अब तो तुम काफी स्वस्थ हो गये हो। मेरी इच्छा है कि कुछ दिनों तक माँ के पास रहकर उनकी सेवा करो। उन्हें इसकी जरूरत है।"

बड़े भाई से अनुमति पाने पर कुलदानन्द घर की ओर रवाना हुए। सबसे पहले वे ढाका के आश्रम में आये। यहाँ अनेक गुरु भाइयों से मुलाकात हुई। लोगों ने गुरुदेव के बारे में अनेक प्रश्न किये। यहीं छोटे भाई शारदाकान्त से मुलाकात होने पर पता चला कि आजकल माँ बीमार हैं। कुलदानन्द ने गौर किया तो देखा—शारदा भाई का स्वास्थ्य भी संतोषजनक नहीं है। इस बार वे बी० ए० की परीक्षा देंगे। कमजोर शरीर लेकर अधिक श्रम करना इनके लिए मुसीबत हो गयी है। परीक्षा दे सकेंगे या नहीं, इसकी चिन्ता में घुल रहे हैं।

छोटे भइया की सलाह के मुताबिक कुलदानन्द तुरत घर की ओर रवाना हो गया। पित्तशूल, आमाशय आदि रोगों के कारण माँ काफी कमजोर हो गयी हैं। माँ की यह हालत देखकर कुलदा को अपार कष्ट हुआ। उन्होंने मन ही मन निश्चय किया कि अब जी जान से माँ की सेवा शुश्रूषा करेंगे।

लड़के का पुराना रोग बिलकुल ठीक हो गया है और अब वह स्वस्थ है देखकर माँ ने पूछा—"क्यों रे, तेरा रोग कैसे ठीक हुआ ?"

माँ से सारी बातें कहने पर उन्हें आश्चर्य हुआ। माँ ने कहा—"सौभाग्य से जब ऐसा गुरु तुझे प्राप्त हुआ तब उन्हें छोड़कर क्यों चला आया ? उनके साथ रहता तो और उपकार होता।"

कुलदानन्द ने कहा—"उनकी आज्ञा से मैं तुम्हारी सेवा करने आया हूँ।"

माँ ने कहा—"यह बात है ? तब गुरु की आज्ञा की तरह तू मेरी सेवा कर।"

अब वे नित्य भोर में उठकर शौचादि के बाद स्नान करते हैं। इसके बाद निर्जन कमरे में बैठकर साधन, पितृ तर्पण आदि करने के बाद माँ के पास आते हैं और भूमिष्ठ होकर माँ को प्रणाम करते हैं। माँ उनके पीठ पर हाथ फेरती हुई आशीर्वाद देती हैं—"तेरी मनोकामना पूरी हो। सर्वदा सुखी रहो।"

कुछ दिन इसी प्रकार गुजर जाने के बाद शारदाकान्त का एक पत्र मिला जिसमें लिखा था कि कलेजे में दर्द उत्पन्न हो जाने के कारण तीन दिन से बिस्तर पर हूँ। काफी दर्द है। परीक्षा के दिन निकट हैं। एक-एक दिन पहाड़ जैसा लग रहा है। लगता है, इस साल परीक्षा नहीं दे सकूँगा। मेरे लिए प्रार्थना करना।

इस पत्र को पाकर कुलदानन्द बेचैन हो उठे। वे अपने छोटे भाई से काफी प्यार करते हैं। कातर कंठ से उन्होंने गुरुदेव से प्रार्थना की—"गुरुदेव छोटे भाई की पीड़ा मुझसे सहन नहीं होती। उसका रोग मेरे शरीर को दे दो। मैं अविचलित रूप से उस कष्ट को भोग लूँगा।" मन ही मन इस निवेदन को अर्पित करने के बाद उन्होंने गुरुदेव को प्रणाम किया। इसके बाद प्राणायाम के जरिये वायु को आकर्षित करने लगे, फिर रेचक के जरिये अपना स्वास्थ्य छोटे भाई के शरीर में प्रवेश करने लगे। इस क्रिया के करते रहने पर उन्होंने अपने कलेजे में दर्द महसूस किया और देखते ही देखते वेदना बढ़ने लगी। तुरत उन्होंने छोटे भाई को पत्र लिखा। उधर से पत्र का जवाब आया कि ठीक उसी दिन, उसी समय वह स्वस्थ हो गया। कुलदानन्द को भी यह पीड़ा अधिक दिनों तक नहीं सहनी पड़ी।

इस घटना के कुछ दिनों बाद छोटे भाई की परीक्षा आरंभ हुई। परीक्षा के तीन दिन पहले वे पुनः बीमार हो गये। कुलदानन्द को उनका एक पत्र उस समय मिला जब वे किसी काम से जैनसार गाँव जा रहे थे। कुलदानन्द को भाई की मुसीबत समझते देर नहीं लगी। रोगमुक्त होकर भी भाई साहब परीक्षा नहीं दे सके। इस बात की ऊहापोह में कुलदानन्द बेचैन हो उठे। धीरे-धीरे आगे बढ़ने पर एक विशाल बरगद का वृक्ष दिखाई दिया। उसके नीचे बैठकर वे भाई साहब के स्वस्थ होने तथा परीक्षा के शुभ फल की कामना लेकर गुरुदेव से प्रार्थना करने लगे। तीन घण्टे के बाद उन्हें लगा जैसे उनकी प्रार्थना सफल हो गयी और तभी वे बेहोश होकर गिर पड़े। कब तक बेहोश रहे, इसका पता नहीं चला। लेकिन इतना अनुभव हुआ कि छोटे भइया संपूर्ण रूप से रोग मुक्त होकर परीक्षा में सफलता प्राप्त करेंगे। इन बातों को सोचते हुए उन्होंने आगे की यात्रा प्रारंभ की। आगे एक डाकखाने से कार्ड खरीदकर छोटे भइया को उन्होंने पत्र लिखा—"चिन्ता करने की जरूरत नहीं। गुरुदेव आपका कल्याण अवश्य करेंगे। आप परीक्षा में पास होंगे। मेरा ख्याल है कि आपका बुखार उतर गया होगा। अब क्या हालत है, लिखियेगा।"

कई दिनों बाद छोटे भइया का उत्तर आया—"परीक्षा के दिन पथ्य लेकर बड़े कष्ट से परीक्षा देने गया। मार्ग में अचानक मेरे दिल में अपूर्व तेज उत्पन्न हुआ। लगा जैसे मैं कभी बीमार नहीं था। भगवान् की कृपा से पेपर अच्छे हुए हैं।"

इस पत्र को पाने के बाद कुलदानन्द ने गुरु के उद्देश्य से बार-बार प्रणाम किया।

अब पुनः पूर्ववत ब्रह्मचर्य नियमावलियों का पालन करते हुए माँ की सेवा में वे लगे रहे। लेकिन जिस व्यक्ति के जीवन में एक-से-एक बढ़कर घटनाएँ होनेवाली हैं, वह कैसे शान्त

जीवन व्यतीत कर सकता है। गाँव में रहते समय एक अद्‌भुत घटना कुलदानन्द के साथ हुई।

एक दिन एक अपूर्व सुन्दरी, पूर्ण यौवना, ब्राह्मण कन्या कुलदानन्द के पास आयी और रोती हुई बोली —"मेरे दिल में आग जल रही है। जब तुम्हारी याद आती है तब मेरी स्थिति असह्य हो जाती है। भोग की लालसा से तड़पने लगती हूँ। तुम मेरी काम-ज्वाला को शान्त करो।"

कुलदानन्द ने उत्तर दिया—"कभी तुम्हारे प्रति मेरा लोभ था। अब गुरुदेव ने उसे शान्त कर दिया है। मैंने ब्रह्मचर्य ग्रहण कर लिया है। अब हमेशा के लिए इस कार्य से वंचित हो गया हूँ।"

"तब मेरी काम-वासना जिससे शान्त हो जाय, वह उपाय शीघ्र करो। मुझसे बर्दाश्त नहीं हो रहा है।"

युवती को सांत्वना देते हुए कुलदानन्द ने कहा—"तुम निश्चिन्त रहो। इस दिशा में कुछ उपाय मैं करूँगा।"

इस घटना के बाद अक्सर वह युवती कुलदानन्द के पास आने लगी। उसे संयम का उपदेश देते रहे, पर केवल उपदेश से वासना शान्त नहीं होती। कई दिनों तक ऊहापोह करने के बाद कुलदा ने सोचा —रति मंदिर में महाशक्ति की पूजा करने पर संभवतः युवती की काम-वासना शान्त हो जाय। इस क्रिया में उपासक की शक्ति-परीक्षा हो जायगी। मुझे इस युवती का कोई अंग स्पर्श करना नहीं है, दूर से पूजा करने में कोई दोष नहीं है। कुलदानन्द ने अपने अभिप्राय को बताया। युवती राजी हो गयी।

कुलदानन्द पूजा के लिए यज्ञ काष्ठ, घृत, विल्वपत्र, अतसी, जवा पुष्प, अपराजिता, धूप, चन्दन आदि उपकरण संग्रह करके युवती के पास गया और उसे साथ लेकर सन्नाटे स्थान में आया। उसे अपने से कुछ दूर बैठने की आज्ञा देकर उसने होमकुण्ड प्रज्वलित किया। इसके बाद इष्ट को ध्यान करने के बाद यज्ञ सामग्रियों का हवन किया। बाद में हाथ जोड़ते हुए गुरुदेव के उद्देश्य से प्रणाम करते हुए कहा —"भगवन्, आज एक महान् कार्य के लिए लगा हूँ। ऐसी अवस्था में जो कल्याणकारी हो, वही करने की कृपा करें। अगर प्रकृति-पूजा उचित न हो तो कोई विघ्न उपस्थित करके इसे नष्ट कर दें। मैं पाँच मिनट प्रतीक्षा करने के बाद कार्य प्रारंभ कर दूँगा।"

पाँच की जगह सात मिनट गुजर गये। अब वे पूजा की तैयारी में जुट गये। कुलदानन्द के इशारे पर युवती पूर्ण नग्न होकर खड़ी हो गयी। उन्होंने पुष्पादि सामग्री को मस्तक पर धारण करते हुए चण्डी पाठ करने लगे। साथ ही युवती के नखाग्र से लेकर केशाग्र तक निरीक्षण करते रहे। अचानक उन्होंने एक आश्चर्यजनक दृश्य देखा—युवती के नाभि प्रदेश से दोनों जाँघों के बीच तक के हिस्से में गोल काली छाया घिर गयी और सहसा महाकाली का आविर्भाव हुआ। यह दृश्य देखकर वे रोमांचित हो उठे। अपने मस्तक पर बार-बार पुष्पांजलि देने के पश्चात् साष्टांग प्रणाम किया। गुरुदेव की यह कैसी लीला है, देवी भगवती का यह कैसा खेल है ? वे स्तंभित होकर देखने लगे—युवती का मुखमण्डल लाल हो गया है, ओंठ काँप रहे हैं। उसकी चंचल आँखों के कटाक्षों से तड़ित वेग कामोत्तेजना निकलकर उनमें

संचारित होने लगा। अपनी विचलित अवस्था अनुभव करते ही उन्होंने युवती को चले जाने का निर्देश दिया।

युवती के चले जाने के बाद उन्होंने होमकुण्ड के आगे मस्तक नवाया। इधर युवती के जाते ही कुलदानन्द में अदम्य कामोत्तेजना उत्पन्न होने लगी। प्राणायाम, कुंभक आदि से उसका शमन करना चाहा, पर ऐसा नहीं हो सका। आसन्न विपत्ति से घबड़ाकर वे आसन से उठकर खड़े हो गये। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर युवती की काम वासना उनमें क्यों संचारित हुई। क्या यह गलत कार्य किया ?

वे अहरह काम-पीड़ा से बेचैन रहने लगे। युवती अपनी काम-पीड़ा से मुक्ति पा चुकी थी। लेकिन कुलदानन्द की हालत खराब होने लगी। शायद गुरुदेव ने युवती पर दया करके मेरे विषम अनुष्ठान की हठकारिता से असंतुष्ट होकर, उसकी काम-पीड़ा को मुझमें संचारित कर दिया। अब इससे कैसे मुक्ति मिल सकती है, यही बात वे दिन-रात सोचने लगे। बाद में एक दिन उन्होंने निश्चय किया कि अब कठोर-साधना करूँगा। अपने भोजन में एक चौथाई कमी कर दी। जंगल में जाकर साधना करने लगे। निद्रा से दूर रहने के लिए बिस्तर का प्रयोग बन्द कर दिया। सामने धूनी जलाकर खड़े-खड़े साधना करने लगे। कभी-कभी चहलकदमी करते हुए नाम जपने लगे। जब नींद से परेशान हो जाते तब खड़े-खड़े झपकी ले लेते थे। तीन वक्त स्नान, अम्ल, कटु, मधुरस का त्याग कर दिया। इससे कुछ लाभ हुआ, पर पूर्ण रूप से उन्हें मुक्ति नहीं मिली।

अन्त में उन्होंने गुरुदेव को विस्तार से एक पत्र लिखा और अपनी मुक्ति का उपाय पूछा। वहाँ से कई पत्र आये। गुरुभाई हरिमोहन ने लिखा—"तुम्हारा पत्र पाकर गुरुदेव ने तीन बार 'मा भैः, मा भैः, मा भैः' कहा, बाद में कुछ देर चुप रहने के बाद बोले—'हरेर्नाम, हरेर्नाम, हरेर्नामैव केवलम्, कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा'। इसके बाद तुम्हें अभय देने के लिए पत्र लिखने को कहा। तुम निर्भय हो जाओ।"

गुरुदेव के पुत्र योगजीवन ने लिखा—"गाँव में अशान्त हो तो ढाका के आश्रम में चल जाओ। परेशान मत हो। हम लोग आ रहे हैं।"

इसी प्रकार श्रीधर तथा गुरु-पत्नी के पत्रों में भी अभय दान दिया गया था।

बड़े आश्चर्य की बात यह हुई कि इन पत्रों को पढ़ने के बाद कुलदानन्द की सारी बेचैनी दूर हो गयी। उसकी काम-पीड़ा की ग्लानि क्षण भर में गायब हो गयी। मन की मलिनता साफ हो गयी। गुरुदेव के उद्देश्य से उन्हें प्रणाम करते हुए कुलदानन्द ने भगवान् को धन्यवाद दिया।

इस बार बहुत दिनों के बाद अर्द्धोदय योग आने के कारण पूर्वी बंगाल के हजारों लोग गंगा नहाने जाने की तैयारी कर रहे हैं। माँ ने कुलदानन्द से कहा—"मैं तो तीर्थयात्रा पर जा रही हूँ। कब तक लौटूँगी, पता नहीं। इन दिनों मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। तीर्थयात्रा से लौटने के बाद तेरी शादी कर दूँगी।"

कुलदानन्द ने कहा—"माँ, मैंने निश्चय किया है कि मैं ब्रह्मचारी जीवन व्यतीत करते हुए धर्म-कर्म करूँगा। विवाह कर लेने पर मेरी सभी पुरानी बीमारियाँ उभड़ आयेंगी। मैंने गुरुदेव से ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा ले ली है।"

सारी बातें सुनने के बाद माँ ने कहा—"अगर तू शादी या विवाह न करे तो गृहस्थी

में कोई परेशानी नहीं होगी। मेरे अन्य सभी लड़के तो शादीशुदा हैं। तेरे सुख के लिए ही मैं शादी के बारे में कह रही थी। अब अगर तुझे पसन्द नहीं है तो जाने दे। गृहस्थी में कोई सुख नहीं है बल्कि परेशानियाँ अधिक हैं। अगर धर्म-कर्म लेकर दिन गुजारना चाहता है तो वही कर।"

माँ की सरलता से प्रसन्न होकर कुलदानन्द ने कहा—"माँ, अगर आप मुझ पर प्रसन्न होकर अपनी अनुमति दें तो मैं गुरुदेव के पास रह सकता हूँ। उन्होंने तुम्हारी सेवा करने के लिए यहाँ भेजते हुए कहा था—जाकर माँ की सेवा करो। तुम्हारी सेवा से संतुष्ट होकर अगर माँ तुम्हें कर्म-बन्धन से मुक्ति दे दें तो तुम यहाँ आकर रह सकते हो।"

माँ ने तुरत कहा—"मैं तो तेरी सेवा से काफी संतुष्ट हूँ। अपने कर्म से मैं आज ही छुट्टी देती हूँ। घर पर रहने से धर्म-कर्म नहीं होता। गोंसाई के पास जाकर रह। इससे तेरा भला होगा और मेरा कलेजा ठंढा होगा।"

कुलदानन्द ने कहा—"गुरुदेव ने साफ-साफ कहा था कि सेवा के द्वारा माँ को संतुष्ट कर उनकी अनुमति लाना पड़ेगा। किसी तिकड़म के माध्यम से नहीं। अगर तुम वास्तव में मेरी सेवा से संतुष्ट हो तो मुझे धर्मार्थ के लिए उनके चरणों में समर्पित कर दो। इससे तुम्हें पुत्रदान का पुण्य मिलेगा।"

"मैं तो अपने जीवन में कोई धर्म-कर्म कर नहीं सकी। अगर तू करता है तो इससे मेरा भला होगा। इसमें बाधा क्यों डालूँगी। जा, मैंने तुझे गोंसाई के हाथ समर्पित कर दिया।"

कुलदानन्द माँ की बातें सुनकर पुलकित हो उठे। उन्होंने कहा—"तब मेरे गुरुदेव को एक पत्र इसी आशय का लिख दो।"

माँ ने गोस्वामी विजयकृष्ण के नाम पत्र लिख दिया। इसके बाद बोलीं—"मेरी दो बातें याद रखना। मेरे मरने के बाद ब्राह्मण को दान देना और जब तक जीवित रहना तबतक भरपेट भोजन करना।"

"मेरी हालत तो जानती हो माँ। अगर कभी भरपेट भोजन न मिला तो क्या करूँगा?"

"मेरा आशीर्वाद है तुझे कभी इसकी कमी नहीं होगी।"

माँ को काशी भेजकर कुलदानन्द ढाका चले आये। यहाँ आने पर पता चला कि गुरुदेव वृन्दावन से आ गये हैं।

बहुत दिनों के बाद आश्रम में आने के कारण सभी गुरुभाई प्रसन्न हो गये। गुरुदेव के निर्देशानुसार नित्य कुलदानन्द को महाभारत पाठ करना पड़ता था। एक दिन जब वे नित्य की तरह पाठ कर रहे थे, ठीक इसी समय गुरु बहन श्री मनोहरा दीदी आयीं। वे गुरुदेव की प्रत्यक्ष घटना के बारे में कहने लगीं—"पिछले वर्ष चैत्र में गुरुदेव जब पूर्णकुंभ मेला के अवसर पर हरिद्वार गये थे तब अनेक गुरुभाई और बहनों के साथ वे भी गयी थीं। गंगा में स्नान करते समय उन्होंने देखा कि गंगा के गर्भ में लाल, पीला, काला, नीला आदि रंगीन चक्र की तरह पत्थर बिखरे पड़े हैं। स्नान करते वक्त अपनी पसन्द का एक पत्थर वे साथ लेती आयीं। गेण्डरिया आकर उस पत्थर से पेपरवेट का काम लेने लगीं। इन दिनों उस पत्थर के कारण परेशानी में फँस गयी हैं।"

उन्होंने कहा—"टेबुल पर उसे रखा है। पता नहीं, क्यों अक्सर उस पत्थर में महादेवी

और महादेव के दर्शन होते हैं। पिछली रात को पत्थर को कहते सुना—'गंगा में बड़े आनन्द से था। पता नहीं, यहाँ क्यों लाकर रखा है। बड़ी तकलीफ हो रही है।' यह सब क्या है, समझ नहीं पा रही हूँ।"

कुलदानन्द इस विचित्र कहानी को सुनकर चुप रह गये। कुछ देर बाद गुरुदेव ने कहा—"हरिद्वार के गंगागर्भ के पत्थरों को गौरीशंकर कहा जाता है। महादेव और पार्वती उसमें रहते हैं। अगर पूजा न करना हो तो ऐसी शिला नहीं रखनी चाहिए।"

दीदी ने उस पत्थर को कुलदानन्द को सौंपते हुए कहा—"भाई, मैं इसे नहीं रख सकती। अब तुम्हें जो कुछ करना है, करो।"

एक दिन बातचीत के सिलसिले में गुरुदेव ने कहा—"विशुद्ध सात्त्विक शरीर नाम-साधन से प्राप्त होता है। श्वास-प्रश्वास में नाम करते रहने पर शरीर सात्त्विक बन जायगा। श्वास-प्रश्वास से ही शरीर की रक्षा होती है, श्वास-प्रश्वास का कार्य शरीर के प्रत्येक परमाणु में हो रहा है। खून भी श्वास-प्रश्वास से ही स्वच्छ होता है और संपूर्ण शरीर में वह संचारित होता है। इसी श्वास-प्रश्वास के साथ जब नाम गुँथ जायगा तब प्रति श्वास-प्रश्वास में अपने आप नाम चलता रहेगा। उस वक्त शरीर में जिस प्रकार श्वास-प्रश्वास अन्य कार्य करेगा, उसी प्रकार नाम भी प्रत्येक परमाणु में चलता रहेगा। इस प्रकार संपूर्ण शरीर नाममय हो जायगा।"

एक प्रश्न के उत्तर में गुरुदेव ने कहा—"सद्गुरु का सहारा पाने पर कर्म अपने आप समाप्त हो जाता है। आग के ऊपर काफी लकड़ी लाद देने पर धुआँ ही धुआँ होता है। और जब उसे हवा मिलती है तब भक् से जल उठती है। इसके बाद वह भस्म हो जाती है। इसी प्रकार गुरु प्रदत्त शक्ति भी अनेक जन्मों के कर्मरूपी कूड़े के नीचे से धीरे-धीरे अपना कार्य करती रहती है, उस कूड़े को धीरे-धीरे नष्ट करते-करते गुरु कृपा से, भक् से जल उठती है तब सभी कर्मराशि क्षण भर में नष्ट हो जाती है और शान्ति प्राप्त होती है। गुरुशक्ति अपने आप कार्य करती है।"

कुलदानन्द को ब्रह्मचर्य व्रत लिये एक वर्ष गुजर गया। गुरुदेव से निवेदन करने पर उन्होंने कहा —"अब कल से तुम एक वर्ष नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन करो।"

नित्य की तरह उस दिन कुलदानन्द गुरुदेव के सामने महाभारत पढ़ रहे थे। अचानक गुरुदेव पश्चिमोत्तर दिशा में आकाश की ओर देखते हुए बोल उठे—"आहा, कितना सुन्दर। कितना सुन्दर !! सोने का रथ, कितनी शोभा है, पीली पताकाएँ उड़ रही हैं। चारों ओर देवकन्याएँ हैं। सभी चँवर डुला रही हैं। आज गुणों के सागर विद्यासागर जा रहे हैं—स्वर्ग की ओर। हरिबोल, हरिबोल।"

इतना कहने के बाद गुरुदेव ने आँखें मूँद लीं और समाधिस्थ हो गये। कुलदानन्द को समझते देर नहीं लगी कि आज ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का स्वर्गवास हो गया।

बातचीत के सिलसिले में कुलदानन्द ने प्रश्न किया—"गुरुदेव ऊर्ध्वरिता कैसे हो सकता हूँ ?"

गोस्वामीजी ने कहा—"ऊर्ध्वरिता होना साधारण बात नहीं है। यह सब के लिए संभव नहीं है। इसके लिए कोई निश्चित समय भी नहीं होता है और कभी-कभी तीन दिन के भीतर साधक को हो भी जाता है। किसी को तीन महीने में तो किसी को तीन साल में और किसी

को और भी समय लगता है। तुम्हारा वीर्य काफी नष्ट हो गया है। जरा समय लगेगा। चिन्ता की बात नहीं है। अगर नियम से चलते रहोगे तो अच्छा होगा। अब से अपनी नजर पैरों के अँगूठे की ओर रखना। दूसरी ओर मत देखना। अँगूठे की ओर न रख सको तो नासाग्रे में रखना। लेकिन इससे सिर पर गरमी चढ़ जाती है। पैर के अँगूठे पर रखने से दिमाग ठंढा रहता है। अँधेरी रात को भी इधर-उधर मत देखना। सर्वदा सिर झुकाये रहना।''

अचानक एक दिन गोस्वामी अपने शिष्यों के साथ शान्तिपुर आये। यहाँ आपकी माताजी रहती हैं जो इन दिनों अस्वस्थ थीं। गोस्वामीजी गाँव आये हैं, सुनकर आसपास के गाँव के लोग काफी तादाद में दर्शन के लिए आने लगे।

एक दिन बातचीत के सिलसिले में गोस्वामीजी अपनी साधना-जीवन की कहानी सुनाने लगे। लोगों के इस प्रश्न पर कि शान्तिपुर में जन्म लेनेवाले संतों में श्री लोकनाथ ब्रह्मचारी जीवित हैं या नहीं।

गोस्वामीजी ने कहा—''अब जीवित हैं या नहीं यह नहीं जानता। लेकिन हिमालय में एक ऐसे महापुरुष का दर्शन मैंने किया था जो इसी शान्तिपुर के निवासी थे। मैं जब किसी संत के पास जाकर गुरु बनाने की प्रार्थना करता तब वे कहते कि तुम्हारे गुरु निर्दिष्ट हैं। समय आने पर उनसे मुलाकात हो जायगी। इधर मैं गुरु की तलाश में चक्कर काटा करता था। उन्हीं दिनों मैं हिमालय के अनेक दुर्गम स्थानों, लामा गुरुओं के मठों में चक्कर काटता रहा। कई बौद्ध योगियों की जबानी सुना कि झरना के ऊपर, जंगल के भीतर एक गुफा है। उसी के पास ही एक ऊँचा पहाड़ है, वहाँ एक बंगाली महापुरुष युगों से मौजूद हैं। वे दिन-रात समाधिस्थ रहते हैं। समय-समय पर आसपास के गुफाओं में रहनेवाले उनके शिष्य बाहर आकर उन्हें चैतन्य करते हैं। इन महापुरुष के बारे में विवरण पाकर मैं उनका दर्शन करने के लिए व्याकुल हो उठा। हिमालय की दुर्गम पहाड़ियों को पार करते हुए जंगल के भीतर से उस अज्ञात महापुरुष के पास रवाना हो गया। दो दिन, दो रात मुझे भूख-प्यास की परवाह नहीं हुई। तीसरे दिन मेरी हालत बहुत खराब हो गयी। थककर एक वृक्ष के नीचे बेहोश होकर गिर पड़ा। भगवान् की माया भी अजीब है। एक नंगे पहाड़ी वृद्ध संन्यासी मेरे पास आये और उन्होंने मुझे स्वस्थ किया। बाद में मेरे हाथ पर छोटे-छोटे न जाने किस पौधे का बीज रखते हुए बोले—'बच्चा, यह दाना खा लेना। इससे तुम्हारी भूख-प्यास मिट जायगी। जितने दिनों तक पर्वत पर रहोगे, उतने दिनों तक रोज दो-एक दाना करके खा लेना। इससे तुम्हें कभी भूख-प्यास नही लगेगी।' मैंने एक दाना खाया और मेरी भूख-प्यास गायब हो गयी। मैं जब तक पहाड़ पर था तब तक नित्य उन बीजों को खाता रहा। उक्त पहाड़ी संत से बंगाली संत के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा—'हाँ, वहाँ एक बाबाजी रहते हैं। कभी-कभी झरना में स्नान के लिए आते हैं और बिजली की तरह चले जाते हैं। लम्बी जटाएँ हैं जिसमें से पानी झरता है। इधर से चले जाओ, मिल जायँगे।' इतना कहकर वे जंगल में चले गये। मैं संत द्वारा बताये मार्ग से उक्त बंगाली महापुरुष के समीप आया। दो शिष्य उनकी सेवा में लगे हुए थे। वे अनावृत्त स्थान पर समाधि लगाये बैठे थे। रात को बरफ से ढँक जाते हैं। दूसरे बरफ में अम्बार के अलावा कुछ दिखाई नहीं देता। जैसे-जैसे दिन चढ़ता है, वैसे-वैसे बरफ गलता जाता है और तब महापुरुष प्रकट होते हैं। उस वक्त महापुरुष के सामने दोनों शिष्य आग जला देते हैं। इसके बाद ठीक समय पर उनके मुँह में गरम चाय डाल देते हैं।

लगभग ११ बजे उन्हें होश आता है। बौद्ध संन्यासी हमेशा चाय पीते हैं। वहाँ चाय के बड़े-बड़े पौधे हैं। उन पौधों के पत्ते सुखाकर रखे जाते हैं। वहाँ की गायें जब दूध के भार से घबड़ा उठती हैं तब कहीं-कहीं वे गिरा देती हैं, जो तुरत जम जाता है। महात्मा लोग उस दूध को खोजकर लाते हैं। गरम पानी में गिरते ही वह शुद्ध दूध बन जाता है। चाय में वे चीनी नहीं डालते। कुछ ऐसे पौधे वहाँ हैं जिनकी पत्तियाँ चाय में डालने पर वह चीनी का काम देती हैं।"

"क्या आपकी उनसे बातचीत हुई थी ?"

गोस्वामीजी ने कहा—"हाँ, अपना परिचय देते हुए उन्होंने बताया कि उनका जन्म शान्तिपुर यानी इसी गाँव में हुआ है और उपनयन के पश्चात् वे विरागी होकर उधर चले गये। कुछ देर तक मुझे उपदेश देते रहे जैसा कि अब मैं तुम लोगों को बताता हूँ।"

बातचीत के सिलसिले में कुलदानन्द ने पूछा—"जिन नियमों का मैं पालन कर रहा हूँ, कितने दिनों में सिद्धि प्राप्त होगी ?"

गोस्वामीजी ने कहा—"सिद्धि क्या ? थोड़ी शक्ति प्राप्त कर लेने को सिद्धि समझते हो ? षड़ैश्वर्य तुच्छ विषय है। इसके प्रति कभी आसक्ति मत रखना। जिस अध्यवसाय से साधन भजन कर रहे हो, उससे अगर ऐश्वर्य प्राप्त करने की इच्छा रखो तो एक साल के भीतर बहुत ऐश्वर्य प्राप्त कर सकते हो। अगर एक साल वीर्य धारण कर सत्य वाक्य, सत्य चिन्ता और सदव्यवहार कर सको तो पर्याप्त ऐश्वर्य प्राप्त कर सकोगे। लेकिन इसे सिद्धि नहीं कहते। जब शरीर की प्रत्येक इन्द्रियाँ, अंग-प्रत्यंग आदि अपने आप भगवान् का नाम लेंगे तभी समझना कि सिद्धि प्राप्त हुई है। किसी विषय पर लोभ या आसक्ति रहने पर यह प्राप्त नहीं होती। सभी मामले में निर्लोभी और अनासक्त रहना पड़ेगा। यह स्थिति आ जाने पर ही नाम में रुचि उत्पन्न होती है। यही है वास्तविक सिद्धि।"

आज कुलदानन्द की समझ में आया कि साधना क्या है, सिद्धि क्या है और ऐश्वर्य क्या है ?

इसी तरह दिन बीतते गये। एक दिन सुबह साधन करते समय अजीब सी जलन महसूस हुई। कुलदानन्द चिन्तन करने लगे—आज छह वर्ष हो गया दीक्षा प्राप्त किये, निरन्तर मैं निष्ठापूर्वक साधन-भजन करता आ रहा हूँ, पर अपने जीवन में किसी प्रकार की उन्नति नहीं देख रहा हूँ। क्या बचपन की उन गंदी आदतों से आज तक लिपटा हुआ हूँ, क्या उन दोषों से मुक्त नहीं हो सका ? आखिर इन सबसे कब छुटकारा मिलेगा ? कब तक इन रिपुओं से लड़ना पड़ेगा ? गुरु की कृपा से इतना जरूर हुआ कि काम-रिपु से मुक्ति मिल गयी, पर लोभ की अग्नि में जल रहा हूँ। गुरुदेव के साथ रहने पर मैं तमाम अवगुणों से मुक्त हो जाऊँगा, यही कामना थी। लेकिन अपने लोभ पर विजय नहीं पा रहा हूँ। भगवान् की आराधना के लिए ही घर-द्वार, परिवार आदि छोड़कर आया हूँ और यहाँ मिला क्या ?

जब यह ऊहापोह सहन नहीं हो सका तब कुलदानन्द गुरु के पास अपना दर्द कहने गये। सारी बातें सुनने के बाद गुरुदेव ने कहा—"इतना परेशान क्यों हो रहे हो ? एक बार में सब कुछ नहीं होता। बार-बार प्रयत्न करो। अगर असफलता ही मिलती है तो सब कुछ उन पर छोड़कर केवल नाम जपते रहो। सारे उपद्रव धीरे-धीरे कट जायँगे। जब मुझ में शक्ति नहीं है तब सब कुछ छोड़कर उन पर निर्भर रहने के अलावा अन्य कोई चारा नहीं

है। मन को साफ करके, सरल भाव से उनसे निवेदन करो—'प्रभो, मुझसे नहीं हो रहा है। अब आप मेरी रक्षा करें।' समझ गये ?"

बातचीत के सिलसिले में गोस्वामीजी ने अपने जीवन की वास्तविक घटना का वर्णन किया। उन्होंने कहा—"एक दिन मछुआ बाजार से पैदल जा रहा था। एकाएक मेरा जूता फट गया। फुटपाथ पर एक मोची को बैठा देखकर उसे सिलने के लिए दे दिया। कितनी मजदूरी लेगा, इस बारेमें उसने कुछ नहीं कहा। जूते की मरम्मत हो जाने के बाद मैंने उसे इकन्नी दी। उसने दो पैसे मुझे वापस किये और अपना सामान समेटकर झोले में रखा। इसके बाद डेरा उठाकर चल पड़ा। मुझे जरा आश्चर्य हुआ। उसके पीछे-पीछे मैं चल पड़ा। वह गंगा के किनारे बाबूघाट के पास आया और अपना सामान सड़क के नीचे एक खंडहर में रखने के बाद नीचे गंगा में स्नान करने लगा। संध्या-तर्पण करने के बाद वह खिदिरपुर की ओर रवाना हुआ। मैं कुछ दूरी बनाकर उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। आगे जाकर वह एक मकान के भीतर गया। मैं भी उसके पीछे मकान के दरवाजे पर आ गया। अतिथि समझकर एक आदमी मुझे मकान के भीतर ले आया। भीतर जाकर देखा कि वह मोची महन्त है। उसके अनेक शिष्य हैं। अखाड़े में विग्रह प्रतिष्ठित है। काफी धूमधाम हो रही है। यह सब देखकर मैं अवाक् रह गया। मैंने महन्तजी से पूछा—आपके इतने शिष्य और सेवक हैं, स्वयं महन्त हैं, जाति से ब्राह्मण हैं, कोई कमी नहीं है, फिर आप मोची का काम क्यों करते हैं ?"

महन्तजी मेरे इस प्रश्न को सुनकर रो पड़े और हाथ जोड़ते हुए, गुरुदेव को स्मरण कर बार-बार नमस्कार करते हुए उन्होंने कहा—"मेरे गुरु बड़े दयालु थे। एक दिन अतिथि के भोजन करने के पूर्व ही मैने खाना खा लिया था। इस अपराध के कारण मुझे डाँटते हुए उन्होंने कहा—'अरे, तू साधु क्यों हुआ ? तू तो चमार है। गुरुदेव के वाक्य का मैं उल्लंघन नहीं कर सकता। इसीलिए मैं उसी दिन से चमार वृत्ति अपनाकर जीविका निर्वाह कर रहा हूँ। दिन भर जूतों की मरम्मत करने के बाद अपने भोजन के लिए चार आने कमाता हूँ। ज्योंही यह रकम हो जाती है त्योंही मैं चल देता हूँ। अपने तिरोधान के पूर्व गुरुदेव ने इसीलिए मुझे अपनी गद्दी पर बैठाया है। इतना होने पर भी, भरसक चमार वृत्ति के द्वारा उनकी सेवा करते हुए अपना दिन गुजार रहा हूँ। आप मुझे आशीर्वाद दें ताकि मैं गुरुदेव के उस वाक्य की रक्षा आजीवन करता रहूँ।"

"इस संत की कहानी सुनकर मुझे प्रतीत हुआ कि इस प्रकार के अनेक महात्मा छद्मवेष में यहाँ-वहाँ हैं, जिनके बारे में हमें कोई जानकारी नहीं है। उनके बाहरी रूप, आचार-व्यवहार और पहनावा देखकर उन्हें आसानी से पहचाना नहीं जा सकता। साधारण व्यक्ति इन्हें कभी नहीं पहचान सकता। इस घटना के बाद से जब मैं घर से बाहर निकलता हूँ तब सड़क से गुजरनेवाले प्रत्येक स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, डोम-चमार, कुली-गाड़ीवान आदि सभी को नमस्कार करता चलता हूँ। लोगों की भीड़ में भी छद्मवेषी संतों को पहचान लेता हूँ।"

ब्रह्मचर्य व्रत देते समय गोस्वामीजी ने कुलदानन्द से कहा था कि महिलाओं से दूर रहना श्रेयस्कर है। वह चाहे युवती हो या वृद्धा, या बालिका क्यों न हो। उनसे बातचीत भी नहीं करना चाहिए। इससे वास्तविक ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं होती। स्त्री-देह ऐसे उपादानों से निर्मित है कि वह पुरुषों के शरीर को आकर्षित करती है। लेकिन कुलदानन्द इस आज्ञा का

पालन करने में चूक जाते थे। पैर के अँगूठा दर्शन करने के बदले उनकी निगाहें इधर-उधर फिसल जाती थीं। उनकी हार्दिक इच्छा रहती थी कि महिलाएँ उन्हें देखें और आकर्षित हों।

इसी बीच एक दिन छोटे भइया आये और कहा कि माँ तुम्हें बहुत याद करती हैं। रोहिणी का विवाह होनेवाला है। जल्द घर चले जाओ। इस समाचार को सुनते ही कुलदानन्द ने गोस्वामीजी से घर जाने की अनुमति माँगी।

गोस्वामीजी ने कहा—"ऐसे अवसरों पर जरूर जाना चाहिए। कुछ दिनों तक माँ की सेवा करने का अवसर मिलेगा।"

गोस्वामीजी से आज्ञा लेकर कुलदानन्द बूढ़ी गंगा के तट पर आये। एक नाव जा रही थी, उस पर सवार हो गये। काफी दूर आने के बाद तूफानी हवा चलने लगी। यात्रियों ने मल्लाहों से नाव को किनारे लगाने को कहा। मल्लाहों ने इस बात को अनसुनी करके पाल टाँग दी। अब नाव तेजी से आगे बढ़ने लगी। माझी आँधी-तूफान से डरते नहीं। थोड़ी देर बाद गरज के साथ पानी बरसने लगा। माझी पाल उतारने लगे, पर उन्हें सफलता नहीं मिली। नाव लहरों पर नाचने लगी और बार-बार करवट लेने के कारण सभी लोगों की हालत खराब होने लगी। यह देखकर कुलदानन्द मन ही मन अपने गुरुदेव को स्मरण करने लगे। सहसा उन्हें लगा कि गोस्वामीजी उन्हें एक टक देख रहे हैं। तभी उल्लास के साथ कुलदानन्द ने चीखते हुए कहा—"आप लोग डरिये नहीं। ठाकुर हमारी रक्षा करेंगे। शान्त होकर बैठे रहें।"

ठीक इसी समय तेज हवा का एक झोंका आया और पाल फटकर टुकड़े हो गया। पाल के फटते ही नाव तीर की तरह आगे बढ़कर किनारे अपने आप लग गयी। किनारे उतरने-वाले यात्रियों ने कहा—"साथ आये साधु के कारण आज हम सब बच गये।"लोगों की बातें सुनकर कुलदानन्द ने मन ही मन गुरुदेव को नमस्कार किया।

घर में विवाह-कार्य सम्पन्न होने के बाद कुलदानन्द पुनः आश्रम चले आये। अब उन्हें गोस्वामीजी के सान्निध्य में रहने पर प्रसन्नता होती है। बरसात का मौसम था। होम तथा प्राणायाम करने के बाद आसन पर बैठे थे। बाहर तेज बारिश हो रही थी। एकाएक उन्होंने सोचा—अगर ऐसे समय में घर पर रहते तो लाई-चना खाते। पाँच-सात मिनट बाद उन्होंने देखा कि विधु घोष महाशय की लड़की दामिनी एक कटोरे में लाई-चना और साथ में मिर्च और भूने हुए कटहल के बीज लायी। उसने कहा—"माँ ने आपको खाने के लिए दिया है।"

इसी प्रकार एक दिन उन्हें केला खाने की इच्छा हुई, तभी फणीभूषण ने पाँच केलों का गुच्छा लाकर देते हुए कहा—"नानीजी ने आपके खाने के लिए भेजा है।"

इस घटना के कई दिनों बाद एक दिन मुसलाधार वर्षा हो रही थी। कमरे से बाहर निकलना कठिन था। आसन पर बैठे-बैठे कुलदानन्द ने कहा—"ठाकुर, इस समय गरम-गरम चाय एक कप मिल जाती तो आनन्द आ जाता।" अभी मुश्किल से ५-६ मिनट भी नहीं हुए थे कि श्री कुंज घोष गरम चाय और मोहनभोग ले आये और बोले—"क्या आप बीमार हैं ? गोस्वामीजी ने आपके लिए चाय और मोहनभोग भेजा है।"

कुलदानन्द अपनी इच्छा की पूर्ति इस तरह होते देख विस्मय से अवाक् रह गये। कुलदानन्द अभी तक यह भाँप नहीं सके कि गुरु कृपा के कारण उनकी अतीन्द्रिय-शक्ति शनैः-शनैः जाग रही है। उनकी साधना अपने प्रभाव का विस्तार कर रही है।

एक दिन वे भोर के वक्त स्नान, संध्या आदि समाप्त करने के बाद जब होम करने लगे तो अचानक बड़े दादा की याद सताने लगी। न जाने क्यों उन्हें देखने के लिए मन व्याकुल हो उठा। उनके मन ने कहा —तुरत दादा के पास चलो। जबकि दादा ने बुलाया भी था।

इसी ऊहापोह में गुरुदेव के पास आये और अपनी उलझन बतायी। गोस्वामीजी ने कहा—"तुम्हें अपने दादा के पास जाकर उनकी सेवा करनी चाहिए। अब तक वे अयोध्या में थे तो सत्संग मिलता रहा। इन दिनों वे जहाँ है, वहाँ कोई सुविधा नहीं है। अभी घर जाकर माँ से मिल लो और फिर तुरत पछाँह चले जाना। एक बात याद रखना, जहाँ भी रहना, वहाँ नियमित चण्डीपाठ और होम करते रहना। ब्राह्मणों को अग्नि सेवा करनी चाहिए। सत्संकल्प के साथ होम करोगे तो सिद्ध हो जाओगे।"

दूसरे दिन गोस्वामीजी को प्रणाम कर वे घर की ओर रवाना हुए। कई दिनों बाद माँ ने दादा के पास जाने की आज्ञा दी। सियालदह स्टेशन से उतरकर उन्होंने सोचा कि छोटे भइया यहाँ रहते हैं, उनसे मुलाकात करता चलूँ। लेकिन मुश्किल में पड़ गये। छोटे भइया मछुआ बाजार या झामापुकुर में रहते हैं, यह पता नहीं। मकान नं० १२ है, इतना स्मरण है।

कुली के सिर पर बोझा लादकर शहर की ओर चल पड़े। उन्हें अनुभव हुआ की गुरुदेव उनके आगे-आगे चल रहे हैं। कुछ दूर आगे बढ़ने पर चौराहा आया तो कुली ने पूछा—"बाबू, किधर चलूँ ?"

यह बात सुनकर कुलदानन्द पसोपेश में पड़ गये। जब व्यक्ति को यही नहीं मालूम कि उसका सही पता क्या है। तभी एक ओर से आवाज आयी—"कुलदा, यहाँ कैसे ? चलो घर।"

यह आवाज छोटे भइया की थी। जिन खोजा, तिन पाइयाँ वाली स्थिति हो गयी। कुआँ स्वयं ही प्यासे के पास आ गया। कुलदानन्द समझ गये कि यह घटना भी गुरुदेव की कृपा है। उस दिन दिनभर गुरुदेव के प्रति अभिभूत रहे।

गुरुदेव की आज्ञा थी कि कहीं भी जाओ, वहाँ भिक्षा माँगकर स्वयं बनाकर खाना। प्रथम दिन छोटे भइया के यहाँ भोजन हुआ। दूसरे दिन अचिन्त्य बाबू के यहाँ से भीख लेकर खिचड़ी चूल्हे पर चढ़ा दी गयी और लगे गप लड़ाने। नतीजा यह हुआ कि खिचड़ी जलने लगी। महक लगते ही अचिन्त्य बाबू ने कहा—"गप लड़ाना बन्द करो। खिचड़ी चौपट हो गयी।"

कुलदानन्द दौड़े गये तो देखा—धुएँ से कमरा भर गया है। चटपट खिचड़ी चूल्हे से उतारकर थाली में फैला दी गयी। गुरुदेव को जली खिचड़ी का भोग देकर वे होम करने लगे। बाद में दो-तीन लोगों को बुलाकर खिचड़ी खाने बैठे। सभी को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जल जाने पर भी खिचड़ी बहुत अच्छी बनी थी। उसमें जल जाने का गंध नहीं थी।

तीसरे दिन खिचड़ी पुनः बनाने लगे। इस दिन महेन्द्र भाई के यहाँ से भीख लाये थे। महेन्द्र ने पूछा —"सारा सामान दे दिया। अब और क्या चाहिए ?"

कुलदानन्द ने कहा—"अगर नारियल मिल जाता तो कतरकर छोड़ देता।"

महेन्द्र ने कहा—"अब इस वक्त नारियल कौन लायेगा ? पहले मालूम होता तो मँगा लेता।"

भोग लगाकर होम करने के बाद मित्रों के साथ कुलदानन्द खिचड़ी खाने लगे। सभी को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि खिचड़ी में नारियल के टुकड़े मिलने लगे।

कलकत्ता से चलकर कुलदानन्द भागलपुर आ गये। यहाँ गुरुभाई मनोरंजन गुहठाकुरता से मुलाकात करनी थी। बातचीत के सिलसिले में मनोरंजन की पत्नी श्रीमती मनोरमा ने भी गुरुदेव की असीम कृपा का उल्लेख किया।

मनोरंजनजी ब्राह्मधर्म के सशक्त प्रचारक थे। दीक्षा लेने के बाद उनके उत्साह में कमी होने लगी। दिन-रात भजन-पूजन करने में लगे रहते थे। परिवार में वे, उनकी पत्नी, ७ बच्चे और कई फालतू प्राणी थे। कैसे खर्च चलता है, समझ में नहीं आया। मनोरंजन ने बातचीत के सिलसिले में बताया कि गोस्वामीजी ने आदेश दिया—भागलपुर चले जाओ। गुरुदेव का आदेश सुनते ही पत्नी तुरत जाने की तैयारी करने लगी। मैं सोचने लगा कि पास में पैसे नहीं हैं। रेल का किराया कहाँ से लाऊँगा। जब पत्नी से मैंने इस बात की चर्चा की तो वे बोलीं—"मैं यह सब नहीं जानती। ठाकुर ने भागलपुर जाने को कहा है, मैं वहाँ जाऊँगी। स्टेशन पर गाड़ी छूटने तक प्रतीक्षा करूँगी। अगर ठाकुर ने रेलवे से भेजने का इन्तजाम किया तो रेल से वर्ना रेलवे लाइन के किनारे-किनारे पैदल जाऊँगी। बच्चों को लेकर तुम मेरे साथ चल सकते हो वर्ना यहीं रह सकते हो।"

"मुझे यह मालूम था कि मेरी पत्नी कभी असत्य बात नहीं कहती। जब उसने निश्चय किया है तो वह पैदल ही चली जायगी। फलस्वरूप लड़की का कंगन गिरो रखकर कुछ रुपये का प्रबंध किया और हबड़ा स्टेशन हाजिर हो गया। पास में जितनी रकम है, उससे सभी को लेकर भागलपुर जाना असंभव है। इसी ऊहापोह में था कि एक सज्जन आये और एक प्रतिष्ठित व्यक्ति का नाम लेकर कुछ रुपये देते हुए बोले कि आपके लिए कपड़े खरीदने के लिए ये रुपये भिजवाये हैं। उन्हीं रुपयों के सहारे भागलपुर आ गया। यहाँ चला तो आया, पर न कोई परिचित न कोई नौकरी। किसी प्रकार से आधा पेट खाकर दिन गुजारता रहा। एक दिन मालूम हुआ कि आज घर में कुछ नहीं है। बच्चे माँ से कहने लगे—'माँ बड़ी भूख लगी है। कुछ खाने को दो।' माँ ने कहा—'बेटा, तुम लोगों को ठाकुर बहुत मानते थे। उनसे भोजन माँगो।' कहने के साथ ही पत्नी ने गोस्वामीजी के चित्र की ओर इशारा किया। लड़के भी माँ-बाप की तरह अद्‌भुत हैं। चित्र के सामने जाकर बोले—'गोसाईजी आप कीर्त्तन बहुत पसन्द करते हैं। हम लोग कीर्त्तन करें।'

"कुछ देर बाद दरवाजे की साँकल बज उठी। दरवाजा खोलने पर देखा—कई मजदूरों के सिर पर खँचिया है। उनमें दाल, चावल, आटा, तेल, मसाला आदि सामान है। उनसे पूछा गया कि सब किसने भेजा है तो जवाब मिला—'बाबू आ रहे हैं।' देर तक आनेवाले बाबू की प्रतीक्षा करता रहा, पर कौन आता है। समझते देर नहीं लगी कि यह सब गुरुदेव की कृपा है।"

इस कहानी को सुनकर कुलदानन्द चकित रह गये। अपने गुरुदेव के अलौकिक चमत्कारों को वे स्वयं अपने जीवन में अनुभव कर चुके हैं। भागलपुर, बस्ती आदि शहरों का चक्कर काटकर कुलदानन्द गुरुदेव की सेवा में हाजिर हो गये।

एक दिन गुरुदेव ने कहा—"अब तुम्हें स्वतंत्र रूप से तपस्या करनी है ताकि तुम सिद्धि प्राप्त कर सको। जब तक इस दिशा में सफल नहीं होगे तबतक पूर्णज्ञान प्राप्त नहीं कर सकोगे।"

गुरुदेव से अलग होना पड़ेगा सुनकर कुलदानन्द व्याकुल हो उठे। लेकिन यह जानकर उन्हें संतोष हुआ कि साधना करने के लिए एकान्त में भेज रहे हैं। यहाँ साधना करने की वैसी सुविधा नहीं है।

गुरुदेव के आज्ञानुसार कुलदानन्द हरिद्वार स्थित चण्डी पहाड़ पर चले आये।

चलते समय गोस्वामीजी ने कहा—"वहाँ जाकर नियमित होम, संध्या, गायत्री पाठ करना। वहाँ शालग्राम मिल जायगा। शालग्राम को सदा साथ रखना। आसन में स्थिर होकर बैठना। साधु-संतों के साथ झगड़ा मत करना। आसन का त्याग कभी मत करना। जब तुम्हारी जरूरत होगी, तब मैं तुम्हें बुला लूँगा। मेरा आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ रहेगा।"

अप्रैल, सन् १८६८ ई० में कुलदानन्द विभिन्न शहरों का चक्कर काटते हुए हरिद्वार आ गये। चण्डी पहाड़ पर आकर के एक पेड़ के नीचे बैठकर मायापुरी (हरिद्वार) का सौन्दर्य देखने लगे। थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर चण्डी देवी का मंदिर देखा जहाँ अनेक दर्शनार्थी पूजा कर रहे थे। वहाँ जाकर उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया।

यहीं उनका परिचय आत्माराम ब्रह्मचारी से हुआ। कुलदानन्द के उद्देश्य को समझकर आत्माराम ने कहा —"चण्डी पहाड़ में साधना करना, मौत को निमंत्रण देना है। इस पहाड़ पर अजस्र हिंस्रक जानवर रहते हैं। यहाँ रात को कोई नहीं रहता। इसके अलावा नित्य यहाँ से ३-४ मील पैदल चलकर भिक्षा माँगने जाना और वापस आना कष्टसाध्य काम है। दूसरे अभी तो नील नदी पार कर लोगे, पर बरसात में इसे पार करना कठिन हो जायगा। मेरा कहना मानें तो आप अपना आसन दाम पहाड़ पर लगाइये। वहाँ मेरे अलावा अन्य कई संत हैं। हम सब आपकी मदद कर देंगे। दाम पहाड़ भी चण्डी पहाड़ का एक हिस्सा है।"

कुलदानन्द ने सोचा गुरुदेव ने यह तो नहीं कहा था कि तुम चण्डी पहाड़ पर ही तपस्या करना। पहाड़ पर करना, यही निर्देश था। इसके अलावा दाम पहाड़ चण्डी पहाड़ का हिस्सा है और ये लोग वहाँ मेरी मदद भी करेंगे। यह सब सोचकर वह दाम पहाड़ पर चला आया। कई दिन आत्माराम की कुटिया में रहने के बाद अपने लिए अलग से एक कुटिया का निर्माण कर लिया।

आसन पर बैठकर साधना करते वक्त एक नया उपद्रव प्रारंभ हुआ जिसके कारण ध्यान में मन लगाना कठिन हो गया। करोड़ों मक्खियाँ न जाने कहाँ से आकर सारे शरीर पर सवार होने लगीं। कपड़े से फटकारने पर भी भागती नहीं थीं। धुआँ देने से कोई लाभ नहीं हुआ। इनके उपद्रव के कारण एक दिन रोते हुए कुलदानन्द के मुँह से निकल पड़ा—"गुरुदेव, यह कौन-सी सजा दे रहे हो? मुझसे यह कष्ट सहन नहीं हो रहा है। इस उपद्रव से मेरी रक्षा करें वर्ना आज्ञा दें मैं इस दुनिया से विदा ले लूँ। मैं आपको स्मरण भी नहीं कर पाता।"

उस रात को कुलदानन्द ने एक स्वप्न देखा कि वे गंडेरिया आश्रम में मौजूद हैं। वहाँ कई गुरुभाई आपस में हँसी-दिल्लगी कर रहे हैं, पर किसी का ध्यान गुरुदेव की ओर नहीं है। असंख्य कुत्सित मक्खियाँ उनके सारे शरीर पर बैठी हैं। गुरुदेव निष्पन्द, निर्विकार रूप

से बैठे हैं। यह देखकर कुलदानन्द हवा करने लगे। लेकिन एक भी मक्खी भागी नहीं। यह देखकर वे गुरुदेव के शरीर से मक्खियों को पकड़कर हटाने लगे तभी नींद खुल गयी।

दूसरे दिन जब आसन पर बैठकर ध्यान करने लगे तब एक भी मक्खी दिखाई नहीं दी। गुरुदेव की कृपा हो गयी समझकर उन्होंने गुरुदेव को मन ही मन प्रणाम किया।

मई माह की बात है। कुंभक करते समय अचानक कुलदानन्द के ललाट से ज्योति प्रकट हुई। क्रमशः यह ज्योति काफी उज्ज्वल हो उठी। फिर ध्यान के साथ-साथ विलीन हो गयी। इसके दर्शन से चित्त प्रफुल्लित हो उठा। गुरुदेव के निकट उन्होंने प्रार्थना की—"गुरुदेव, आपके अनन्त सौन्दर्य भंडार में तुमसे बढ़कर कोई चीज है तो वह मेरे निकट अप्रकाशित रहे, यही आशीर्वाद मुझे चाहिए।"

दाम पहाड़ में तपस्या करते समय अनेक महात्माओं से परिचय हुआ। स्वामी शिवानन्द से कुलदानन्द को एक अद्‌भुत शालग्राम प्राप्त हुआ। इस शालग्राम को पाकर कुलदानन्द फूले नहीं समाये। दिन को भिक्षा माँगने जाते, भोजन बनाते और शेष समय ध्यान, योग, साधना में दिन गुजारते रहे।

जुलाई माह में एक बार पुनः एक नया संकट उत्पन्न हुआ। एक दिन प्राणायाम के पश्चात् खट्-खट् आवाज सुनकर कुटिया के बाहर उन्होंने देखा कि एक बहुत बड़ा साँप बेड़ा के भीतर से कुटिया में आने का प्रयत्न कर रहा है। जिस जगह से वह प्रवेश कर रहा है वहीं वे टेक लगाकर आसन पर बैठते हैं। अगर किसी सूरत से वह भीतर आने में समर्थ हुआ तो सीधे उनके ऊपर आ जायगा। कुलदानन्द पड़ोस के लोगों को आवाज देने लगे। इनकी आवाज सुनकर साँप भाग गया। वह किधर गायब हो गया, पता नहीं चला।

इधर तबतक आत्मानन्द और वरदानन्द आ गये थे। सारी बातें सुनने के बाद उन लोगों ने कहा—"एक भंयकर प्राचीन साँप इस पेड़ के नीचे के गड्ढे में रहता है। आपके आसन के नीचे से बेड़ा के भीतर तक बिल है। बेड़ा के बाहर से आपके आसन तक बिल है। दर असल आप साँप के सिर पर आसन जमाये हुए हैं। मेरे विचार से यहाँ आसन लगाना ठीक नहीं है। आप अपना आसन और कहीं लगाइये। यह साँप काफी पुराना है। अब तक इसने किसी को काटा नहीं है। यहाँ एक ऐसा साँप है, इस बात को काफी लोग जानते हैं, पर आज तक किसी ने देखा नहीं है। आप बड़े सौभाग्यवान संत हैं, सहज ही आपको दर्शन मिल गया।"

इन लोगों की बातें सुनने के बाद वे अपने आसन पर आकर नित्य क्रिया करने लगे। संध्या-होम करने के बाद अचानक साँप का ध्यान आने पर प्रार्थना करने लगे—"हे सर्पराज, कृपया मुझे क्षमा कर दीजिये। आपकी वास्तविकता न जानने के कारण मुझसे अपराध हो गया। क्या करूँ ? मानव-संस्कारवश ऐसा करना पड़ा। आपका आदर कर सकूँ, यह साहस मुझमें नहीं है। आपके दर्शन की इच्छा है, पर आप दूर से दर्शन दें। आपको प्रणाम करना चाहता हूँ।"

प्रार्थना समाप्त होने के साथ ही पुनः आवाज हुई और कुलदानन्द ने देखा कि उनका प्रणाम ग्रहण करने के लिए सर्पराज बेड़ा के भीतर प्रवेश कर झूम रहे हैं। बेड़ा के भीतर वे एक हाथ आ चुके थे। यह दृश्य देखकर कुलदानन्द की हालत खराब हो गयी। वे झटपट कुटिया के बाहर भाग खड़े हुए।

इस घटना के कई दिनों बाद गुरुदेव के आश्रम से दो पत्र प्राप्त हुए जिसमें लिखा था कि भय और संकोच वश वहाँ रहने की जरूरत नहीं है। जब इच्छा हो वापस आ सकते हो। इसी प्रकार ऊहापोह में कुछ दिन व्यतीत हो जाने के बाद पुनः एक पत्र आया—"तुम शीघ्र ढाका चले आओ। तुम जो कुछ जानना चाहते हो, यहाँ आने पर ज्ञात हो जायगा।"

इस पत्र को पाने के बाद कुलदानन्द ने वापस जाने का निश्चय किया। यहाँ आने के बाद से कभी आसपास के स्थानों में दर्शन करने नहीं गये थे। अब वापस जाने के पहले वे कनखल, हृषीकेश आदि स्थानों का दर्शन करने के बाद कलकत्ता चले आये। यहाँ आने पर ज्ञात हुआ कि आजकल गुरुदेव यहीं हैं।

उनके निकट जाने पर उन्होंने कहा—"जिस उद्देश्य से तुम्हें पहाड़ पर भेजा था, वह पूरा हो गया। अब तुम मेरे साथ रह सकते हो।"

गुरुदेव से बिछुड़ने का उन्हें बहुत कष्ट था। अब इस आज्ञा से अपार शान्ति प्राप्त हुई। कलकत्ते में गुरुदेव सुकिया स्ट्रीट में ठहरे थे और कुलदानन्द अभय बाबू के यहाँ थे। नित्य संध्या-वन्दन करने के पश्चात् वे अपने हाथ से भोजन बनाकर शालग्राम को भोग लगाकर तब कहीं जाते थे। गुरुदेव का आदेश था कि शालग्राम को सर्वदा अपने साथ रखना।

आज भोजन बनाने में देर हो गयी। जल्दी से खिचड़ी बनाकर गरम-गरम शालग्राम को भोग लगाया। इसके बाद उन्हें डिब्बे में बन्दकर गुरुदेव के पास आये। इन्हें देखते ही गोस्वामीजी ने कहा—"जल्द शालग्राम को खोलो। उन्हें अपार क्लेश हो रहा है। उन्हें हवा करो। लो यह पंखा।"

कुलदानन्द ने शालग्राम का डिब्बा खोला तो देखा—ओस की बूँद की भाँति उनके तमाम बदन पर पानी है। वे हवा करने लगे।

सन् १६०८ में गोस्वामीजी ने निश्चय किया कि पुरीधाम जाकर कुछ दिन निवास किया जाय। गोस्वामीजी की माँ स्वर्णमयी देवी ने एक बार भविष्यवाणी की थी—"पुरी जाने पर विजय फिर वापस नहीं लौटेगा।" माँ की वाणी सत्य हुई। वहीं गोस्वामीजी का तिरोधान हो गया।

कुलदानन्द की स्थिति मणिविहीन साँप की तरह हो गयी। वे अब तक गुरुदेव की छत्रछाया में थे और आज वे बिलकुल अकेले हो गये। एक दिन वे मझले भाई के यहाँ जाने के लिए रवाना हुए। उन दिनों वरदाकान्त गया में वकालत कर रहे थे। वहीं एक दिन स्वप्न में उन्होंने देखा कि गया के पहाड़ की ओर इशारा करते हुए गुरुदेव कह रहे हैं—"यहीं बैठकर साधन भजन करो।"

इस स्वप्न की चर्चा वरदाकान्त से करने पर वे बोले—"इसी पहाड़ पर गुरुदेव साधना करते रहे। बाबा गंभीरनाथ अब भी यहाँ हैं। जब गुरुदेव ने आज्ञा दी है तो जाकर तपस्या करो।"

वरदाकान्त ही नहीं, कुलदानन्द के अन्य तीन बड़े भाई भी गोस्वामीजी से दीक्षा ले चुके थे। भाई साहब से अनुमति लेकर कुलदानन्द ब्रह्मयोनि पहाड़ पर तपस्या करने आये। कपिलधारा के समीप योगी गंभीरनाथ से मुलाकात हुई। उन्होंने कहा— "साधना के लिए यह स्थान बहुत ही उपयुक्त है। तुम्हारी कामना पूर्ण होगी।"

आकाश गंगा पहाड़ के श्वापद संकुल स्थान पर वे रहने लायक एक कुटिया बनाकर तपस्या करने लगे। इधर अगर तीर्थयात्री आते और भिक्षा में कुछ दे देते तो भोजन कर लेते वर्ना उपवास पर दिन गुजार देते रहे। श्वापद संकुल क्षेत्र होने के कारण यहाँ चोर-डाकू अपना माल छिपाने के लिए आते थे। यहीं लहटन सिंह वाली घटना हुई थी जिसका जिक्र प्रारंभ में किया जा चुका है।

आकाश गंगा में दिन, सप्ताह, वर्ष गुजरते गये और एक दिन वहाँ से पूर्ण सिद्ध होकर विजयकृष्ण गोस्वामी के मानस पुत्र कुलदानन्द जगत् के सामने प्रकट हुए। अपनी विपुल शक्ति को छिपाकर वे अगणित नर-नारियों को अपने गुरुदेव की वाणी सुनाने लगे।

आपके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर कलकत्ता के हलवाई पुंटीराम की पत्नी ने अपने यहाँ कुलदानन्द को आमंत्रित किया। कुलदानन्द ने इस आमंत्रण को स्वीकार किया। पुंटीराम निस्संतान थे। पितृमातृहीन अपने एक भतीजे को उन्होंने गोद ले रखा था। भतीजा जितेन्द्र बहुत ही उच्छृंखल स्वभाव का था। पुंटीराम दम्पत्ती इस लड़के के स्वभाव से बड़े मनोकष्ट में थे। आगे चलकर वह विशाल सम्पत्ति का मालिक होनेवाला था।

सारी बातें सुनने के बाद कुलदानन्द ने उसकी मति गति को बदल दिया। इस घटना के छह माह बाद पुनः पुंटीरम के यहाँ आये। सपत्नीक पुंटीराम के अलावा जितेन्द्र को भी कुलदानन्द ने दीक्षा दी। कुलदानन्द के प्रथम शिष्य यही लोग थे।

कुलदानन्द ब्रह्मचारी के वारे में उनके गुरुभाई दरवेशजी ने लिखा है—"ब्रह्मचारीजी की कठोर-साधना को देखकर हम सभी अनुप्राणित होते थे। उनका तेजपूर्ण शरीर देखकर मुग्ध हो जाते थे। अपने जीवन में उन्होंने कभी झूठ का सहारा नहीं लिया। गुरु भाइयों के संकटपूर्ण जीवन के मार्ग को वे बाधाहीन बना देते थे। उनकी तरह उदार हृदयवाले, भ्रातृवत्सल मित्र को पाकर हम गर्व अनुभव करते थे।"

दूसरे गुरुभाई हेमेन्द्र गुहाराय का कहना है—"ब्रह्मचारीजी स्वयं केवल उबले चावल या लिट्टी सेंककर खाते थे। मगर जब हम लोग उनके यहाँ जाते थे तब तरह-तरह के सुस्वादु भोजन बनाकर हमें खिलाते थे। वे अविराम नाम-साधन में मगन रहते थे। उनके अंग-प्रत्यंग से दिव्यज्योति प्रकट होती थी। उनके शरीर से कमल पुष्प की महक निकलती थी। कुटिया का वातावरण नाम की हवा से लहराता था। उनकी यह स्थिति देखकर हम विभोर हो जाते थे। ऐसे व्यक्ति को छोड़कर आने में हमें बड़ा कष्ट होता था।"

हरिदास शास्त्री ने लिखा है— "श्रीयुक्त कुलदानन्द ब्रह्मचारी इस पहाड़ पर अकेले रहते थे। उनकी अयाचक वृत्ति थी। नित्य झरने में दो-तीन बार स्नान करते थे। दिन-रात साधन-भजन करते रहते थे। उनके शरीर की ज्योति, साधना की तीव्रता और गुरुशक्ति का प्रभाव देखकर हम चकित रह जाते थे।"

संतोषनाथ नामक एक व्यक्ति को कुलदानन्द ने दीक्षा दी। वे तेजी से नाम, कुंभक, प्राणायाम करने लगे। फलतः उनकी हालत खराब हो गयी। आफिस में काम करते-करते गुरुदेव का दर्शन करने चल देते थे। सड़क पर ठीक से चल नहीं पाते थे। अक्सर लोग उन्हें पकड़कर कुलदानन्द के पास ले आते। उस वक्त उनकी हालत देखकर उन्हें दया आ जाती। कुलदानन्द कहते—"दर्शन हमारा लक्ष्य नहीं है। अगर इस तरह का दर्शन हो तो खूब नाम

करना चाहिए। इसमें आसक्ति होने पर अनिष्ट होता है। देव-देवी का दर्शन सिद्धि नहीं है। आप मन लगाकर आफिस का काम कीजिए। कीर्तन के पीछे दीवाने न बनें।"

कुलदानन्द का यह उपदेश काम नहीं आया। समाचार मिलते ही काशी से कुलदानन्द ने एक पत्र लिखा —"आजकल तुम जो कुछ कर रहे हो, वह उचित नहीं है। अब तुम प्राणायाम-कुंभक बन्द कर दो। नित्य क्रिया संध्या, पाठ और होम करना। नाम दस-बारह बार करना।"

पत्र लिखने के बाद कहीं संतोषनाथ ध्यान न दें, इसलिए उन्होंने शक्ति का प्रयोग किया। फलस्वरूप उनका नाम जपना अपने आप बन्द हो गया। दस-पन्द्रह दिनों के बाद उनकी स्थिति ठीक हो गयी। अब वे नियमित रूप से आफिस जाने लगे।

कुलदानन्दजी उन दिनों पुरी में थे। आपके शिष्य गंगानन्दजी कटक से गुरुदेव के पास आये। जाड़े का मौसम था। गंगानन्द शाम को ही वापस लौटनेवाले थे, इसलिए अपने साथ गरम कपड़े या ओढ़ने लायक वस्त्र नहीं लाये थे। इधर गुरुदेव ने कहा—"गंगानन्द, आज रात को यहीं विश्राम करो।"

अब गंगानन्द की हालत खराब। गुरुदेव की आज्ञा के विरुद्ध कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। यह भी कह नहीं सके कि अपने ओढ़ने-बिछाने लायक कोई सामान नहीं ले आया हूँ।

उसी दिन उनके सामने एक घटना हो गयी थी। उन्हीं के एक गुरुभाई अपनी पत्नी के साथ आश्रम में आये थे। उनसे कुलदानन्दजी ने कहा—"तुम लोगों की दुर्बुद्धि के कारण कभी-कभी मुझे कष्ट होता है।"

यह बात सुनकर उपस्थित सभी लोग सन्नाटे में आ गये। गुरुभाई भी गुरुदेव का तात्पर्य न समझ पाने के कारण एक टक देखते रहे।

कुलदानन्द ने कहा—"मैंने तुमसे कहा था कि इसे ब्राह्मण का पादोदक पिलाना। यह न करके डाक्टरों के चक्कर में पड़कर न जाने कितनी रकम बरबाद कर चुके, इसीलिए कहा कि तुम लोगों की दुर्बुद्धि के कारण मुझे कष्ट होता है।"

गुरुभाई ने कहा—"गले में जनेऊ डाल लेने से कोई ब्राह्मण नहीं होता। मेरी श्रद्धा ऐसे ब्राह्मणों के प्रति नहीं है। बड़े-बड़े डाक्टर जवाब दे चुके हैं। पत्नी की इच्छा हुई कि एक बार आपका दर्शन करूँगी। इसी वजह से यहाँ आया।"

गुरुदेव के मुँह पर ऐसी बात कोई कह सकता है, इस पर उपस्थित लोग विश्वास नहीं कर सके। कुलदानन्दजी नाराज नहीं हुए। आश्रम के पास से एक उड़िया ब्राह्मण जा रहा था। पीलपाँव का रोगी था। कुलदानन्दजी ने आश्रम के एक सेवक से कहा—"जाओ, उस ब्राह्मण का पादोदक लेते आओ।"

पादोदक आने पर उक्त सज्जन ने नाक सिकोड़ा, पर पत्नी से आग्रह करने पर वह उस पानी को पी गयी। पानी पीते देर नहीं कि उसका मुरझाया चेहरा खिल उठा। कई दिनों बाद पूर्ण स्वस्थ होकर वह अपने घर चली गयी।

गंगानन्दजी ने सोचा—जब गरम कपड़े साथ नहीं लाया हूँ तब आज की रात गुरुजी

के दरवाजे पर साधन-भजन करूँगा। गंगानन्द उन दिनों ब्रह्मचर्य व्रत पालन कर रहे थे, इसलिए दूसरे लोगों के कपड़ों का उपयोग नहीं कर सकते थे।

रात साढ़े दस बजे उन्होंने आसन जमाया। थोड़ी देर बाद उन्हें हल्की गर्मी महसूस होने लगी। उन्हें लगा जैसे किसी एयर कण्डीशन कमरे में बैठे हैं। रात आराम से गुजरी। इस बीच उनके मन में यह विचार उत्पन्न नहीं हुआ कि आखिर इतना आराम इस सर्दी में कैसे मिला।

दूसरे दिन जब वे गुरुदेव को प्रणाम करने गये तब कुलदानन्दजी ने पूछा—"रात को कोई तकलीफ तो नहीं हुई थी ?"

गुरुदेव की असीम कृपा से वे आराम से रात गुजार चुके हैं, यह बात तब उनके दिमाग में उत्पन्न हुई।

प्रसिद्ध संगीतज्ञ तुकाराम भातकुलिकर कुलदानन्द के शिष्य थे। मद्रास में आयोजित संगीत-सम्मेलन में गये। वहीं उनकी आँख एक सुन्दरी गायिका से लड़ गयी। दोनों एक दूसरे पर मोहित हो गये। दोनों मिलन के लिए व्याकुल हो उठे।

सम्मेलन की समाप्ति के बाद तुकाराम उस युवती के घर जाकर ठहरे। आधी रात को एक कक्ष में जाकर दोनों एक ही बिस्तर पर सो गये। अचानक घर के सभी दरवाजे और खिड़कियाँ अपने आप खुल गयीं। प्रत्येक वातायन में श्री कुलदानन्द खड़े दिखाई दिये। यह देखकर दोनों विस्मित और लज्जित हो उठे। अब क्या करें और क्या न करें, समझ नहीं पा रहे थे। थोड़ी देर बाद यह दृश्य गायब हो गया। दोनों पुनः बिस्तर पर आये और पुनः वही दृश्य सामने उपस्थित हुआ।

विस्मित भाव से महिला ने पूछा—"क्या यह साधु तुम्हारा परिचित है ?"

तुकाराम ने अपने गुरु का विस्तृत रूप में परिचय दिया। दोनों का मोह भंग हुआ। अवैध कार्य से दोनों विरत हो गये। तुकाराम की पत्नी और बच्चे उन दिनों पुरी में थे। मद्रास से वे पुरी आये और सीधे अपने गुरुदेव के दरबार में पहुँचे।

इन्हें देखते ही कुलदानन्द ने पूछा— "तुकाराम, कैसा भोग किया ?"

तुकाराम सिर झुकाकर खड़े रहे। अगर पृथ्वी फट जाती तो शायद वहीं मुँह छिपा लेते।

कुलदानन्द अधिकतर गया के आकाश गंगा पहाड़ पर रहना पसन्द करते थे। वहाँ साधना करने की अनेक सुविधाएँ थीं और वह स्थान भी बहुत जाग्रत था। सहसा एक दिन उन्हें गंभीरनाथ ने कहा—"अब आप जल्द बनारस चले जाइये। वहाँ आपके लिए सारा प्रबंध हो गया है। गोस्वामीजी ने मुझसे कहा है कि आपको यह सूचना दे दूँ।"

कुलदानन्द आकाशगंगा से काशी आ गये। कई दिनों तक परेशान थे। इसी बीच गंभीरनाथजी के शिष्य कालीनाथ सहायता के लिए आ गये। एक के बाद एक करके गुरु की कृपा होती गयी। यहाँ उन्होंने सोनारपुरा मुहल्ले में अपने गुरुदेव के नाम पर आश्रम की स्थापना की। इसी भवन में सर्व प्रथम आश्रम की स्थापना हुई। काशी, पुरी, कलकत्ता तथा बंगाल के कई अंचलों में कलुदानन्दजी यात्रा करते रहे। इनके अलौकिक प्रभाव से अनेक लोग प्रभावित हुए जिन्हें बाद में इन्होंने दीक्षा भी दी।

कुलदानन्द ने एक बार अपनी माँ से वायदा किया था कि माँ, मैं जहाँ कहीं भी रहूँगा वहाँ से तुम्हारा प्राण छूटने के पहले पहुँच जाऊँगा। इन दिनों आपकी माँ काशीवास कर रही थीं। उनके निधन के पूर्व कुलदानन्द पहुँच गये। वेटे की गोद में सिर रखकर माँ अनन्तधाम चली गयी।

इस यात्रा के दौरान उनके शिष्य अतीन चक्रवर्ती सख्त बीमार हुए। डाक्टरों ने जवाब दे दिया। एक रात को बेहोशी की हालत में अतीन बाबू ने अनुभव किया कि गुरुदेव अपने कमंडल से उनके ऊपर पानी छिड़क रहे हैं। इसके बाद अभयदान देकर वे गायब हो गये। सहसा उनकी आँखें अपने आप खुल गयीं। उन्होंने अनुभव किया कि वे तो स्वस्थ हैं। बिस्तर से उठकर टहलने लगे। डाक्टर आया और यह दृश्य देखकर चकित रह गया।

इन्हीं दिनों आप श्री श्री सद्गुरुसंग ग्रंथ के प्रकाशन में लग गये। इस ग्रंथ में अपने गुरु श्री विजयकृष्ण गोस्वामी के बारे में प्रति दिन की घटना लिखते रहे। इस पुस्तक से श्री महादेव देसाई बहुत प्रभावित हुए थे।

अक्सर आप कीर्तन समारोह करते थे। इस कार्यक्रम में सर्वश्री विपिनचन्द्र पाल, हेमेन्द्र मित्र, देशबन्धु चित्तरंजन दास, बैरिस्टर भुवन मोहन चटर्जी, 'डान' दैनिक के संपादक सतीशचन्द्र मुखर्जी आते थे। केवल यही नहीं, अनेक विदेशी धर्मयाजक भी आप से बातचीत करते रहे। डॉ० इवान्स ने जो १२ साल तक तिब्बत में अध्ययन करते रहे, 'भारतीय तथा तिब्बती संतों का इतिवृत्त' नामक पुस्तक में कुलदानन्द के ज्ञान और दर्शन के बारे में लिखा है।

योगिराज अरविन्द ने कहा है—विजयकृष्ण ने अपने भीतर जो सत्य छिपा रखा है, वह आज भी प्रकट नहीं हुआ। सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने कहा है—'ही वाज वन ऑव दी ग्रेट रिप्रेजेन्टेटिव सेण्टस् ऑव माडर्न इंडिया।' आपकी पुस्तक श्री श्री सद्गुरुसंग पढ़कर महात्मा गाँधी, विपिनचन्द्र पाल और अश्विनी कुमार दत्त मुग्ध हो गये थे। गाँधीजी ने उन्हें राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिए बुलाया, पर कुलदानन्द को गाँधीजी का मार्ग पसन्द नहीं था। उनका कहना था—'प्रतिष्ठा सुअर की विष्ठा है।'

अपने गुरु प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी की तरह आप भी अपने शिष्यों का निरन्तर ध्यान रखते थे। यही वजह है कि गोस्वामीजी के शिष्यों में आप सर्वजन आदृत हैं। आपके एक शिष्य छकुदास थे। एक बार जब कुलदानन्दजी चन्दन नगर गये थे तब अनेक लोगों के साथ छकुदास को भी दीक्षा प्राप्त हुई थी।

छकुदास चाँदभोग गाँव में रहते थे और एक बालिका विद्यालय में अध्यापक थे। साथ ही उसी गाँव के पोस्टमास्टर भी थे। इन दोनों नौकरियों से आपको अच्छी आमदनी हो जाती थी। उनका ख्याल था कि इसी तरह सुखी जीवन वे व्यतीत करेंगे।

लेकिन यह कल्पना ख्याली पोलाव थी। अचानक उन्हें अपनी दोनों नौकरियों से हाथ धोना पड़ा। काफी दौड़धूप करने पर भी सफलता नहीं मिली और न कोई नौकरी जुटा सके। एक-एक कर घर की चीजें बिकती गयी। कुछ दिन उधार पर गाड़ी चली और बाद में लोगों ने उधार देना बन्द कर दिया।

आखिर एक दिन ऐसी हालत हो गयी कि कुलदानन्द के चित्र के आगे हाथ जोड़ते हुए रो पड़े—"ठाकुर अगर आप कृपा नहीं करेंगे तो मेरा जीना कठिन हो जायगा। मेरे सारे अपराधों को क्षमा कर दो।"

उस दिन वे रात भर रोते रहे। बेचैनी से करवट बदलते रहे। अभी नित्य कर्म से खाली हुए थे तभी दरवाजे की साँकल बज उठी। कोई तगादगीर आया है, समझकर वे घबड़ा उठे। गुरुदेव का नाम लेते हुए उन्होंने दरवाजा खोला।

सामने खड़े व्यक्ति ने प्रश्न किया—"क्या आपका नाम छकुदास मालाकार है ?"

"जी हाँ।"

आगन्तुक ने कहा—"मैं पुरी से आ रहा हूँ। ठाकुर ने मुझे भेजा है।"

"कृपया भीतर आइये।"

आगन्तुक ने पूछा—"अभी भीतर नहीं आऊँगा। आप मुझे यह बताने की कृपा करें कि आप पर कुल कितना कर्ज है ?"

"बात क्या है ?"

आगन्तुक ने कहा—"बात खास नहीं है। ठाकुर ने यह जानना चाहा है कि आप पर कितना कर्ज है ?"

इसके बाद छकु बाबू ने मौखिक रूप से बताया कि उन पर कितने लोगों का कितना कर्ज है। सारी बातें सुनने के बाद आगन्तुक ने कहा—"आप उन लोगों को बुलाइये। अभी आपका सारा कर्जा चुका दूँगा।"

यह बात सुनकर छकुदास का मन कृतज्ञता से भर उठा। वे भाव विभोर होकर बोले—"पहले आप स्नान-भोजन कर लीजिए तब बाकी बातें होंगी।"

आगन्तुक ने कहा—"वह बाद में हो जायगा। पहले ठाकुर की आज्ञा का पालन करना है।"

अब छकु बाबू क्या कहते ? उन्हें साथ लेकर वे सभी पावनादारों के यहाँ गये। सारा कर्ज चुकाने के बाद वह व्यक्ति चुपचाप गायब हो गया। छकु बाबू अवाक् रह गये।

सारा समाचार लिखकर उन्होंने गुरुदेव के पास भेजा। पुरी से पत्र आया—"ऐसा कोई आदमी यहाँ से नहीं भेजा गया था।"

सन् १९२९ में एक प्रसिद्ध साधिका कुलदानन्द से मुलाकात करने आयी। बातचीत एकान्त में हुई। उनके जाने के बाद कुलदानन्द ने अपने शिष्यों से कहा—"साधिकाजी क्या कह गयीं, जानते हो ? महाप्रस्थान का समय आ गया है। कोई हर्ज नहीं। यह शरीर हमेशा रहता नहीं।"

शिष्यों को सारी बातें समझ में आ गयी।

२६ जून सन् १९३० ई० को उन्होंने अपना पार्थिव शरीर कलकत्ता के मिर्जापुर स्ट्रीट में त्याग दिया। जाते-जाते कह गये—"जीवन-मरण में मैं सदा तुम लोगों के साथ रहूँगा।"

●
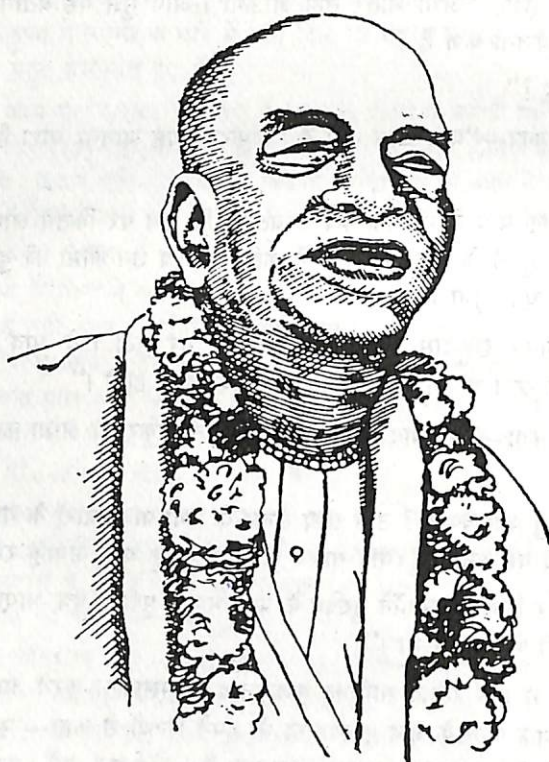
अभयचरणारविन्द भक्ति वेदान्त स्वामी

अभयचरणारविन्द वेदान्त स्वामी

संसार में भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ एक से एक महामानव उत्पन्न हुए जिन्होंने संसार को शान्ति का संदेश दिया। अतृप्त, व्याकुल मानव को सही मार्ग दिखाया। पथभ्रष्ट लोगों के जीवन में क्रान्ति उत्पन्न की। बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, गोरखनाथ, चैतन्य महाप्रभु, कबीर, रैदास जैसे रत्न यहीं पैदा हुए। इन लोगों ने तलवार के बल पर अपना संदेश नहीं फैलाया। न जुल्म ढाये और न कोई प्रलोभन दिया। फलतः ज्ञान पिपासु और शान्ति की खोज में भटकनेवाले लोग इन संतों के शरण में आकर तृप्त हो गये।

आधुनिक युग में परमहंस रामकृष्ण के अनन्य शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने पश्चिम को अपना संदेश सुनाया। यह धर्म परिवर्तन का निमंत्रण या आकर्षण मंत्र नहीं था। लाखों-करोड़ों लोगों के अशान्त हृदय को ठंढक पहुँचाने तथा दिक भ्रमितों को अध्यात्म का मार्ग बताने गये थे। यही वजह है कि महर्षि रोम्या रोलाँ से लेकर सिस्टर निवेदिता तक सभी प्रभावित हुए।

बाद में स्वामी रामतीर्थ, स्वामी अभेदानन्द आदि पश्चिम को पूर्व के अध्यात्म-चिन्तन का संदेश देने गये। इन लोगों की भावधारा से प्रभावित होकर वहाँ के लोगों ने आश्रम स्थापित किये और इन संतों के उपदेशों का प्रचार किया।

इसी उद्देश्य से संपूर्ण पश्चिमी देशों को कृष्ण नाम की महिमा बताने के लिए अभय चरणारविन्द वेदान्त स्वामी गये थे।

कलकत्ता के हरिसन रोड पर स्थित एक भवन में गौरमोहन दे रहते थे। संपूर्ण बंगाल में चैतन्य महाप्रभु का आज भी व्यापक रूप से प्रभाव है। नवद्वीप से राधाकृष्ण का नाम संगीत भारत के कोने-कोने में गूँजता रहता है जो ब्रज भूमि में जाकर एकाकार हो जाता है। दे परिवार के लोग राधाकृष्ण के अनन्य पुजारी थे। शुद्ध वैष्णव। बंगाली होते हुए भी मत्सभोजी नहीं थे। इसी परिवार में १ सितम्बर, सन् १८९६ ई० को एक बालक ने जन्म लिया। पिता ने बालक का नाम रखा—अभयचरण। पिता कपड़े का व्यवसाय करते थे। खाली समय में कृष्ण नाम के संकीर्तन में मशगूल रहते थे।

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

यही मंत्र दे परिवार का इष्ट था। खाली समय में वे चैतन्य चरितामृत पढ़ते थे। यहाँ तक कि गौरमोहन ने अपने लड़के को भी कृष्ण भक्त बना दिया। गौरमोहन चाहते थे कि उनका पुत्र कृष्ण भक्त बने, पर माँ चाहती थी कि मेरा बेटा बैरिस्टर बने। पत्नी की इच्छा सुनकर गौरमोहन असंतुष्ट हो गये। उन्होंने प्रतिवाद करते हुए कहा—"बैरिस्टरी पढ़ने के

लिए लन्दन जाना पड़ेगा। वहाँ लड़कियाँ इसे फाँस लेंगी। लड़का वहाँ जाकर शराब पीने लगेगा। मुझसे यह अधःपतन देखा नहीं जायगा।''

गौरमोहन की पत्नी रजनी देवी के मन में यह बात बैठ गयी। उन्होंने सोचा—पति का अंदेशा सही है। अब गौरमोहन ने अपने पुत्र को कीर्तन में लगा दिया। उसे मृदँग बजाने की शिक्षा दिलाने लगे। अभय की माँ ने बच्चे के जन्म के समय से ही बायें हाथ से भोजन करने लगी थी ताकि अभय रोग, संकट, अकालमृत्यु से सुरक्षित रहे। जिस दिन बालक बायें हाथ से भोजन करने का कारण अपनी इच्छा से पूछेगा, उसी दिन यह प्रतिज्ञा भंग करेगी।

अभय बचपन से नटखट रहे। हर काम में जिद्द करना उनका स्वभाव था। लेकिन माँ इस जिद्द के आगे हार स्वीकार नहीं करती थी। अपने दृढ़ संकल्प से उसे झुका देती थी। फलस्वरूप अभय को विवश हो जाना पड़ता था।

अभय कृष्ण भक्त बन गये थे। खासकर रथयात्रा मेला, रासलीला बड़ी श्रद्धा से देखते थे। घर के समीप एक मंदिर में जाकर घंटों मुग्ध भाव से राधाकृष्ण के विग्रह को देखते। इससे उन्हें अपार आनन्द की अनुभूति होती। अपने बचपन की इन अनुभूतियों का उल्लेख उन्होंने किया है।

पुरी के उत्सव की भाँति बचपन में अपनी छोटी बहन के सहयोग से रथयात्रा उत्सव मनाते रहे। एक छोटे से रथपर कृष्ण, सुभद्रा और बलराम की मूर्तियाँ बैठाकर अपने मित्रों के साथ खींचते थे। पड़ोसी इस बाल सुलभ रथयात्रा के लिए भोग का प्रबंध करते रहे।

इसी प्रकार दिन गुजरते गये। जिन दिनों वे कालेज में अध्ययन करते थे, उन्हीं दिनों उनका विवाह हो गया। आपके साथ नेताजी सुभाषचन्द्र बोस भी पढ़ते रहे जो एक क्लास सीनियर छात्र थे। सुभाषचन्द्र अपने अध्ययनकाल से ही अपने हमजोलियों को स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने के लिए आह्‌वान करते थे जिसका प्रभाव अभयचरण पर पड़ता था।

जालियां बाग हत्याकाण्ड के सिलसिले में गाँधीजी ने असहयोग आन्दोलन छेड़ा। गौरमोहन अपने लड़के को राष्ट्रीयधारा में जुड़ते देख चिन्तित हो उठे। प्रत्यक्ष रूप से वे विरोध करने का साहस नहीं कर पाते थे। परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बावजूद अभय ने डिप्लोमा नहीं लिया। पिता ने अपने एक मित्र से चर्चा की। वे दवाओं के निर्माता थे। उन्होंने अपनी कम्पनी में अभय को मैनेजर के पद पर नियुक्त कर दिया।

कुछ दिन सामान्य ढंग से गुजर गये। अभय राष्ट्रीयधारा से नहीं जुड़ सके। इनकी कृष्ण-भक्ति देखकर अभय के एक मित्र एक दिन इन्हे गौड़ीय मठ में ले आये जहाँ इनकी मुलाकात भक्तिसिद्धान्त सरस्वती से हुई।

भक्तिसिद्धान्त के समीप प्रणाम कर ज्योंही दोनों युवक बैठे त्योंही उन्होंने कहा—''तुम लोग शिक्षित तरुण हो, क्यों नहीं आम जनता में कृष्ण-नाम प्रचारित करते। महाप्रभु चैतन्य समस्त भारत में यह कार्य करते रहे।''

भक्तिसिद्धान्त की बातें अभय के दिल में लग गयी। उन्हें लगा जैसे कोई अदृश्य शक्ति इस कार्य को करने के लिए उन्हें प्रेरित कर रही है। इसके बाद भक्तिसिद्धान्त से कृष्ण-नाम के बारे में देर तक बातें होती रही। उनके निश्छल और उदार भाव से अभय प्रभावित हुए

बिना रह नहीं सके। इन दिनों उनकी उम्र २६ साल की थी। मन ही मन उन्होंने निश्चय कि भविष्य में इनसे दीक्षा लूँगा।

भक्तिसिद्धान्त से मिलने के बाद से अभय अब बराबर गौड़ीय मठ में जाने लगे। मठ के शिष्यों और भक्तों से उनका सम्पर्क बढ़ने लगा। यहाँ उन्हें पढ़ने के लिए पुस्तकें प्राप्त हुई और इस प्रकार वे चैतन्य महाप्रभु के चरित्र को अच्छी तरह समझने में सफल हुए।

सन् १९३२ में अपने व्यवसायिक कार्य के सिलसिले में इलाहाबाद आये। यहीं उन्हें भक्तिसिद्धान्त सरस्वती से दीक्षा प्राप्त हुई। गुरु ने इनसे कहा—"केवल भारत ही नहीं, संपूर्ण विश्व में तुम्हें कृष्ण भावना का प्रचार करना है। आज का विश्व पथभ्रष्ट हो गया है, इसीलिए असंतोष की अग्नि में जल रहा है। कृष्ण-नाम विस्मरण करने के कारण आज उसकी यह दुर्दशा है।"

इस घटना के बाद से उन्हें अपने दैनिक जीवन में दो कार्य करना पड़ता था। जीविका चलाने के लिए व्यवसाय की देखरेख और दूसरी ओर गुरु द्वारा बताये मार्ग पर चलना पड़ता था। दीक्षा के तीन वर्ष बाद गुरुदेव ने अभय से कहा—"कुछ पुस्तकें छपवाने की मेरी इच्छा थी। अगर कभी तुम अर्थ संग्रह कर सको तो यह कार्य करना।"

अपने निधन के एक माह पूर्व भक्तिसिद्धान्त ने अभय के नाम एक पत्र लिखा—"जो लोग बंगला या हिन्दी नहीं जानते, ऐसे लोगों के निकट तुम अंग्रेजी में हमारे सिद्धान्तों, चिन्तन तथा भावधारा को तर्क सहित उपस्थित करना। मेरा आशीर्वाद है, तुम्हें सफलता मिलेगी और तुम एक महान् धर्म प्रचारक बन सकोगे।"

सन् १९३६ में भक्तिसिद्धान्त का तिरोधान हो गया। गुरु की आज्ञा अभय के जीवन का कर्त्तव्य बन गया। ठीक इन्हीं दिनों द्वितीय महायुद्ध प्रारंभ हुआ। वहीं अभय ने 'बैक टु गाडहेड' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया।

आर्थिक संकट के कारण पत्रिका का प्रकाशन नियमित रूप से नहीं हो रहा था। इसके बावजूद कृष्णनाम प्रचार बन्द नहीं हुआ और न उनकी लेखनी ने विश्राम लिया। ठीक इन्हीं दिनों आप श्रीमद्भागवत का अंग्रेजी में अनुवाद करने लगे। धीरे-धीरे वे लेखन कार्य में इस कदर डूब गये कि उनका व्यवसाय समाप्त हो गया। इलाहाबादवाले मकान में चोरी हो जाने के कारण वे पूर्णतः फकीर बन गये।

अभय का परिवार कलकत्ते में रहता था। आप वहाँ आये। यहाँ एक ऐसी घटना घटी जिसके कारण उन्होंने पत्नी से अलग हो जाना उचित समझा। भागवत कथा की पाण्डुलिपि बेचकर पत्नी ने बिस्कुट खरीदा था। इस घटना से उन्हें गहरी चोट पहुँची। वे कलकत्ता से दिल्ली चले आये। उन्हें विश्वास था कि दानदाताओं के पास जाने पर उन्हें प्रकाशन कार्य के लिए मदद मिलेगी। लेकिन उनकी यह धारणा निर्मूल प्रमाणित हुई। अपनी पत्रिका में लेख लिखते, प्रूफ देखते और उसे घर-घर बेचते थे। उन दिनों आपके पास पहनने लायक वस्त्र भी नहीं थे। चाय की दुकानों, होटलों, धर्मशालाओं में जाकर अपनी पत्रिका का प्रचार करते रहे। एक प्रकार से वे जिन कठिनाइयों से गुजर रहे थे, उसका वर्णन करना कठिन कार्य है।

दिल्ली में जब रहना असहनीय हो उठा तब आप वृन्दावन चले आये। नित्य सुबह की

गाड़ी से दिल्ली जाकर पत्रिका बेचते और दान माँगते थे। शाम को वृन्दावन वापस आ जाते थे।

वृन्दावन के निवासकाल में एक रात को उन्होंने अदभुत स्वप्न देखा। उनके गुरुदेव भक्तिसिद्धान्त ने उनसे कहा—"अब वह समय आ गया है जब तुम्हें संन्यास ग्रहण करना चाहिए। मेरा आदेश है कि अब तुम शीघ्र संन्यास ले लो।"

तभी उनकी आँखें खुल गयी तो उन्होंने अपने आपको अँधेरी कोठरी में पाया। बाद में उनके किसी गुरुभाई ने उनसे कहा—"तुम्हारे लिए आवश्यक है कि तुम संन्यासी बनो। बिना संन्यासी बने कोई भी व्यक्ति धर्मोपदेशक नहीं बन सकता।" गुरुभाई के इस कथन पर उन्हें आश्चर्य हुआ। लगा जैसे इनके माध्यम से गुरुदेव आदेश दे रहे हैं।

अन्त में उन्होंने विधिपूर्वक संन्यास ग्रहण किया। संन्यास लेने के पश्चात् आपका नया नामकरण हुआ—अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी।

कुछ दिनों बाद एक पुस्ताकाध्यक्ष ने आपको सलाह दी कि पत्रिका प्रकाशित करने से कोई लाभ नहीं होगा। इससे अच्छा है कि आप पुस्तकें लिखें। पत्रिकाएँ पढ़कर फेंक दी जाती हैं और लोग उन सारी बातों को भूल जाते हैं। पुस्तकें स्थायी महत्व की चीजें होती हैं।

अभयजी के मन में यह बात घर कर गयी। उन्होंने निश्चय किया कि वे श्रीमदभागवत का अनुवाद करते रहेंगे। उन्हें यह ज्ञात था कि यह कार्य सरल नहीं है। कम-से-कम पाँच-छह वर्ष इस कार्य में लग जायेंगे। एक ओर उनका अनुवाद कार्य चलता रहा, दूसरी ओर अपनी आध्यात्मिक साधना करते रहे। अब घर से कम निकलते थे। खाली समय में ध्यान, जप और पूजा करते रहे। अपने कमरे में उन्हें कृष्णदास कविराज[१] द्वारा पूजित कृष्ण मूर्ति के दर्शन होते थे। साथ ही उन्हें अनुभव होता कि उनके इस कार्य में वृन्दावन बिहारी उन पर कृपा-वर्षा कर रहे हैं। यह वह भवन था जहाँ पन्द्रहवीं शताब्दी के संत रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, रघुनाथ गोस्वामी, जीव गोस्वामी आदि निवास करते थे। इन संतों के निवास का प्रभाव उस कक्ष में पड़ रहा था। पास ही स्थित रूप गोस्वामी की समाधि पर जाकर प्रार्थना करते मुझे अपने कार्य में सफलता मिले, ऐसा आशीर्वाद देने की कृपा करें।

सबसे बड़ी समस्या यह थी कि इतने बड़े ग्रंथ को कौन प्रकाशित करेगा। साठ खण्डों का यह बृहद ग्रंथ छापना और बेचना एक कठिन समस्या थी। प्रकाशकों के दरवाजे खटखटाने पर भी उन्हें सफलता हासिल नहीं हुई। अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि वे स्वयं प्रकाशित करेंगे। इस कार्य के लिए उन्होंने दान लेना प्रारंभ किया।

जिस वक्त प्रथम खण्ड छपकर तैयार हुआ, उस वक्त वे अन्तिम खण्ड लिख रहे थे। जिस प्रकार वे अपनी पत्रिका द्वार-द्वार पर जाकर बेचते थे, उसी प्रकार इसे बेचने लगे। विद्वानों ने इनकी कृति की जमकर प्रशंसा की। सर्वपल्ली राधाकृष्णन् डा० जाकिर हुसैन, लाल बहादुर शास्त्री, विश्वनाथदास (राज्यपाल, उत्तर प्रदेश) ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। लेकिन पुस्तकें मंदगति से बिकती रही।

अभयजी ने हिम्मत नहीं हारी। अपने कार्य में लगे रहे। किसी प्रकार दान आदि लेकर

१. वैष्णव साहित्य की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक 'चैतन्य चरितामृत' के लेखक।

तृतीय खण्ड उन्होंने प्रकाशित किया। इस खण्ड के प्रकाशन के साथ ही विद्वानों में इनकी चर्चा होने लगी।

इसी बीच रूप गोस्वामी की समाधि के समीप प्रार्थना करते समय उन्हें अपरोक्ष रूप से आदेश हुआ—'पाश्चात्य देशों में शीघ्र जाओ और कृष्ण-नाम का प्रचार करो।'

यह आदेश पाते ही भागवत के प्रकाशन से दिलचस्पी हट गयी। अब वे गुरु की आज्ञा के अनुसार विदेश यात्रा के लिए तत्पर होने लगे। सम्बलहीन व्यक्ति की विदेश यात्रा करना, एक प्रकार से आसमान से तारे तोड़ लाना के बराबर था। अपने परिचितों से इस बात की चर्चा बराबर करते रहे। इन मित्रों में एक अग्रवाल साहब थे जिनका पुत्र पेन्सेल्वेनिया में इंजीनियर पद पर था। उन्होंने कहा कि मैं अपने लड़के को पत्र लिख रहा हूँ। वह अमेरिका में आपका जमानतदार रहेगा।

इस प्रकार वीजा, पासपोर्ट, जमानतदार की समस्याएँ हल होती गयीं। अब केवल यात्रा व्यय का प्रश्न बाकी रह गया। अभय स्वामी का प्रभाव श्रीमती सुमति मोरारजी पर था। पुस्तक बेचने के सिलसिले में उनसे परिचय हुआ था। इस उदार महिला ने पहले यात्रा के लिए निषेध किया, पर अभय स्वामी के दृढ़ निश्चय को देखकर उन्होंने उनकी यात्रा के लिए प्रबंध कर दिया। श्रीमती मोरारजी सिंधिया स्टीमशिप लाइन की अध्यक्षा थीं और उनके जलयान संसार के सभी देशों की यात्रा करते थे।

अध्यक्षा ने 'जलदूत' जहाज को हिदायत दी थी कि स्वामीजी हमारे खास मेहमान हैं। शुद्ध शाकाहारी हैं। इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जाय कि उन्हें मार्ग में कोई कष्ट न हो। इनके लिए पर्याप्त फल और सब्जियाँ यहीं से खरीद ली जायँ। उन्हें कोल्ड स्टोरेज कर दिया जाय ताकि मार्ग में कहीं भी कमी न पड़े। 'जलदूत' के कप्तान श्री अरुण पण्डया ने अपने स्वामिनी को आश्वासन दिया कि आपके सभी निर्देशों का पालन किया जायगा। स्वामीजी हमारे अतिथि के रूप में रहेंगे।

स्वामीजी को यह ज्ञात था कि अमेरिका के निवासी क्या खाते हैं, इसलिए अपने साथ पर्याप्त मात्रा में दलिया ले जा रहे थे। साथ में एक बक्सा और छाता था। उनकी यह यात्रा १३ अगस्त, सन् १९६५ ई० में प्रारंभ हुई थी।

ठीक दसवें दिन आप 'सी-सिकनेस' यानी समुद्री यात्रा की बीमारी से पीड़ित हुए। सिर दर्द, चक्कर, वमन, अजीर्ण के शिकार हो गये। इसी बीच दो बार दिल का दौरा पड़ा। जहाज के कप्तान से लेकर अधिकांश कर्मचारी आपकी सेवा में लग गये।

उसी रात को आपने स्वप्न देखा कि एक नाव पर वृन्दावन बिहारी श्रीकृष्ण बैठे डाँड़ चला रहे हैं। श्रीकृष्ण के इस रूप को देखकर उन्हें संतोष हो गया कि खतरा टल गया। अब उनकी यात्रा निर्विघ्न होगी। जिस व्यक्ति की सहायता स्वयं श्रीकृष्ण कर रहे हैं, उसे किस बात का डर ?

सबेरे नींद खुली। नित्य क्रिया से खाली होने के बाद उन्होंने अनुभव किया कि उनकी सारी बीमारी दूर हो गयी है। अब वे पूर्ण रूप से स्वस्थ हैं। कप्तान को यह देखकर आश्चर्य हुआ। आखिर रात को ऐसा कौन-सा चमत्कार हो गया ? उसे स्वामीजी की शक्ति के बारे

में कुछ ज्ञान हुआ। निस्सन्देह इन बाबा में कोई शक्ति है वर्ना जिसे दो बार हार्ट अटैक हुआ, वह इस वक्त अपना तेजस्वी चेहरा लिए डेकपर मधुर मुस्कान न बिखेरता।

१ सितम्बर को स्वेज नहर में 'जलदूत' ने प्रवेश किया और पुनः आगे रवाना हुआ। १० सितम्बर के दिन कप्तान श्री अरुण पण्डया इनके केबिन में आया और कहा—"अब तक मैं संसार का कई चक्कर लगा चुका हूँ। अपने गर्व के लिए क्षमा चाहता हूँ कि कभी भी मैंने अटलांटिक सागर को इतना शान्त नहीं देखा जितना इस बार की यात्रा में देख रहा हूँ। अटलांटिक सागर के उपद्रव से हर कप्तान बुरी तरह घबड़ा जाता है। मेरी समझ से अपनी बीमारी की तरह आपने अवश्य इस सागर को शान्त बनाया है। यह आप ही का चमत्कार है जो जहाज निर्विघ्न रूप से अटलांटिक सागर पर चल रहा है।"

स्वामीजी अपनी मोहक मुस्कान से कप्तान को प्रभावित करते हुए बोले—"कप्तान साहब, मेरे जैसे अकिंचन में यह शक्ति कहाँ है ? यह तो मेरे गुरु की कृपा है जिनकी आज्ञा का पालन करने जा रहा हूँ। उस वृन्दावन बिहारी की माया है। मैं तो आप लोगों की तरह सामान्य व्यक्ति हूँ।"

जहाज के सभी कर्मचारी भी चकित थे कि आखिर अटलांटिक इस बार इतना शान्त क्यों है। श्रीमती पण्डया ने स्वामीजी से अनुरोध किया—"हम सब का अनुरोध है कि जब हमारा जहाज अमेरिका से वापस आने लगे तब आप इसी 'जलदूत' से वापस आयें। आपके रहने से हमारी यात्रा निर्विघ्न होगी। इसके लिए हम कृतज्ञ रहेंगे।"

अपनी मुस्कान की सम्मोहन शक्ति से श्रीमती पण्डया को प्रभावित करते हुए स्वामीजी ने कहा था—"मैं तो अमेरिका में दो माह रहने के लिए जा रहा हूँ। 'जलदूत' से वापस आ सकूँगा या नहीं, इसे मेरे प्रभु श्रीकृष्ण ही बता सकते हैं। उनकी गति-मति की जानकारी मुझे नहीं है।"

१७ सितम्बर को जहाज बोस्टन पहुँच गया। १६ सितम्बर को वे न्यूयार्क बन्दरगाह पर उतर गये। उस वक्त उनके पास चालीस रुपये थे। बीस डालर कप्तान को भागवत के तीन खण्ड बेचकर प्राप्त किये थे।

बन्दरगाह पर उन्हें यात्री सहायक मिला जिसके निर्देश पर वे बस की सहायता से बटलर आये। यहाँ उन्हें गोपाल अग्रवाल के यहाँ ठहरना था।

बटलर के यहाँ रहने पर उन्हें पर्याप्त अमेरिकी जीवन का ज्ञान प्राप्त हुआ। उन्हें यह देखकर संतोष हुआ कि यहाँ शाकाहारी भोजन आसानी से प्राप्त हो जाता है। वे अमेरिका में किस उद्देश्य से आये हैं, इस बात का समाचार स्थानीय पत्रों में छपा जिसमें इन्हें 'भक्तियोग का राजदूत' लिखा गया था। स्वामीजी का कहना है—"ईश्वर हजारों भिन्न रूपोंवाले समस्त जीवों का पिता है। विकास क्रम में मानव-जीवन पूर्णता की अवस्था है। यदि हम ध्येय को ग्रहण करने से चूके तो इस प्रक्रम से पुनः गुजरना होगा।"

"भक्तिवेदान्त स्वामी गेहुएँ रंग के हैं जो गेरुए रंग का वस्त्र पहनते हैं यानी भिक्षुक की तरह रहते हैं। यहाँ अपना भोजन स्वयं पकाकर खाते हैं। पूर्ण शाकाहारी हैं। उनका कहना है कि अमेरिकी लोग अगर आध्यात्मिक जीवन की ओर ध्यान दें तो वे अधिक सुखी हो सकते हैं।"

भक्तिवेदान्त स्वामी को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि अमेरिका जैसे समृद्ध देश में भी अनेक असंतुष्ट युवक हैं। यहाँ के भौतिक सुख में वे घुटन अनुभव कर रहे हैं। अधिकांश लोगों पर विषाद के लक्षण हैं। वे नशे के शिकार हो गये थे। आखिर क्यों ? वे क्या चाहते हैं ?

वे निराश नहीं हुए। हिप्पी के नाम से मशहूर इन दिग्भ्रमित युवकों में कृष्ण-भक्ति का प्रचार करने का उन्होंने व्रत लिया। बावरी इलाके में हिप्पियों की घनी बस्ती है। यहीं से उनकी साधना प्रारंभ हुई।

दो-एक युवकों को अपना अनुगत बनाने के बाद उन्होंने होवर्ड नामक युवक से कहा—"तुम अपने मित्रों को कीर्त्तन मण्डली में ले आओ। मैं उन्हें शान्ति दूँगा। उन्हें प्रकाश दूँगा।"

होवर्ड अपने साथियों को लेकर आया। स्वामीजी चटाई पर बैठ गये। लोगों को कई जोड़े मजीरे बाँट दिये गये। साथ ही एक-दो-तीन के साथ सभी मजीरे बजने लगे। साथ ही 'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे' की ध्वनि गूँजने लगी। स्वामीजी की मंडली जब कई बार गा चुकी तो उपस्थित लोगों से भी निवेदन किया गया कि वे भी इसे गाये। कुछ लोगों ने गाना शुरू किया और बाद में सभी गाने लगे।

ये सभी गायक साधारण नहीं, असाधारण थे। जो एल० एस० डी०, पियोट तथा अन्य नशा करते थे। स्वभाव के अत्यन्त उग्रवादी और गन्दे रहन-सहनवाले थे। ऐसे ही युवकों को लेकर भक्तिवेदान्त स्वामी ने एक नयी संस्था को जन्म दिया, जिसका नाम रखा गया—'इस्कान'। उस समय किसी ने यह कल्पना नहीं की थी कि आगे चलकर 'इस्कान' अन्तरराष्ट्रीय संस्था बन जायगी। संसार के अधिकांश देशों में रामकृष्ण मिशन की तरह शाखाएँ स्थापित होंगी।

इस संस्था के सात नियम बनाये गये। जिसका मुख्य उद्देश्य था—आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार करना। कृष्ण भावना का प्रचार करना। कीर्त्तन करना आदि। जो लोग इस धर्म में दीक्षित होते थे, उनके लिए चार नियम बनाये गये थे। १- मांसाहार न करना, २- अवैध यौनाचार न करना, ३- मादक द्रव्य सेवन न करना, और ४- जुआ न खेलना। जबकि हिप्पी इन सभी आदतों के शिकार थे। लेकिन इसके बावजूद भक्तिवेदान्त स्वामी का प्रभाव बढ़ता गया और लोग 'इस्कान' में शामिल होकर इस धर्म का प्रचार करने लगे। यह स्वामीजी की बहुत बड़ी उपलब्धि थी। भगवान् बुद्ध की तरह लोगों से कहते थे—मेरे पास आओ। मैं तुम्हें शान्ति दूँगा। ज्ञान दूँगा—भक्ति और मुक्ति दूँगा।

दीक्षा के दिन वे यज्ञ करते और नये बटुकों का मुण्डन करवाते केवल शिखा रखवाते थे। बटुक काषाय वस्त्र धारण करते थे। उनका पूर्वनाम बदल जाता था। कीथ का नाम कीर्तनानन्द, स्टेव का सत्यस्वरूप, ब्रूस का ब्रह्मानन्द तथा चक का अच्युतानन्द रखा गया।

अब तक अनेक हिप्पी और अन्य लोग इस संस्था के प्रति आकर्षित नहीं हुए थे। लेकिन जब उन्होंने यह देखा कि 'हाउल' का विश्व विख्यात लेखक, 'बीट' पीढ़ी का अग्रणी व्यक्ति एलेन गिन्सबर्ग भी 'इस्कान' में प्रवेश कर रहा है तब वे अपने अनजाने आकर्षित हुए। एलेन गिन्सबर्ग जिन दिनों भारत आया था, उन दिनों प्रयाग में लगे कुंभ मेला में उसने

'हरे कृष्ण' कीर्त्तन सुना था और उससे प्रभावित हुआ था। एलेन गिन्सबर्ग ही वह व्यक्ति था जिसने 'लोवर ईस्टसाइड' के नवयुवकों को अपने कारनामों से प्रभावित किया था। अधिकतर अमेरिकी युवक उसके मुक्त यौनाचार, मैरिजुआना तथा एल० एस० डी० के प्रति समर्थन, उसके राजनीतिक विचार, उसके द्वारा पागलपन की खोज, विद्रोह, नग्नता आदि से प्रभावित थे। आज उसे यहाँ आते देख सभी चकित रह गये।

उस दिन वह स्वामीजी के साथ कीर्त्तन में शामिल हुआ और कहा—"धर्म निरपेक्ष तो है ही, किन्तु हरेकृष्ण की सानी नहीं।"

उन दिनों अमेरिका के उस क्षेत्र में खुलेआम हर तरह की नशीली चीजें बिकती थीं जिसके शिकार ये लोग थे। स्वामीजी ने इन्हें बताया कि एल० एस० डी०, पियोट, कोकिन, हीरोइन आदि से अधिक मादक नशा हरे कृष्ण कीर्त्तन में है। कुछ दिन करके देखो, स्वतः अनुभव करोगे।

शंकित युवक पूछते—"क्या यह सच है ?"

स्वामीजी ठंढे स्वर में कहते—"हाँ। यहाँ जितने शिष्य हैं, वे इसके प्रमाण हैं। उनसे पूछ लो।"

वह युवक उद्भ्रान्त दृष्टि से चारों ओर देखता रहा। ऐसे अशान्त नवयुवकों से उनका हमेशा सामना होता था और वे अपने शिष्यों को लेकर कीर्त्तन करने लगते थे।

धीरे-धीरे हरेकृष्ण कीर्त्तन लोकप्रिय होता गया। पार्कों और सड़कों पर कीर्त्तन होने लगे। समाचार पत्रों में इस बात की चर्चा होने लगी। 'हयग्रीव' पत्र ने इसे "हरे कृष्ण विस्फोट" नाम दिया। 'लोवर ईस्ट साइड' ने हिप्पी कीर्तन को "सबसे संधियुक्त घटना" कहा। आश्चर्य इस बात का था कि 'इस्कान' में सहयोग करनेवाले अब नशा मुक्त होते जा रहे थे। हरे कृष्ण कीर्त्तन उन्हें एल० एस० डी० आदि से मुक्त कराता गया। लेकिन कभी-कभी ऐसे प्रश्न उपस्थित हो जाते थे जो भारतीय परम्परा के अनुसार गुरु या श्रद्धेय व्यक्तियों से नहीं पूछा जाता था। मगर अमेरिकी संस्कृति में ये सब सामान्य बातें थीं। ऐसे प्रश्नों से भक्तिवेदान्त स्वामी संकुचित नहीं होते थे।

'इस्कान' के अटार्नी स्टेवे गोल्डस्मिथ ने एक दिन प्रश्न किया—"संभोग के संबंध में आपका क्या मत है ?"

स्वामीजी ने कहा—"संभोग केवल अपनी पत्नी के साथ करना चाहिए और वह भी संयम के साथ। संभोग तो कृष्ण-भक्त सन्तान चलाने के लिए है। मेरे गुरु कहा करते थे कि कृष्णभक्त सन्तान उत्पन्न करने के लिए मैं सैकड़ों बार संभोग करने को तैयार हूँ। किन्तु इस युग में यह कठिन है, इसलिए वे ब्रह्मचारी रहे।"

गोल्डस्मिथ ने पूछा—"काम वासना तो प्रबल शक्ति है। स्त्री के लिए मनुष्य जैसा अनुभव करता है, उसे इनकार नहीं किया जा सकता।"

स्वामीजी ने कहा—"इसीलिए तो प्रत्येक संस्कृति में विवाह का विधान है। आप अपना विवाह करके एक स्त्री के साथ शान्तिपूर्वक रह सकते हैं, किन्तु इन्द्रिय-तृप्ति के लिए पत्नी का उपयोग किसी मशीन की तरह नहीं होना चाहिए। संभोग मास में केवल एक बार किया जाय और वह सन्तानोत्पत्ति के लिए।"

गोल्डस्मिथ ने कहा—"तब तो इसे भुला दिया जाय।"

स्वामीजी ने हँसकर कहा—"यह अच्छी बात है। सबसे अच्छा है कि इस विषय पर सोचा न जाय और हरे कृष्ण का जप किया जाय।" इतना कहने के पश्चात् वे माला फेरने लगे।

स्वामीजीने भारतीय परम्परा निबाहने के लिए यह निश्चय किया कि प्रीतिभोज का आयोजन किया जाय। वे अपने शिष्यों को भोजन बनाना सिखाते रहे। हलवा, दाल, सब्जियाँ, भात, पूरियाँ, समोसे, पोलाव, सेब की चटनी, गुलाब जामुन बनाने की तरकीब बताते रहे। प्रीती भोज में लोग चटखारे लेकर खाते रहे। खासकर गुलाब जामुन में उन्हें अपूर्व स्वाद मिलता।

स्वामीजी की एक अर्से से इच्छा थी कि वे जिस पत्रिका का संपादन-प्रकाशन करते थे, उसका प्रारंभ यहाँ से किया जाय। यहाँ अर्थ और कार्यकर्ताओं की कमी नहीं थी। 'बैक टु गाडहेड' के प्रकाशन-संपादन का भार दो शिष्यों को देकर वे श्रीमद्‌भागवत के अनुवाद में व्यस्त हो गये। एक बार जब उन्होंने न्यूयार्क से सैनफ्रांसिस्को जाने का निश्चय किया तो उनके शिष्यों में हलचल मच गयी। गुरुदेव हमें छोड़कर एक अनजाने स्थान में जा रहे हैं।

भक्तिवेदान्त स्वामी ने उन्हें आश्वासन दिया कि मैं तुम लोगों को छोड़कर नहीं जा रहा हूँ। मैं यहाँ जिस उद्देश्य को लेकर आया हूँ, उसे पूरा करना है। तुम लोग इस मठ का कार्य आसानी से चला सकते हो। फिर मैं हमेशा तुम्हारे साथ नहीं रहूँगा। वृक्ष मैंने लगा दिया है और अब उसे जीवित रखना तुम्हारा कार्य है।

जब वे सैनफ्रांसिस्को के हवाई अड्डे पर उतरे तब वहाँ आये संवाददाताओं ने उन्हें घेर लिया। तरह-तरह के प्रश्न पूछने लगे। एक ने पूछा—"आपके आन्दोलन का सदस्य बनने के लिए क्या-क्या करना होता है ?"

स्वामीजी—"चार नियम हैं। मैं अपने शिष्यों को कुमारी मित्र बनाने की अनुमति नहीं देता। मैं सभी प्रकार के मादक द्रव्यों का सेवन, इनमें काफी, चाय, सिगरेट भी शामिल है, वर्जित है। मैं शिष्यों को मांसाहार करने नहीं देता और जुआ खेलने से रोकता हूँ।"

स्वामीजी के यहाँ आने का महत्व इसी से समझा जा सकता है कि उस रात को उनके आगमन का दृश्य वहाँ के टेलीविजन पर दिखाया गया। दूसरे दिन 'एक्जामिनर' नामक पत्र ने छापा—'हिप्पियों का स्वामीजी को निमंत्रण।' सैनफ्रांसिस्को के सबसे बड़े दैनिक 'क्रोनिकल' ने छापा— 'हिप्पी प्रदेश में स्वामी—पवित्रात्मा द्वारा सैनफ्रांसिस्को मंदिर का उद्‌घाटन।"

यहाँ भी उनका कीर्त्तन समारोह प्रारंभ हो गया। एलेन गिन्सबर्ग अपने तमाम साथियों को लेकर आया था। स्वामीजी को यह देखकर हर्ष हुआ कि भले ही सभी नशीली दवा खाये हुए हैं, पर वे कीर्त्तन में रम गये हैं। न्यूयार्क में भी यही स्थिति थी। धीरे-धीरे वहाँ सुधार हुआ था।

एक अर्से तक कीर्त्तन तथा जप की शिक्षा देने के बाद स्थानीय लोगों ने स्वामीजी से आग्रह किया कि अब हमें दीक्षा देकर 'इस्कान' का स्थायी सदस्य बना लें। स्वामीजी अभी दीक्षा देना नहीं चाहते थे। उसे स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार न कर उन्होंने एक दिन प्रार्थना-सभा में कहा—"दीक्षा लेने पर शिष्य को मोक्ष प्राप्ति नहीं होती। इसके लिए गुरु उत्तरदायी रहता

है, इसीलिए महाप्रभु चैतन्य ने आगाह किया है कि गुरु को चाहिए कि वे अधिक शिष्य न बनायें।"

इस घटना के कुछ दिनों बाद एक पुरुष ने पूछा—"क्या मैं दीक्षित हो सकता हूँ।"

इस प्रश्न पर शिष्य उससे कुछ कहते, उसके पहले ही स्वामीजी ने कहा—"क्यों नहीं। लेकिन मेरे प्रश्नों का उत्तर पहले दो। बताओ कृष्ण कौन हैं ?"

"कृष्ण ईश्वर है।"

स्वामीजी ने कहा—"ठीक। तुम कौन हो ?"

उस व्यक्ति ने कहा—"मैं ईश्वर का दास हूँ।"

तब स्वामीजी ने कहा—"बहुत अच्छे। कल तुम दीक्षित हो सकते हो।"

भारतीय पद्धति से खाना बनाना, कीर्त्तन करना, ध्यान करना आदि सिखाने के बाद स्वामीजी पूजा करने की पद्धति सिखाने लगे। तेल या कपूर मिला नहीं, इसलिए वे मोमबत्ती से आरती करवाने लगे। आरती की थाली जब उनके पास आयी तब उन्होंने उसकी लौ की ओर हाथ बढ़ाकर मस्तक को स्पर्श किया। बाद में कहा—"उपस्थित सभी लोगों के पास ले जाओ। सभी लोग इस लौ को छू सके।"

पुराने शिष्य इस नियम को जानते थे। हरिदास जब मोमबत्तीवाली थाली लेकर आगे बढ़ा तो कुछ लोगों ने उसमें सिक्के डाले। यह देखकर अन्य अनजान व्यक्तियों ने ऐसा ही किया। इस प्रकार स्वामीजी क्रमशः तिलक लगाना, साष्टांग प्रणाम करना, अंगन्यास-करन्यास करना सिखाते गये। यहाँ तक भजन-पूजन के बाद प्लेटों में लोगों को प्रसाद दिये गये। प्रसाद में समोसा, हलवा, पूरी, चावल और कई तरकारियों के अलावा चटनी तथा मिठाइयाँ थीं। भक्तों ने उसे खाया। उनके लिए यह नये स्वाद की वस्तु थी।

सैनफ्रांसिस्को में 'इस्कान' की शाखा स्थापित करने के बाद एक दिन वे स्वदेश के लिए रवाना हो गये। यह २५ जुलाई सन् १९६७ ई० की घटना है। साथ में कीर्तनानन्द था जिसका सिर घुँटा हुआ था।

दिल्ली की सड़कों पर कार से गुजरते हुए स्वामीजी कीर्तनानन्द को स्थानों के बारे में बताते रहे। टैक्सी छिपीवाड़ा के एक सूनसान स्थान पर रुक गयी। रात का वक्त था। चारों ओर सन्नाटा था। स्वामीजी को टेंट से चालीस रुपये निकालते देख टैक्सीवाले ने झपटकर ले लिया। स्वामीजी ने प्रतिवाद किया तो उसने कहा—इतना ही किराया हुआ।

स्वामीजी ने कहा—"हवाई अड्डे से यहाँ तक के बीस से कम होते हैं।"

लेकिन सुनता कौन है ? दिल्ली इस दृष्टि से काफी बदनाम शहर है। टैक्सीवाला अपनी कार लेकर चला गया। इस वक्त पुलिस की सहायता भी नहीं मिल सकती थी। पास ही राधाकृष्ण का मंदिर था। स्वामीजी वहीं आकर ठहरे। पुनः कई दिनों बाद वृन्दावन चले आये। दिल्ली में रहते समय स्वामीजी को ब्रह्मानन्द का एक पत्र मिला था जिसमें यह सूचना दी गयी थी कि अमेरिका की सबसे बड़ी प्रकाशन संस्था 'मैकमिलन' उनकी 'भगवद्गीता' छापने को तैयार है। यह एक सुखद समाचार था। अनेक वर्षों की तपस्या अब फल देने को तैयार हो गयी है। पहले स्वामीजी की इच्छा जापान या भारत से छपाने की थी, पर इस संदेश को पाते ही वे राजी हो गये।

वृन्दावन में कुछ दिनों तक रहने के बाद स्वामीजी पुनः अमेरिका लौट आये। सैन-फ्रांसिस्को में कुछ दिन रहने के बाद लॉसएंजिल्स गये, जहाँ इनके शिष्यों ने एक मंदिर बनवाया था। वहाँ से बोस्टन गये, जहाँ 'इस्कान' की एक शाखा स्थापित हो चुकी थी। इस प्रकार अमेरिका में लगातार एक के बाद एक 'इस्कान' की शाखाएँ स्थापित होती रहीं। यहीं पर स्वामीजी ने 'प्रभुपाद' नाम ग्रहण किया।

अमेरिका में हरे कृष्ण आन्दोलन की सफलता से स्वामीजी काफी प्रसन्न थे। अब उन्होंने निश्चय किया कि इसका प्रचार योरोप के अन्य देशों में हो। सबसे पहले उनकी दृष्टि इंग्लैण्ड की ओर गयी। उन्होंने अपने अमेरिकन शिष्य सर्वश्री मुकुन्द और श्यामसुन्दर को लन्दन में जाकर 'इस्कान' केन्द्र स्थापित करने का आदेश दिया।

हरे कृष्ण आन्दोलन से प्रभावित होकर एक दिन हेनरी फोर्ड का नाती यहाँ आया। एक ही दिन की बातचीत से वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने प्रभुपाद से दीक्षा ले ली। उसका नाम रखा गया—अम्बरीष दास। प्रभुपाद जिसे दीक्षा देते थे, उसके पैतृक नाम को बदल देते थे। कृष्ण भावना संघ का यह नियम था।

मुकन्द और श्यामसुन्दर लन्दन में 'इस्कान' केन्द्र स्थापित करने गये। यहाँ उन्होंने बीटल्सों के प्रमुख जार्ज हैरिसन से मुलाकात की। दरअसल इंग्लैण्ड में बीटल सम्प्रदाय का वही एक प्रकार से प्रतिष्ठाता था। उसने इन लोगों से कहा—"मेरे पास हरेकृष्ण चित्रावली थी जिसमें प्रभुपाद अपने शिष्यों को हरे कृष्ण कीर्त्तन करा रहे थे। इसका रिकार्ड मेरे पास था। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि आज से दो वर्ष पहले जब हम ग्रीस में यात्रा कर रहे थे तब हम इस रिकार्ड को बजाते रहे। तुम लोगों से मुलाकात होने के काफी पहले से मैं इस कीर्त्तन से परिचित रहा। मैं प्रभुपाद को भी जानता हूँ। इस सम्प्रदाय के लोगों को न्यूयार्क और लासएंजिल्स की सड़कों पर कीर्त्तन करते देखा है। भारत की यात्रा कर आने के कारण इनकी वेष-भूषा से भी परिचित हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि अन्य दलों की अपेक्षा ये लोग अधिक संयम बरतते हैं।"

जार्ज ने यह भी बताया कि आजकल वह भारत के ही महेश योगी द्वारा प्रदत्त एक मंत्र का अभ्यास कर रहा है।

श्यामसुन्दर को इस बात की प्रसन्नता हुई कि लन्दन में बीटलों के एक प्रमुख व्यक्ति से उसका परिचय हुआ। उसके माध्यम से श्यामसुन्दर अपना कार्यक्रम आगे बढ़ाता गया। महेश योगी के मंत्र ने उसे वह शान्ति नहीं दी जिसकी तलाश में जार्ज परेशान था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अगर जार्ज की सहायता न मिलती तो लन्दन में 'इस्कान' की शाखा खोलना और वहाँ राधाकृष्ण मन्दिर स्थापित करना कठिन हो जाता। श्यामसुन्दर ने अपने गुरु भाइयों मुकुन्द, गुरुदास, मालती, यमुना और जानकी की सहायता से लन्दन में 'इस्कान' की शाखा खोल दी।

कृष्ण भावना संघ यानी प्रभुपाद के 'इस्कान' की यह सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। उन्हें लगा जैसे इस सत्कार्य के लिए भगवान् कृष्ण, महाप्रभु चैतन्य और गुरुजी सहायता कर रहे हैं। प्रभुपाद को ज्ञात था कि अमेरिका के हिप्पी बहुत उग्रवादी हैं। उन्हें वश में करना साधारण बात नहीं है। हिंसा उनके लिए साधारण बात थी। समाज के लोग उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते हैं और भयभीत रहते हैं। इंग्लैण्ड में भी बीटलों की यही स्थिति थी। वे

विटनिक के नाम से जाने जाते थे। इन्हें प्रभु के दरबार में लाना जब सहज हो गया तब जन साधारण अपने आप आकृष्ट हुए।

प्रभुपाद ने निश्चय किया कि अब वे विश्व भ्रमण करेंगे। अशान्त, विक्षिप्त तथा समाज के उपेक्षित वर्ग को हरे कृष्ण आन्दोलन से जोड़ेंगे। भारत में आकर उन्होंने बम्बई, कलकत्ता, सूरत, हैदराबाद, हरिद्वार, आसाम, बंगाल, बिहार, तमिलनाडु, उड़ीसा, महाराष्ट्र, केरल, पंजाब, गोवा आदि स्थानों का दौरा किया और शिष्यों के माध्यम से इन प्रान्तों में कृष्ण भावना संघ की स्थापना की।

विदेशों में उन्होंने कनाडा, इंग्लैण्ड, आयरलैण्ड, इटली, आस्ट्रेलिया, हालैण्ड, ग्रीस, स्पेन, डेनमार्क, स्वीडेन, फिनलैण्ड, पश्चिमी जर्मनी, पोर्तुगाल, नार्वे, फ्रांस, बेलजियम, आस्ट्रिया, स्वीट्जरलैण्ड, न्यूजीलैण्ड, फिजी द्वीप, ब्राजील, मैक्सिको, कोलम्बिया, पेरू, अर्जेनटाइना, बोलविया, चिली, गुआना, उरुगुए, पनामा, पूर्वी द्वीप समूह, ईरान, इजरायल, थाइलैण्ड, हाँगकाँग, इण्डोनेशिया, नेपाल, जापान, घाना, नाइजेरिया, केनिया, जिम्बाबवे आदि देशों में 'इस्कान' की शाखाएँ स्थापित की। केवल खाड़ी देशों तथा साम्यवादी देशों में उन्हें सफलता नहीं मिली। वस्तुतः इन देशों के नागरिक खुले दिमाग के नहीं थे।

प्रभुपाद का कहना था—"ईश्वर है। कुछ लोग कहते हैं कि ईश्वर नहीं है, कुछ कहते हैं कि वह निर्गुण या शून्य है। यह बकवास है। मैं इन बेहूदों को सिखाना चाहता हूँ कि ईश्वर है। यही मेरा लक्ष्य है। कोई भी मेरे पास आये, मैं सिद्ध कर दूँगा कि ईश्वर है। यही मेरा कृष्णभावनामृत आन्दोलन है। नास्तिकों के लिए यह चुनौती है। जिस प्रकार हम एक-दूसरे के सामने हैं, अगर आप निष्ठावान हैं तो ईश्वर को प्रत्यक्ष देख सकते हैं।"

'इस्कान' की आय रेकर्डों की बिक्री तथा पुस्तक प्रकाशन से होती थी। केवल इंग्लैण्ड में दो दिनों के भीतर सत्तर हजार रेकर्डों की बिक्री हुई थी। अंग्रेजी में आपकी पुस्तकों की ४,३४,५०,००० प्रतियाँ बिक गयी थीं। रूसी भाषा सहित २३ भाषाओं में आपकी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इन पुस्तकों की संख्या ५,५३,१४,००० थीं। भगवद्गीता के प्रकाशन के लिए ७६ रेल डिब्बों में कागज ले जाया गया था।

अमेरिका में आपके विरुद्ध उन लड़कों के माता-पिता ने मुकदमा दायर किया जो 'इस्कान' के सदस्य बनकर सड़कों पर हरेकृष्ण गाते हुए नाचते थे। आपके ऊपर दो चार्ज लगाये गये। अवैध बन्दीकरण तथा जान बूझकर अपहरण। उच्चन्यायालय के जज ने अपने फैसले में लिखा—"हरे कृष्ण आन्दोलन वैध धर्म है जिसकी जड़ें भारत में हजारों वर्ष पूर्व से जमी हुई है।"

श्री अभयाचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी ने अपने जीवन में आठ बार विश्वभ्रमण करते हुए हरे कृष्ण आन्दोलन को सार्थक किया। वर्तमान युग के वे एक तरह से चैतन्य महाप्रभु के अवतार थे। विश्व में 'इस्कान' की जितनी शाखाएँ हैं, उतनी अन्य किसी सम्प्रदाय की नहीं हैं। सम्पूर्ण विश्व को हरेकृष्ण नाम से मुखरित करते हुए उन्होंने १४ नवम्बर सन् १६७७ ई० को वृन्दावन धाम में अपना नश्वर शरीर त्याग दिया।

●

स्वामी प्रणवानन्द

स्वामी प्रणवानन्द

प्रति वर्ष माघी पूर्णिमा के दिन भारत सेवाश्रम संघ का वार्षिकोत्सव मनाया जाता था। यद्यपि उन दिनों संघ की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी, परन्तु निष्ठा की कमी नहीं थी। हजारों लोग प्रसाद ग्रहण करने के लिए आसपास के गाँवों से आते थे।

कलकत्ता से आते समय आचार्य प्रणवानन्द प्रचुर मात्रा में ताजा फल संग्रह करके लाये थे। भक्तों, शिष्यों तथा कार्यकर्ताओं के अलावा आगत लोगों को भोजन कराया जाता था।

अचानक आचार्यजी ने कहा कि केले के पत्तों का इन्तजाम हो गया है न ? गाँव में सारा सामान मिल जाता है, पर ऐन मौके पर केले के पत्ते और सूखी लकड़ियाँ नहीं मिलतीं।

लोगों ने आचार्यजी को सूचित किया कि चार व्यक्तियों को इस कार्य की जिम्मेदारी दी गयी है। इधर जो लोग केले के पत्ते संघ को बेचनेवाले थे, उन लोगों ने लकड़ी के एक पुल पर खड़े होकर निश्चय किया कि अब हम पहलेवाली कीमत में नहीं देंगे। दस आने से बढ़ाकर ग्यारह आने प्रति हजार में बेचेंगे। कम-से-कम हमें कुछ तो फायदा होगा। उन्हें भी अधिक देना नहीं पड़ेगा।

दूसरे व्यक्ति ने कहा—"मुझे एक आने के प्रति उतनी दिलचस्पी नहीं है। साधु महाराज शहर से कई दौरी फल ले आये हैं। सब अपने पास रख छोड़ा है। बाबा जी हैं, इतना संग्रह क्यों करते हैं ? हम उनकी आज्ञा पर काम करते हैं, क्या हम उन फलों का स्वाद चख नहीं सकते ?"

तीसरे व्यक्ति ने कहा—"यहाँ बेकार बक-बक करने से क्या फायदा ? आखिर साधु आदमी हैं, कुछ तो हमारे निवेदन पर ख्याल करेंगे।"

चौथा व्यक्ति आचार्यजी के पूर्वाश्रम के रिश्ते से चचेरा भाई था। वह चुप रहा।

यह सब सलाह करने के बाद चारों मठ में आये। स्वामी प्रणवानन्द एक कमरे में बाघ की छाल पर वीरासन में बैठे थे। चारों इनके कमरे में आये और प्रणाम करके खड़े हुए। जब तक ये लोग अपनी बात कहते, उसके पहले ही आचार्यजी ने उस व्यक्ति की ओर देखते हुए मुस्कराकर कहा—"ठीक है। इस बार से ग्यारह आने प्रति हजार केले के पत्ते खरीदे जायँगे। जाओ, इन्तजाम करो।"

आचार्यजी की बातें सुनकर चारों भौचक्क रह गये। जो बात सुदूर लकड़ी के पुल पर हम चारों के बीच हुई थी, उसे आचार्यजी ने कैसे जान लिया ? क्या आचार्यजी अन्तर्यामी हैं ? लज्जा से प्रथम व्यक्ति का मस्तक अवनत हो गया।

तभी दूसरे व्यक्ति की ओर देखते आचार्यजी ने पुनः एक नया शिगूफा छेड़ा। अपने एक सेवक को बुलाकर उन्होंने कहा—"इन लोगों को कलकत्ता से लाये सन्तरे की टोकरी से दो-दो सन्तरे दे दो।"

सेवक ने सन्तरे लाकर दिये। चारों भय और संकोच के साथ कमरे के बाहर हो गये। यह तो भूतहा रहस्य है। ऐसे आदमी के सामने खड़े रहना कठिन है।

इसी केले के पत्ते को लेकर एक बार अन्य घटना हुई थी। इस बार चौरासी गाँव के एक छोटी जाति के आदमी को दस हजार केले के पत्ते लाने का ठीका दिया गया था। सभी लोग इस बात को जानते थे कि प्रत्येक काम तथा सामानों के प्रति आचार्यजी की तीक्ष्ण दृष्टि रहती है। चारों ओर संन्यासी तथा गृहस्थ काम में व्यस्त हैं। केले के पत्तों का बण्डल आचार्यजी के पास रखते हुए रमेश दास ने कहा—"दस हजार पत्ते आये हैं। तीन रुपये प्रति हजार की दर से तीस रुपये देना है।"

इस प्रश्न के उत्तर में आचार्यजी ने कुछ नहीं कहा। रमेश दास ने सोचा कि शायद स्वामीजी ने ध्यान नहीं दिया। पुनः अपनी बातों को उन्होंने कहा।

आचार्यजी ने पूछा—"दस हजार पत्ते हैं, यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ?"

रमेश दास ने कहा—"प्रत्येक बण्डल में ५०-५० पत्ते हैं। कुल २०० बण्डल हैं। मैंने बण्डलों को अपने हाथ से गिना है।"

"बण्डल गिन लेने पर पत्तों की संख्या मालूम हो जाती है? इन बण्डलों में कितने पत्ते हैं, मालूम है?"

इस प्रश्न का उत्तर रमेशदास नहीं दे सके। बण्डलों में कितने पत्ते बँधे हैं, इसे उन्होंने गिना नहीं था। उन्हें चुप रहते देख प्रणवानन्द ने कहा—"दस हजार नहीं, महज छह हजार पत्ते हैं और उसमें भी ५०० के लगभग फटे पत्ते हैं। समझे?"

इतना कहकर वे कमरे के बाहर चले गये। बाद में गिनती करने पर प्रणवानन्द की बातें सही निकलीं।

× × × ×

अविभाजित बंगाल के एक जिले का नाम है—फरीदपुर। इसी जिले के बाजितपुर गाँव में विष्णुचरण दास भुंइया रहते थे। गाँव के जमींदार के यहाँ कारिन्दा थे। मध्यम वर्ग के कायस्थ। आपकी पत्नी श्री शारदा देवी थीं। विष्णु भुंइया के चार पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। तीसरे पुत्र का नाम था—विनोद।

कहा जाता है कि विनोद के भूमिष्ठ होने के पहले एक रात को शारदा देवी ने स्वप्न में देखा—जटाधारी शुभ्र ज्योतिर्मण्डित महादेव पुत्र के रूप में उनकी गोद में खेल रहे हैं। इस स्वप्न के बारे में शारदा देवी ने अपने पति को समाचार दिया।

विष्णु भुंइया यह सुनकर प्रसन्न हो गये। बोले—"तब तो हमारे इष्ट देव हमारे घर पधार रहे हैं।" भुंइया परिवार के कुल देवता नीलरुद्र थे।

विनोद जन्म से ही निरामिष भोजी था। पढ़ने-लिखने की अपेक्षा व्यायाम करना उसे अधिक पसन्द था। उसके शारीरिक सौष्ठव को देखकर सभी उसके प्रति आकृष्ट हो जाते थे।

हरिनाम संकीर्तन के प्रति उसके हृदय में प्रबल अनुराग था। स्वयं कीर्तन नहीं करता था, पर कहीं कीर्तन होता तो वहाँ घंटों आत्मविभोर होकर बैठा रहता था।

बचपन से ही उसमें जिज्ञासा प्रवृत्ति प्रबल थी। वह देखता कि माँ तुलसी के पौधे में नित्य जल चढ़ाकर, गले में आँचल डालकर प्रणाम करती हैं। शाम को एक दीपक पौधे के पास रखती हैं। पूजा करती हैं। आखिर तुलसी का पौधा इतना पवित्र क्यों है ?

बचपन की शरारत उसमें जाग उठी। उसने तुलसी के पौधे पर थूकना शुरू किया और हर बार मन ही मन कहता—तुम अगर पवित्र हो तो मुझे प्रमाण दो वर्ना मैं तुम्हें पवित्र नहीं मान सकता। यह तो कुसंस्कार है।

अचानक एक दिन तुलसी के पौधे पर थूकते ही वह बेहोश हो गया। उसी स्थिति में उसने देखा कि तुलसी के पौधे से एक दिव्य मूर्ति प्रकट हुई। उस मूर्ति ने तीव्र स्वर में कहा—"तूने मेरा अपमान किया ? मैं हूँ नारायण। तुलसी के पौधे में ही मैं रहता हूँ।"

इस फटकार को सुनने के बाद उसे होश आया। इस घटना के बाद से वह तुलसी के पौधे का काफी सम्मान करने लगा। यहाँ तक कि आगे चलकर वे किसी भी व्यक्ति का तुलसी के प्रति अवज्ञा करना सहन नहीं कर पाते थे।

इस घटना के कई वर्ष बाद अपने गाँव में हरि विलास कविराज के यहाँ आयोजित दुर्गा पूजा देखने गये। तुलसी के पौधे का चमत्कार देख चुके थे। यहाँ भी उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि यह जो मिट्टी की प्रतिमा है, क्या इसमें कोई शक्ति है ?

मन में यह संशय उत्पन्न होते ही वे ध्यान लगाकर बैठ गये। मन ही मन उन्होंने कहा—अगर इस मृण्मयी प्रतिमा में कोई शक्ति है तो उसका प्रत्यक्ष प्रमाण मेरे सामने प्रकट हो।

इतना कहना था कि क्षण भर में परिवर्तन हुआ। विनोद ने साश्चर्य देखा—उसके सामने जाग्रत दुर्गा देवी हैं। अपनी दस भुजाओं से चतुर्दिक आलोकित कर रही हैं। विनोद का भ्रम दूर हो गया। इस दिन से उसकी मति-गति में परिवर्तन हो गया।

विनोद बचपन से संयमी और ब्रह्मचर्य व्रती था, इसीलिए गाँव के हमजोली उसे विनोद ब्रह्मचारी के नाम से सम्बोधन करते थे। डेढ़ मन का मुगदर भाँजना, डंड-बैठक तथा प्राणायाम करना, उसका दैनिक कार्य था। बहुत कम समय के लिए वह सोता था।

अपने पुत्र के इस आचरण को देखकर विष्णु भुंइया चिन्तित हो उठे। न अण्डा और न मछली। न गोश्त और न घी। ऊपर से इतना श्रम कैसे सहन कर सकेगा। पिता ने अपना दर्द कुल पुरोहित महेन्द्र चक्रवर्ती से कहा।

महेन्द्र चक्रवर्ती ने जब उसे बंगालियों का प्रिय व्यंजन मछली खाने को कहा तब विनोद ने कहा—"देखिये पण्डितजी, भगवान् ने जो शक्ति मुझे दी है, अगर मैं अच्छा भोजन करने लगूँगा तो वह नष्ट हो जायगी। उस शक्ति को बचाना मेरा कर्त्तव्य है। तामसिक भोजन करके मैं उत्तेजना की सृष्टि नहीं करना चाहता। फिलहाल मैं जो कुछ भोजन करता हूँ, उससे मेरी शक्ति बनी हुई है अतएव आप आगे अनुरोध न करें।"

पुत्र की बात सुनकर पिता शान्त हो गये। आगे उन्होंने कभी इसके लिए दबाव नहीं

डाला। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि विनोद को कीर्तन बहुत पसन्द था। उसने निश्चय किया कि हमजोलियों को लेकर एक कीर्तन मण्डली स्थापित की जाय। दरअसल कीर्तन मण्डली की स्थापना के पीछे वही सूत्र काम कर रहा था जो आगे चलकर 'भारत सेवाश्रम संघ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कीर्तन मण्डली की स्थापना के कारण विनोद ब्रह्मचारी के स्थान पर उसका नाम विनोद साधु हो गया।

कुछ दिनों बाद भ्रमण करते हुए प्रसिद्ध संत बाबा भोलानन्द गिरि इस गाँव में आये। अनेक लोग बाबा का दर्शन करने गये। शारदा देवी अपने पुत्र के साथ उनका दर्शन करने गयीं। बाबा को प्रणाम करने के बाद बोली—"बाबा, यह लड़का अधिक पढ़-लिख नहीं सका। इसका मन ही नहीं लगता। घर-गृहस्थी में भी मन नहीं लगाता। आखिर यह क्या करेगा ?"

भोलानन्द गिरि ने गौर से विनोद को देखने के बाद कहा—"बेटी, तेरा बेटा तो राज चक्रवर्ती है। तू नाहक घबड़ाती है।"

बाबा भोलानन्द गिरि का यह आशीर्वाद विनोद के जीवन में फलीभूत हुआ था। सन् १६२५ में जब बाबा एक बार पुनः आये तब उन्होंने देखा कि किशोर विनोद अब प्रणवानन्द स्वामी के रूप में प्रतिष्ठित होकर जन-जन की सेवा कर रहा है।

अपने कठोर संयम के आधार पर विनोद ने अपने हमजोलियों का एक संघ बनाया। मुसीबतजदा लोगों की मदद के लिए संघ के सदस्य मदद करने पहुँच जाते थे। बीमारों को अस्पताल ले जाना और उनकी सेवा करना। भूखों के लिए अन्न का प्रबंध करना, गरीब-असहायों की सहायता करना, इस संघ के सदस्यों का कार्य था। इसके साथ ही पूर्वी बंगाल के मुसलमानों के अत्याचारों से पीड़ित हिन्दुओं की रक्षा करने के लिए इनका संघ खड्गहस्त हो जाता था। हिन्दू संस्कृति के प्रचार में संघ के सदस्य बराबर संघर्ष करते रहे। आगे चलकर संघ के सदस्यों ने हिन्दू जाति में व्याप्त उन कुसंस्कारों को परिष्कृत किया जिससे सामान्यजन पीड़ित थे। तीर्थस्थानों में पण्डों के अत्याचारों से मुक्ति दिलाने के लिए गया, काशी, इलाहाबाद आदि स्थानों में उन्होंने भारत सेवाश्रम संघ स्थापित किया था।

दंगे से पीड़ित लोगों की सहायता तथा अकाल पीड़ितों को भोजन देना। बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में आम जनता को राहत देने का कार्य बड़े पैमाने में करते थे। शान्तिकाल में लोगों को हिन्दू संस्कृति के बारे में भाषण देते थे। संघ के सदस्य न केवल संन्यासी थे, वक्त-जरूरत पर वे शस्त्र भी चलाते थे। यही वजह है कि असहाय लोगों के निकट संघ श्रद्धेय और पूजनीय बन गया।

प्रणवानन्दजी स्वयं कठोर श्रम और संयम के पक्षपाती थे और अपने शिष्यों को भी इस दिशा में शिक्षित करते रहे। इन्हीं कारणों से फरीदपुर षड़यंत्र के मामले में इन्हें क्रान्तिकारी समझकर गिरफ्तार किया गया, पर अकाट्य प्रमाण न पाने के कारण इन्हें रिहा कर दिया गया। यह सत्य है कि तत्कालीन अनेक विप्लवी आपके मठ में आकर शरण लेते रहे।

बाद में अनेक शिष्यों को लेकर आप कलकत्ता के निवासियों से द्वार-द्वार जाकर चन्दा माँगने लगे। भारत सेवाश्रम के उद्देश्य और उसकी सेवाओं का प्रचार करते रहे। सर्वश्री

देशबन्धु चित्तरंजन दास, डा० विधानचन्द्र राय, व्योमकेश चक्रवर्ती, श्यामा प्रसाद मुखर्जी जैसे लोगों से आप मिले और उनसे सहयोग करने की अपील की।

यहाँ एक घटना का उल्लेख करना आवश्यक है। जिन दिनों आपकी उम्र १६ वर्ष थी, उन्हीं दिनों आपके स्कूल में प्रधानाध्यापक पद पर वीरेन्द्रलाल भट्टाचार्य आये। इनकी तेजस्वी आकृति, दीप्त नयन तथा व्यवहार के प्रति विनोद आकर्षित हुआ। दूसरी ओर वीरेन्द्रलाल भी विनोद के प्रति आकर्षित हुए। विनोद के कार्यकलापों के बारे में जानकारी प्राप्त करने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि लड़का बहुत ही अच्छा है, पर पढ़ने-लिखने में दिलचस्पी नहीं लेता।

आगे चलकर वीरेन्द्रलाल ने विनोद के बारे में संस्मरण लिखते हुए लिखा था—"राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति इस बालक का झुकाव था। ब्रह्मचर्य को आदर्श मानता था। वह चाहता था कि सभी हमजोली शक्तिशाली बनें ताकि हम सब मिलकर देश में क्रान्ति लायें। विदेशी सत्ता उखाड़ फेंकें। समाज के कुसंस्कारों को दूर करें और राष्ट्र तथा समाज को दृढ़ बनायें। शक्तिहीन समाज कभी उन्नति नहीं कर सकता।"

प्रधानाध्यापक वीरेन्द्रलाल भट्टाचार्य नाथ सम्प्रदाय के संत योगिराज गंभीरनाथ के शिष्य थे। इनकी जबानी गंभीरनाथजी के बारे में अलौकिक कहानियाँ सुनकर विनोद ने कहा—"मैं ऐसे ही महात्मा का दर्शन करना चाहता हूँ। कृपया मुझे उनके पास एक बार ले चलिए।"

वीरेन्द्रलाल विनोद की कर्मठता और त्याग से प्रसन्न थे। अपने साथ विनोद को लेकर गोरखपुर आये। योगिराज गंभीरनाथ को देखते ही विनोद उनके चरणों पर लोट गया। उसने कहा—"गुरुदेव, कृपया मुझे दीक्षा देकर अपने शरण में ले लीजिए।"

गंभीरनाथ ने तुरत कहा—"वत्स, तुम तो अपनी साधना कर चुके हो। तुम्हें दीक्षा की क्या जरूरत है?"

अब विनोद को तनिक भी संदेह नहीं रह गया कि वह योग्य गुरु के पास आया है। वह ध्यान लगाता है और साधना करता है, इस बात को बाबा ने अपनी अतीन्द्रिय शक्ति से जान लिया है। उसने कहा—"मैं बड़ी आशा लेकर आया हूँ। मुझे निराश मत कीजिए। मुझ अकिंचन पर कृपा कीजिए।"

"एवमस्तु।"

दूसरे दिन विधिपूर्वक विनोद को दीक्षा दी गयी। विनोद ब्रह्मचारी से वह विनोद साधु हो गया। दीक्षा लेने के बाद उनमें कार्यक्षमता बढ़ गयी। गंभीरनाथ ने इस किशोर में अपनी आध्यात्मिक शक्ति को संचारित किया। यही वजह है कि आगे चलकर वे श्री श्री युगाचार्य स्वामी प्रणवानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए। प्रणवानन्द दीक्षा लेने के बाद सफेद वस्त्र धारण करने लगे।

अपने जीवन में विनोद जिस प्रकार कठोर संयम बरतते थे, उसी प्रकार गाँव के लड़कों को अपनी तरह बनाते रहे। वे अपने हमजोलियों से कहते—"निद्रा, आलस, तन्द्रा, जड़ता, दीर्घसूत्रता—यही सब हमारे शत्रु हैं। अधिक निद्रा या आलस हमें बरबाद कर देती है।"

विनोद केवल इन्हीं बातों का उपदेश नहीं देता था, स्वयं अपने जीवन में चरितार्थ करके दिखाता था। एक तरह से वे निद्रा को त्याग चुके थे। बाद में वे शिष्यों से कहा करते

थे—"हमें दृढ़प्रतिज्ञ होना चाहिए। अपने संकल्प में अटल रहने पर ही कार्य सिद्धि होती है। अपनी साधना के जरिये हम रिपुदमन करके इन्द्रजीत बन सकते हैं। यह युग महाजागरण का युग है। यह युग महासमन्वय का युग है। यह युग महामुक्ति का युग है।"

सन् १६२३ ई० में प्रयाग में कुंभ मेला आयोजित हुआ था। इसी मेले में गोविन्दा गिरि से संन्यास लेकर आप दसनामी संन्यासियों में सम्मिलित हुए। इसके बाद आप सफेद वस्त्र त्याग कर गेरुआ कपड़ा पहनने लगे। संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् आपका नाम हुआ स्वामी प्रणवानन्द गिरि।

सन् १६२७ ई० में हरिद्वार में पूर्ण कुंभ मेला लगा। आपने जटामाई के मंदिर में अपना कैम्प लगाया। अब वे आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो गये थे। भारत के विभिन्न शहरों में स्थापित आश्रम और सेवा कार्यों से जन-जन के हृदय में बस गये थे। आपने भक्तों को दीक्षा देने का कार्य प्रारंभ किया।

जमालपुर के एक युवक को विधिवत दीक्षा देने के बाद उन्होंने कहा—"ब्रह्मचर्य व्रत पालन करना और मंत्र को प्रत्येक श्वास में जप करना। अगर कभी कोई संकट आ जाय तो मुझे स्मरण करना। संकट दूर हो जायगा।"

गुरु के वचनों को ब्रह्मवाक्य मानकर युवक अपना दैनिक कार्य करता रहा। एक दिन एक बड़े तालाब में स्नान करते समय उसका पैर फिसल गया। तैरना नहीं आता था। सहसा आसन्न मृत्यु संकट के समय गुरुदेव की बातें याद आ गयीं। उनका स्मरण करते ही पानी में उनकी दिव्य मूर्ति प्रकट हुई और साथ ही उसे एक मोटा बाँस दिखाई दिया। उसी बाँस को पकड़कर वह किसी सूरत से किनारे आया।

युवक को समझते देर नहीं लगी कि गुरुदेव की कृपा से आज वह बच गया। स्नान करते समय यह बाँस उसे कहीं नहीं दिखाई दिया था।

आचार्य ने एक दिन अपने शिष्यों से कहा—"ब्रह्म देश पास ही है। वहाँ अनेक बंगाली हैं। उन्हें भारत सेवाश्रम के बारे में कोई जानकारी नहीं है। तुम लोगों को वहाँ जाकर आश्रम के बारे में प्रचार करना होगा ताकि आगे वहाँ आश्रम की स्थापना करने में आसानी हो। इस कार्य के लिए वहाँ से अर्थ संग्रह भी करना है।"

इस कार्य के लिए स्वामी योगानन्द और स्वामी अद्वैतानन्द की नियुक्ति की गयी। अनजाना देश, राह-घाट दूर की बात कोई परिचित भी नहीं है। गुरुदेव के सुझाव पर दोनों स्वामी कलकत्ता के तत्कालीन मेयर सुभाषचन्द्र बोस के पास आये। अपनी समस्या उनके सामने रखते हुए परिचय पत्र देने का आग्रह किया।

सुभाष बोस ने कहा—"मैं वहाँ के किसी व्यक्ति को नहीं जानता। यह ठीक है कि मैं वहाँ माण्डले की जेल में नजरबन्द था। फिर भी कलकत्ता के मेयर पद से आपको एक परिचय पत्र दूँगा। मैं आप लोगों की सेवाओं से परिचित हूँ और आचार्यजी को अच्छी तरह से जानता हूँ।

परिचय पत्र लेकर स्वामी अद्वैतानन्द वगैरह रंगून गये। इनका आवेदन सुनकर हजारों लोगों ने सहायता दी। दस हजार रुपये और स्नेह की झोली भरकर लोग वापस लौटे।

सारी बातें सुनने के बाद आचार्यजी ने कहा—"आप लोगों ने ठीक से प्रचार नहीं किया। आप लोगों का वहाँ विरोध होना चाहिए था। विना विरोध पाये इस तरह चले आना उचित नहीं हुआ।

आचार्य प्रणवानन्द की बातें सुनकर सभी अवाक् रह गये। जहाँ इतना समादर हुआ, वहाँ विरोध क्यों होता ? एक साल बाद इन लोगों को पुनः ब्रह्म देश भेजा गया।

इस बार आचार्यजी की बात सही निकली। पिछले वर्ष जिस व्यक्ति ने बड़े उत्साह के साथ नेतृत्व किया था, वही व्यक्ति इस बार विरोधी बन बैठा।

दरअसल बात यह हुई थी कि जितेन्द्रनाथ घोष रंगून के प्रसिद्ध व्यक्ति थे। उन्होंने ही पहले भारत सेवाश्रम संघ का जोरदार शब्दों में प्रचार किया था। जब ये लोग वापस चले गये, उसके बाद घोष महाशय दीक्षा लेने के लिए यहाँ आये। अस्वस्थ रहने के कारण आचार्यजी ने उन्हें दीक्षा नहीं दी। तब बेलूर मठ में जाकर उन्होंने दीक्षा ले ली।

स्वस्थ होते ही प्रणवानन्दजी पुरी आये। रंगून वापस लौटते वक्त जितेन्द्र बाबू भी पुरी आये। यहाँ की गुरुपूजा उन्हें पसन्द नहीं आयी। रंगून से प्राप्त दान का हिसाब माँगने पर उन्हें जो कुछ बताया गया, उससे वे सन्तुष्ट नहीं हुए। फलस्वरूप रंगून जाकर जितेन्द्र बाबू भारत सेवाश्रम संघ के बारे में कुप्रचार करने लगे।

उन दिनों एक सज्जन रंगून में रहते थे जो गया, पुरी, कलकत्ता आदि स्थानों में सेवाश्रम की गति-विधियाँ देख चुके थे। उन्होंने प्रतिवाद छपवाया। इस प्रतिवाद के छपने के बाद जितेन्द्र बाबू का पुनः भेजा गया प्रतिवाद नहीं छपा। खिजलाकर उन्होंने हैण्डबिल छपवाकर बँटवाया। जितेन्द्र बाबू ने किया— कुप्रचार, लेकिन इस कुप्रचार के माध्यम से सेवाश्रम संघ तथा स्वामी प्रणवानन्द का प्रचार हो गया।

इधर सेवाश्रम की ओर से आये स्वामी आत्मानन्द प्रोम में आये। यहाँ उन्हें विरोध का सामना करना पड़ा। कई दिनों बाद जब यहाँ अद्वैतानन्द आदि आये तब आत्मानन्द ने उनसे कहा कि यहाँ के श्री चटर्जी हमारे बड़े विरोधी हो गये हैं। उन्होंने मुझे भगा दिया है। सारा प्रोम शहर हमारे विरुद्ध है। अब हमें वापस चले जाना चाहिए।

गुरुभाई की बातें सुनकर अद्वैतानन्द ने मन ही मन संकल्प लिया—जिस चटर्जी ने इन्हें अपमानित करके भगा दिया है, जबतक वे अनुतप्त होकर हम लोगों को अपने घर निमंत्रित नहीं करेंगे और क्षमा नहीं माँगेंगे तब तक हम यहाँ से नहीं जायँगे। अब अपमानित हुए तो गुरुदेव का फोटो और अपना गेरुआ वस्त्र नदी में फेंक देंगे।

अद्वैतानन्द स्टेशन से चलकर नगर स्वास्थ्य अधिकारी के यहाँ ठहरे। यह दृश्य देखकर स्थानीय बंगाली चकित रह गये। कई लोग यह समाचार देने के लिए चटर्जी के यहाँ गये। इनमें से एक व्यक्ति ने कहा— जब ये लोग आ गये हैं तब इनकी बातें हमें सुननी चाहिए। पसन्द न आने पर हम बायकाट कर देंगे। घर आये मेहमानों का अनादर नहीं करना चाहिए।

दूसरे दिन तीसरे पहर कीर्तन और भाषण का कार्यक्रम हुआ। अद्वैतानन्द के भाषण से सभी लोग प्रभावित हुए। इन लोगों ने अपनी गलती महसूस की। दूसरे दिन भी भाषण हुआ। इस दिन प्रचण्ड रूप से सेवाश्रम के संन्यासियों का स्वागत हुआ।

इतना होने पर भी अद्वैतानन्द सोचते रहे कि अभी तक चटर्जी ने न क्षमा माँगी और न अपने यहाँ हम सबको निमंत्रित किया। क्या वास्तव में गुरुदेव का फोटो और वस्त्र प्रोम नदी में फेंकना पड़ेगा ? गुरुदेव की महिमा व्यर्थ प्रमाणित होगी ?

रात भर इसी चिन्ता में अद्वैतानन्द करवट बदलते रहे। सबेरे की गाड़ी से सभी स्वदेश लौटनेवाले हैं। पता नहीं, कौन भोर के वक्त दरवाजा खटखटा रहा है। दरवाजा खोलते ही देखा गया कि सामने चटर्जी बाबू खड़े हैं। वे अद्वैतानन्द के चरणों पर गिर पड़े।

बोले—"सुना कि आज आप लोग चले जानेवाले हैं। मेरी पत्नी की इच्छा है कि आप लोग आज शाम का भोजन मेरे घर करें। कल चले जाइयेगा। इसके लिए मुझे क्षमा करना होगा।"

गुरुदेव की महिमा से अद्वैतानन्द की आँखें छलछला आयीं। मन ही मन उन्होंने गुरुदेव से क्षमा माँगते हुए प्रणाम किया।

इस प्रकार की अनेक घटनाएँ शिष्यों और भक्तों के साथ हुई हैं। उन घटनाओं का उल्लेख अक्सर लोग करते रहते हैं। आज भी भारत सेवाश्रम संघ में हिन्दू संस्कृति तथा शक्ति-पूजा के बारे में प्रति वर्ष विद्वानों के भाषणों के आयोजन होते हैं।

भारत के प्रमुख तीर्थ स्थलों में स्थापित उनके आश्रम आज भी जन सेवा कर रहे हैं। सन् १६४१ ई० के जनवरी माह में आपने महासमाधि ले ली।

●

बाबा लोटादास

वर्तमान वाराणसी के उत्तर ईश्वरगंगी मुहल्ला है। प्राचीनकाल में नगर का यह प्रमुख क्षेत्र था। पास ही छाग कुण्ड (बकरिया कुण्ड) पवित्र तीर्थस्थल था जो अब उजाड़खण्ड हो गया है। कहा जाता है कि जौनपुर में शर्कियों को परास्त करने के बाद सिकन्दर लोदी ने यहाँ भयानक अत्याचार किया था। उस अत्याचार के कारण उन दिनों वाराणसी एक तरह से मानव-विहीन हो गयी। कई मंदिर गिराकर मस्जिदें बनायी गयीं। ईश्वरगंगी तालाब का क्षेत्र भी नष्ट हो गया था।

१८वीं शताब्दी के अन्त में यहाँ एक बाबा आये। यहाँ के शान्त वातावरण ने उन्हें प्रभावित किया। संभव है कि स्थान ने आकर्षित किया हो। वे यहीं एक टीले पर आसन जमाकर भजन करने लगे। काशी के नागरिकों में एक खूबी यह है कि वे किसी भी संत के प्रति सहज ही आकृष्ट हो जाते हैं। धर्म कथा सुनने के लिए एकत्र हो जाते हैं।

भक्तों के सुझाव पर बाबा गोवर्धन ने तालाब के समीप एक मंदिर बनवाया और राम, लक्ष्मण, सीता तथा पवनसुत हनुमानजी की प्रतिमा स्थापित की। बाबा गोवर्धनदास ने पहले ही निश्चय कर लिया था कि इस उपलक्ष्य में एक भंडारा किया जायगा। भक्तों तथा स्थानीय लोगों ने प्रचुर सहायता दी और भंडारे का इन्तजाम हो गया।

नगर तथा आसपास के जिले से अनेक साधु इस भंडारे में निमंत्रित होकर आये थे। कार्यकर्ताओं तथा संतों के कारण वातावरण मुखरित था। पत्तलें बिछायी गयीं। भोजन परसा गया। ज्यों ही संतों ने भोग लगाने की तैयारी की त्योंही सभी चौंककर पत्तल पर से उठ गये। चारों ओर तूफान शुरू हो गया। लड्डू-पुरी के स्थान पर सभी पत्तलों पर मांस-मंदिरा आदि अखाद्य सामग्री दिखाई देने लगी। बात बाबा गोबर्धनदास तक पहुँची। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि किसी योगी ने बदला लेने के लिए अपनी शक्ति का दुरुपयोग किया है। अगर जल्द ही इसका निराकरण न किया गया तो बुरी तरह अपमानित होना पड़ेगा।

अपने आसन से वे उठे और अपने लोटे से पानी निकालकर प्रत्येक पत्तल पर छिड़कने लगे। एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुँचते ही पुनः पहले जैसा शाकाहारी भोजन पत्तलों पर दिखाई देने लगा। साधुओं का समूह भोजन करने लगा।

अपने आसन पर आकर ध्यान लगाते ही बाबा गोबर्धनदास को ज्ञात हुआ कि यह खुराफात बाबा कीनाराम ने की है। तुरत उन्होंने अपने भक्तों से कहा कि तुम सब चारों ओर खोजो। बाबा कीनाराम आये हैं। पता लगने पर मैं स्वयं उनके पास जाऊँगा।

थोड़ी देर बाद एक भक्त ने आकर कहा—"बाबा, कीनाराम महाराज तालाब के उस पार पीपल के पेड़ के नीचे बैठे हैं।"

इतना सुनते ही बाबा गोवर्धनदास तुरत वहाँ पहुँचे। मन में क्षोभ था ही, नमस्कार करते हुए उन्होंने कहा— "कहो कीनाराम, गुरु भाई होकर आपने यह कौन-सा बदला लिया? अपनी जानकारी में मैंने तो कोई अपराध नहीं किया है।"

कीनाराम ने कहा—"गुरुभाई होकर तुमने अपने इस भंडारे में निमंत्रण न देकर क्या अपराध नहीं किया है जबकि मैं इसी नगरी में रहता हूँ? क्या मेरी उपेक्षा मेरा अपमान नहीं है?"

तर्क सही था। गोवर्धनदास ने कहा— "हाँ, महाराज! यह गलती अनजाने में हो गयी। शायद मेरा आदमी आपके पास सूचना लेकर नहीं गया। लेकिन जब आप कृपा करके यहाँ आ गये थे तो सीधे मेरे पास आकर मुझे दंड देते। यह नाटक करने की क्या जरूरत थी? अब चलिये, मेरी कुटिया में। वहाँ जूठन गिराइये।"

गोवर्धनदास के विनय से प्रसन्न होकर बाबा कीनाराम ने कहा—"पंगत लग चुकी है। अब वहाँ जाना उचित नहीं है। मुझे अगर खिलाना चाहते हो तो यहीं जो कुछ है, ले आओ।"

बाबा गोवर्धनदास स्वयं भोजन ले आये। कीनाराम ने कहा—"पत्तल की जरूरत नहीं। इस खोपड़ी में डाल दे।"

बाबा कीनाराम ने एक नर कपाल आगे रख दिया। उस पात्र में भोजन रखने के बाद वे भोजन करने लगे। थोड़ी देर में खा लेने पर उन्होंने कहा— "गोवर्धन, अब पानी पिला।"

बाबा गोवर्धनदास उसी नर कपाल में अपने लोटे से पानी देने लगे। वे बराबर पानी उड़ेलते रहे, पर नर कपाल पूर्ण नहीं हो रहा था। यहाँ भी कीनाराम को चमत्कार करते देख गोवर्धनदास मुस्कराते रहे, क्योंकि उनके लोटे से पानी निरंतर गिर रहा था। न लोटा खाली हो रहा था और न नर कपाल पूर्ण हो रहा था।

अन्त में कीनाराम ने हँसते हुए कहा—"अरे भाई, तू तो सचमुच लोटादास है। अपने लोटे से संतों का भोजन सामिष से आमिष बनाया और मेरे सामने अपने लोटे का तमाशा दिखाया।"

गोवर्धनदासजी एक सिद्ध महात्मा हैं और चमत्कार कर सकते हैं, ईश्वरगंगी के लोग स्वप्न में भी विश्वास नहीं करते थे। बाबा को वे एक उच्चकोटि का सन्त मानते थे। आज की हुई घटना को प्रत्यक्ष रूप से देखने के बाद उन्होंने मान लिया कि बाबा असाधारण हैं। बाबा कीनाराम के नये सम्बोधन के कारण बाबा गोवर्धनदास को उसी दिन से लोग बाबा लोटादास कहने लगे। इस अद्‌भुत घटना की कहानी तेजी से चारों ओर फैल गयी।

× × × ×

श्री शोभनाथ लाल के कथनानुसार बाबा गोवर्धनदास पंजाब के गुरुदासपुर के निवासी थे। गुरुदासपुर के ध्यानपुर पिंडोरी आश्रम में एक सिद्ध महात्मा रहते थे जिनका नाम नारायण-दास स्वामी था। इसी आश्रम में गोवर्धन तथा अन्य संत रहते थे। मुगलों के शासन का दीप

बुझ रहा था, पर उनके अत्याचारों में कमी नहीं हो रही थी। उनके उपद्रवों से तंग आकर पश्चिम से काफी तायदाद में लोग पूर्व की ओर भागने लगे।

पिंडोरी आश्रम से तीन संतों की टोली पूर्व की ओर चल दी। इनमें बाबा द्वारिकादास, रामसूरत और गोवर्धनदास थे। कई जगह पड़ाव डालते हुए ये लोग जौनपुर जिले के आराजी थाना—गछी गाँव में आये। यह गाँव केराकत के समीप है।

यहाँ आते ही मूसलाधार वृष्टि होने लगी। तीन दिन प्रलय जैसा दृश्य रहा। चारों ओर लोग त्रस्त होने लगे। यह देखकर बाबा गोवर्धनदास अपना लोटा लेकर गाँव के चारों ओर पानी छिड़कते हुए अपने स्थान वापस आये। फलस्वरूप वर्षा में कमी तो न हुई, परन्तु गाँव को कोई नुकसान भी नहीं हुआ। पहले जहाँ गली-सड़क, घर-द्वार पानी से डूब गये थे, अब उस कष्ट से मुक्ति मिल गयी।

यह दृश्य देखकर गाँव के निवासी दंग रह गये। तीनों संतों पर उनकी श्रद्धा-भक्ति उमड़ पड़ी। यह समाचार तेजी से फैल गया। फलतः अब लोग नित्य सत्संग करने आने लगे।

आज का मानव इतना स्वार्थी हो गया है कि भौतिक-सुखों को प्राप्त करने के लिए हर प्रकार के प्रपंच रचता है। ऐसे माहौल में जब किसी संत को अलौकिक चमत्कार करते देखता है तब वह अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए उनकी सेवा में लग जाता है। सिद्ध योगी अपनी विभूतियों का प्रदर्शन नहीं करते। ऐसा करने से उनकी हानि होती है। अनायास जो हो जाता है, वह उनकी कृपा से हो जाता है। गोवर्धनदास के चमत्कार के कारण तीनों संतों की कहानी आसपास तेजी से फैल गयी। जनता की बढ़ती भीड़ के कारण संतों को कुछ परेशानी होने लगी। भजन-साधना में व्याघात होने लगा।

ठीक इन्हीं दिनों स्थानीय जमींदार का एक मात्र पुत्र चल बसा। गाँव का सम्पन्न जमींदार होने के कारण शव यात्रा में अपार भीड़ चल रही थी। अपने आसन पर बैठे गोवर्धनदास ने इस दृश्य को देखा। शव-यात्रियों से आवश्यक बातचीत करने के बाद उन्होंने कहा—"कुछ देर के लिए शव को यहाँ रख दो।"

एक तो शोकाकुल जनता, दूसरे एक सामान्य संत का अमानवीय अनुरोध सुनकर लोग नाराज हो उठे। वे लाश को नीचे रखने को राजी नहीं हुए। तभी स्थानीय लोगों ने बाबा गोवर्धनदास का विशेष परिचय देते हुए कहा कि बाबा पहुँचे हुए संत हैं। जरूर कोई बात होगी वर्ना ऐसा न कहते।

शववाहक दूर दूसरे गाँव से आ रहे थे। उनमें से अधिकांश लोग बाबा की योग विभूति से अपरिचित थे। बात बढ़ने पर बुजुर्गों ने समझाया—"आखिर कोई बात है तभी बाबा ने यह आदेश दिया। जरा रखकर देख तो लो।"

लाश नीचे रख दी गयी। बाबा गोवर्धनदास ने लोटे से जल लेकर उस पर छिड़का और ध्यानस्थ हो गये। लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा—"कफन से लिपटी लाश हिलने लगी।"

कई लोगों की जबानें आश्चर्य से चीख उठीं। बाबा ने आँखें खोलते हुए कहा—

"कभी-कभी यमराज के दरबार में भी गलती हो जाती है। इस बालक की आयु शेष थी। भूल से इसकी मृत्यु हो गयी।"

बाबा का यह चमत्कार तेजी से फैल गया। जमींदार तो खुशी से उछल पड़ा। उसने बाबा से अनुरोध किया कि अब वे इसी स्थान पर स्थायी रूप से आसन लगायें। मैं यहाँ आपके लिए आश्रम बनवा देता हूँ।

बाबा की कृपा से लाभान्वित होने के कारण जमींदार ने उनके नाम पर बावन बीघा जमीन लिख दी। तभी से उस क्षेत्र का नाम 'बावन बिघवा' हो गया। जमींदार के प्रयत्न से वहाँ एक वैष्णव आश्रम बन गया। नित्य शाम के समय भजन-कीर्तन होने लगा। लेकिन सबसे बड़ी कठिनाई यह रही कि पीड़ित और संतप्त लोग अपने कष्टों के निराकरण के लिए निरन्तर आने लगे।

इन आगन्तुकों के कारण गोवर्धनदास ऊब गये। एक दिन वे अपने बड़े गुरुभाई द्वारिकादास से आज्ञा लेकर इस आश्रम से काशी की ओर चल पड़े। अब यह बताना कठिन है कि जौनपुर से बाबा गोवर्धनदास सीधे बनारस आये या बनारस से आगे गाजीपुर चले गये, क्योंकि संत कीनाराम के प्रथम वैष्णव गुरु बाबा शिवाराम गाजीपुर जिले के कारो ग्राम में रहते थे। जब उन्होंने पुनर्विवाह करने का निश्चय किया तब सन्त कीनाराम वहाँ से नाराज होकर चले गये। अनुमान किया जाता है कि जिन दिनों बाबा गोवर्धनदास कारो ग्राम में थे, उन्हीं दिनों कीनाराम बाबा वहाँ गये हों अथवा काशी निवास काल में कीनाराम से परिचय होने के बाद गोवर्धनदासजी कारो ग्राम गये हों। बहरहाल इन तथ्यों में कोई भी बात हो, पर यह निश्चित मत है कि संत कीनाराम और गोवर्धनदासजी गुरु भाई थे। वयो ज्येष्ठ संभवतः कीनारामजी थे। संत कीनाराम के वय के बारे में नाना मत हैं। इस दिशा में सन्त साहित्य के विद्वान परशुराम चतुर्वेदीजी का मत है— संवत् १७४१ से १८४४ वि० कीनारामजी का जीवन काल था। इस दृष्टि से बाबा गोवर्धनदासजी का भी यही समय था। श्री शोभनाथ लाल यह मानते हैं कि सं० १८२४ तक बाबा गोवर्धनदास जीवित थे। ईश्वरगंगी के आश्रम में ५० वर्ष तक महन्त पद पर थे। बाद में अपनी गद्दी उन्होंने अपने शिष्य लक्ष्मणदास को दे दी थी।

बाबा शिवाराम का शिष्य बनने के पूर्व गोवर्धनदासजी ध्यानपुर पिंडोरी के संत भगवान् नारायण नामक संत के शिष्य थे। ऐसी हालत में ऐसे सिद्ध योगी के शिष्य बनने के बाद गोवर्धनदासजी बाबा शिवराम के शिष्य क्यों बने, यह एक अद्‌भुत घटना है जिसका कोई सूत्र प्राप्य नहीं है। यों यह माना जाता है कि गुरु की कृपा से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। गुरु का स्थान सर्वोच्च है। सद्‌गुरु की कृपा से ही ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। यहाँ तक कि उच्चस्तर के गुरु अकमर्ण्य लोगों को शीघ्र शिष्य इसलिए नहीं बनाते कि उनके जप-ध्यान की पूर्त्ति उन्हें करनी पड़ेगी।

शिवाराम से दीक्षा लेने के पहले या बाद में काशी आकर बाबा गोवर्द्धनदास ईश्वरगंगी में बस गये। इनके चमत्कारों की कहानियाँ सुनकर तत्कालीन काशी नरेश बलवन्त सिंह आपका दर्शन करने आये। उन दिनों बाबा गोवर्धनदास जो कि संत कीनाराम के कारण लोटादास के नाम से प्रसिद्ध हो चुके थे, मलेरिया से पीड़ित थे।

काशी नरेश को आते देखकर भक्तों ने शीघ्र बाबा लोटादास को उनके आगमन की सूचना दी। बाबा को समझते देर नहीं लगी कि महाराजा क्यों यहाँ आये हैं। वे उठे और अपने रोग को आसन के नीचे दबा दिया।

जब तक काशी नरेश भीटा पर आयें, उसके पहले ही वे स्वस्थ रूप में बैठ गये। उन्हें देखते ही बाबा लोटादास ने कहा— "आओ राजन ! प्रजापालक का स्वागत है।"

कुछ देर तक धर्म चर्चा होती रही। अचानक बलवन्त सिंह ने देखा—एक ओर कोने में रखा आसन अपने आप काँप रहा है। क्या उसमें साँप या चूहा तो नहीं है ?

बलवन्त सिंह अभी अपना प्रश्न पूछ भी नहीं पाये थे तभी बाबा लोटादास ने कहा— "आसन के नीचे न साँप है और न चूहा। वहाँ जड़ैया बुखार है। इधर कई रोज से मैं पीड़ित था। आप मेरी कुटिया में मुझसे मिलने आ रहे हैं, सुनकर मैंने कुछ देर के लिए उसे आसन के नीचे दबा दिया है। इस वक्त वह अपनी क्रिया कर रहा है।"

बलवन्त सिंह के लिए यह एक अद्‌भुत घटना थी। अपने रोग को कोई शरीर से निकालकर आसन के नीचे कैसे दबा रखता है ? उन्होंने शंका प्रकट की— "जब आप रोग को शरीर से निकाल सकते हैं तब उसे समाप्त कर निरोग क्यों नहीं हो जाते ?"

बाबा लोटादास ने कहा— "मनुष्य को अपने कर्म का फल भोगना पड़ता है। चाहे वह सन्त हो या राजा। आज नहीं तो कल इसे भोगना ही पड़ेगा। ईश्वर के विधान को हम-आप बदल नहीं सकते।"

राजा बलवन्त सिंह बाबा की बातों से काफी प्रभावित हुए और वहाँ ही मढ़ी पर एक मंदिर बनवा दिया जिसमें स्थानीय नागरिकों के सहयोग से मूर्तियाँ स्थापित हुईं। सं० १८२४ वि० के बाद किसी वर्ष उनका नश्वर शरीर छूट गया। आज भी वहाँ बाबा लोटादास द्वारा स्थापित आश्रम है, जहाँ उनके परंपरा-प्राप्त शिष्य पीठासीन हैं।

●

भारत के महान योगी

विश्वनाथ मुखर्जी

चौदह भाग, ७ जिल्द में, प्रत्येक सौ रुपये

भारत योगियों, संतों, साधकों और महात्माओं का देश है। देश के सभी भागों में अनेक योगी तथा संत हुए हैं जिन्होंने देश की चिन्तनधारा और जीवन को प्रभावित किया है। अपने चमत्कारी जीवन से जनमानस को चमत्कृत भी किया है। ऐसे योगियों का जीवन-चरित चौदह भागों (७ जिल्द) में प्रस्तुत किया गया है।

भाग : १-२ तंत्राचार्य सर्वानन्द, लोकनाथ ब्रह्मचारी, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी, वामा खेपा, परमहंस परमानन्द, संत ज्ञानेश्वर, संत नामदेव, संत रविदास, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस।

भाग : ३-४ योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी, महर्षि रमण, भूपेन्द्रनाथ सान्याल, योगी वरदाचरण, नारायण स्वामी, बाबा कीनाराम, तैलंग स्वामी, परमहंस रामकृष्ण ठाकुर, जगद्गुरु शंकराचार्य, सन्त एकनाथ।

भाग : ५-६ स्वामी रामानुजाचार्य, रामदास काठिया बाबा, राम ठाकुर, साधक रामप्रसाद, भूपतिनाथ मुखोपाध्याय, स्वामी भास्करानन्द, स्वामी सदानन्द सरस्वती, पवहारी बाबा, हरिहर बाबा, साईं बाबा, रणछोड़दास महाराज, अवधूत माधव पागला।

भाग : ७-८ किरणचन्द्र दरवेश, स्वामी अद्‌भुतानन्द (लाटू महाराज), भोलानन्द गिरि, तंत्राचार्य शिवचन्द्र विद्यार्णव, महायोगी गोरखनाथ, बालानन्द ब्रह्मचारी, प्रभु जगद्‌बन्धु, योगिराज गंभीरनाथ, ठाकुर अनुकूलचन्द्र, बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ, मोहनानन्द ब्रह्मचारी, कुलदानन्द ब्रह्मचारी, अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी, स्वामी प्रणवानन्द, बाबा लोटादास।

भाग : ९-१० भक्त नरसी मेहता, सन्त कबीरदास, नरोत्तम ठाकुर, श्रीम, स्वामी प्रेमानन्द तीर्थ, सन्तदास बाबाजी, बिहारी बाबा, स्वामी उमानन्द, पाण्डिचेरी की श्रीमाँ, महानन्द गिरि, अन्नदा ठाकुर, परमहंस योगानन्द गिरि, साधु दुर्गाचरण नाग, निगमानन्द सरस्वती, नीब करौरी के बाबा, परमहंस पं० गणेशनारायण, अवधूत अमृतनाथ, देवराहा बाबा।

भाग : ११-१२ बालानंद ब्रह्मचारी, श्री भगवानदास बाबाजी, हंस बाबा अवधूत, महात्मा सुन्दरनाथजी, मौनी दिगम्बरजी, गोस्वामी श्यामानन्द, फरसी बाबा, भक्त लाला बाबू, श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी, नंगा बाबा, तिब्बती बाबा, गोस्वामी लोकनाथ, काष्ठ-जिह्वा स्वामी, रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, अवधूत नित्यानन्द।

भाग : १३-१४ श्री मधुसूदन सरस्वती, आचार्य रामानुज, आचार्य रामानन्द, अद्वैत आचार्य, चैतन्यदास बाबाजी, भक्त दादू, गुरुनानक देव, सिद्ध जयकृष्ण दास, शैवाचार्य अप्पर, साधक कमलाकान्त, राजा रामकृष्ण, यामुनाचार्य, आचार्य मध्व, स्वामी अभेदानन्द, भैरवी योगेश्वरी, सिद्धा परमेश्वरी बाई।

Rs. 100.00

ISBN 978-81-89498-16-0

अनुराग प्रकाशन
विशालाक्षी भवन,
चौक, वाराणसी - 221001
Phone & Fax : **(0542) 2421472**
Shop at : **www.vvpbooks.com**